TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178130
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H923.254 R12G Accession No. G.H.2726

Author राधाकृष्णन्, सर्वपल्ली सं.

Title गांधी-श्रद्धाञ्जलि-ग्रंथ १९५५

This book should be returned on or before the date last marked below.

गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

—देश-विदेश के विद्वानों एवं लोक-नेताओं की श्रद्धांजलियाँ—

●

सम्पादक

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

●

पुस्तक भेंट के निमित्त है

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक में गांधीजी के निधन पर देश-विदेश के चिन्तकों एवं लोक-नेताओं द्वारा अर्पित की गईं कुछ चुनी हुई श्रद्धांजलियों का संग्रह है। अमरीका के सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने अपनी पुस्तक 'गांधी की कहानी' में लिखा है कि संसार के शायद ही किसी महापुरुष की मृत्यु पर इतना गहरा और इतना व्यापक शोक प्रकट किया गया हो, जितना गांधीजी की मृत्यु पर। जिन्हें गांधीजी के दर्शन का अवसर मिला था, उनके मुँह से तो आह निकली ही, जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा था, उनकी भी आँखें डबडबा आईं। इस विश्व-व्यापी वेदना का कारण यह था कि गांधीजी ने समूची दुनिया के सुख-दुःख के साथ अपनेको एकाकार कर दिया था, मानव मानव के बीच उनके लिए भेद न था। वह मानवता के लिए जिये और उसीके लिए उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया।

गांधीजी भारत में जन्मे थे, लेकिन उनकी करुणा, सहानुभूति और कार्य इस देश की परिधि तक ही सीमित नहीं थे। जहाँ भी उन्होंने अन्याय, अत्याचार अथवा शोषण देखा, वहींपर उन्होंने अपनी आवाज ऊँची की।

शांति की दृष्टि से तो वह बुद्ध, महावीर और ईसा की परम्परा के थे। दुनिया के सामने उन्होंने अपने आचरण तथा राष्ट्रीय प्रयोग के द्वारा यह सिद्ध करके दिखा दिया कि वास्तविक शांति अस्त्र-शस्त्रों के बल पर स्थापित नहीं हो सकती। उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि सबसे बड़ा बल आत्मिक बल है और उसके आगे कोई भी ताकत नहीं ठहर सकती।

ऐसे विलक्षण मानव के प्रति दुनिया के कोने-कोने से श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं तो यह स्वाभाविक ही था। यदि उन सब श्रद्धांजलियों को प्रकाशित किया जाय तो कई जिल्दें भर जायंगी। इस पुस्तक में कुछ ही श्रद्धांजलियाँ संगृहीत की जा सकी हैं। इनका चुनाव और सम्पादन सुविख्यात चिन्तक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने किया है। इन श्रद्धांजलियों का अपना महत्त्व है। इनमें भावभरे उद्गार तो प्रकट किये ही गए हैं, साथ ही गांधीजी की महानता और उनके कार्यों की विश्व-व्यापी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला गया है।

हिन्दी में 'गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ' से पाठक भलीभाँति परिचित हैं। उसमें गांधीजी के सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए उनके प्रति भावनापूर्ण उद्‌गार प्रकट किये गए हैं। इस ग्रंथ में भी उनके सिद्धांतों और कार्यों पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही उनके प्रति श्रद्धांजलियां भी अर्पित की गई हैं। दोनों ही ग्रंथों में बड़ी मूल्यवान् सामग्री है। अंतर केवल इतना है कि अभिनंदन-ग्रंथ गांधीजी के जीवन-काल में उनकी बहत्तरवीं वर्षगांठ के अवसर पर निकला था; श्रद्धांजलि-ग्रंथ उनके बलिदान के बाद प्रकाशित हो रहा है।

आशा है, इस ग्रंथ को भी वही लोकप्रियता और आदर प्राप्त होगा, जो 'गांधी-अभिनन्दन-ग्रंथ' को प्राप्त हुआ है।

—मंत्री

विषय-सूची

	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	मानव-जाति को गांधीजी का संदेश	सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	९
२.	शहीद गांधी	वेरा ब्रिटेन	३३
३.	महात्मा गांधी का विश्व-संदेश	जार्ज केटलिन	३८
४.	मेरी श्रद्धांजलि	जी. डी. एच. कोल	४५
५.	गांधीजी की सफलता का रहस्य	स्टैफर्ड क्रिप्स	५२
६.	'एक बहुत बड़ा आदमी'	ई. एम. फॉर्स्टर	५६
७.	गांधीजी की महानता का कारण	एल. डब्ल्यू. ग्रेनस्टेड	५९
८.	उनका महान् गुण	हैलीफ़ैक्स	६५
९.	श्रेष्ठतम अमर पुरुष	एस. आई. हसिंग	६९
१०.	उनके बुनियादी सिद्धान्त	आल्डस हक्सले	७१
११.	गांधीजी की देन	किंग्स्ले मार्टिन	७७
१२.	एक महान् आत्मा की चुनौती	जॉन मिडिलटन मर्रे	८६
१३.	गांधीजी के काम और नसीहतें	हरमन ओल्ड	९४
१४.	अन्तिम दिन	विन्सेण्ट शियन	१०१
१५.	महात्माजी के तीन आदर्श	थाकिन नू	११०
१६.	उनका ज्योतिर्मय प्रकाश	सिबिल थार्नडायक	११५
१७.	गांधीजी की संसार को देन	रॉय वाकर	११७
१८.	वह पुरुष !	एलबर्ट आइन्सटीन	१२३
१९.	अहिंसा के दूत	माउण्टबेटन	१२३
२०.	प्रेम और शांति के दूत	हॉरेस अलैक्जेण्डर	१२५
२१.	छोटे, किन्तु महान	पैथिक लॉरेंस	१२७
२२.	उनका रास्ता	एल. एस. एमरी	१२८
२३.	अहिंसा के पुजारी	क्लीमेण्ट एटली	१२८
२४.	इतिहास की अमूल्य निधि	फिलिप नोएल बेकर	१२९
२५.	उनका बलिदान एक उदाहरण	हैरी एस. ट्रूमैन	१३०
२६.	उनकी महानता का कारण	मिल्टन मेयर	१३१

२७. महान क्षति	डी. एच. एम. लाज्ञारस	१३२
२८. संसार का एक महान नेता	एमन डी वेलेरा	१३३
२९. बेजोड़ उदाहरण	जौन हेन्स होम्स	१३३
३०. मानवता के प्राण गांधी	पर्लबक	१३५
३१. मानवता का पुजारी	एस. एल. पोलक	१३८
३२. सबसे महान व्यक्तित्व	रेजिनाल्ड सोरेन्सन	१३९
३३. हमारा कर्त्तव्य	मीरा बहन	१४०
३४. मृत्यु से शिक्षा	राजेंद्रप्रसाद	१४२
३५. गांधीजी की सिखावन	विनोबा	१४४
३६. निपुण कलाकार	जवाहरलाल नेहरू	१४८
३७. शक्ति और प्रेरणा के स्रोत	वल्लभभाई पटेल	१५३
३८. उनकी विरासत	चक्रवर्ती राजगोपालाचारी	१५५
३९. वह प्रकाश	श्री अरविन्द	१५६
४०. वह ज्वलंत ज्योति	सरोजनी नायडू	१५७
४१. एक महान् मानवतावादी	सी. वी. रमन	१६१
४२. गांधीजी की देन	गणेश वासुदेव मावलंकर	१६३
४३. सर्वश्रेष्ठ मानव	नरेंद्रदेव	१६४
४४. अकल्पनीय घटना	कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी	१६८
४५. सबसे बड़ा काम	जे. बी. कृपलानी	१७१
४६. हम अनुयायियों का कर्त्तव्य	राजकुमारी अमृतकौर	१७३
४७. इतिहास के अमर व्यक्ति	डाक्टर सय्यद हुसेन	१७४
४८. गांधीवाद अमर है	पट्टाभि सीतारामैया	१७७
४९. गांधीजी : मानव के रूप मे	घनश्यामदास बिड़ला	१८०
५०. महाप्रस्थान	बी. के. मल्लिक	१८६
५१. श्रद्धांजलि	देवदास गांधी	१९२
५२. बापू !	सुशीला नैयर	१९८

परिशिष्ट

१. बापू का अंतिम दिन	प्यारेलाल	२०३
२. अंतिम प्रार्थना-प्रवचन		२१२

गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

बापू : अनंत निद्रा में

होते देखते हैं। उनके निर्माण में शताब्दियां गुजरीं और उनकी जड़ें युगों तक फैल गई हैं। ऐसी दशा में युग-दुर्लभ और अद्भुत आत्मा की मृत्यु का समाचार सुनकर दुनिया का भय से कंपित और दु ख से कातर हो उठना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कहा था, "मनुष्यों में से एक देव उठ गया। यह कृशकाय छोटा-सा व्यक्ति अपनी आत्मा की महानता के कारण मनुष्यों में देव था।" अपने-अपने क्षेत्र में बड़े और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी उनके निकट खड़े होने पर छोटे और तुच्छ दिखलाई पड़ते थे। उनकी आत्मा की गहरी सच्चाई, घृणा और द्वेष से उनका मुक्त रहना, अपने पर पूर्ण अधिकार, मित्रतापूर्ण सबको मिलानेवाली उनकी करुणा और इतिहास की अन्य महान हस्तियों के समान आत्मपतन के आगे शरीर के बलिदान को नगण्य माननेवाला वह विश्वास, जिसको उन्होंने कई बार बड़ी नाटकीय परिस्थितियों में सफलतापूर्वक कसौटी पर कसा, आदि गुण ही आज जीवन की इस अन्तिम परिणति में जीवन पर धर्म की, विश्व की बदलती समस्याओं पर अमर गुणों की जीत के द्योतक हैं।

साधारणतया जिसे धर्म कहा जाता है वही उनके जीवन की प्रेरणा थी, किन्तु धर्म का अर्थ उनकी दृष्टि में मत विशेष के प्रति आग्रह अथवा शास्त्रोक्त पूजा-उपासना के व्यवहार तक ही सीमित न था, वरन् धर्म का उनका अर्थ था सत्य, प्रेम और न्याय के मूल्यों में अडिग और अगाध श्रद्धा तथा उन्हें इसी दुनिया में प्राप्त करने का सतत प्रयत्न। लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने धर्म के विषय में उनकी राय पूछी थी। उन्होंने उसे इन शब्दों में व्यक्त किया था—"मैं अपने धर्म को प्रायः सत्य का धर्म कहता हूं। अभी पिछले दिनों से 'ईश्वर सत्य है' यह कहने के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' ऐसा मैं कहने लगा हूँ, ताकि मैं अपने धर्म की अधिक व्यापक व्याख्या कर सकूं। सत्य के अतिरिक्त अन्य और कोई भी चीज मेरे ईश्वर की इतनी पूर्णता के साथ व्याख्या नहीं करती। परमात्मा का निषेध हमने सुना है, पर सत्य का निषेध कोई नहीं करता। मनुष्य-जाति में मूर्खतम लोग भी अपने भीतर सत्य का कुछ प्रकाश रखते हैं। हम सब सत्य के ही ज्योति-कण हैं। इन ज्योति-कणों का यह संयुक्त रूप अवर्णनीय है, क्योंकि सत्य का ईश्वरीय रूप हम अभीतक नहीं समझ पाये हैं। निरन्तर उपासना से इसके निकटतर पहुँच अवश्य रहा हूं।"

'सत्यं-ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' अर्थात् सत्य ज्ञान ही अनन्त ब्रह्म है, ऐसा उपनिषदों में भी कहा गया है। परमात्मा सत्यनारायण अर्थात् सत्य का स्वामी है।

गांधीजी कहा करते थे, "मैं केवल सत्य की खोज करनेवाला हूं और उसतक पहुंचने के रास्ते को पाने का मैं दावा कर सकता हूं। उसे पाने के लिए मैं सतत प्रयत्नशील हूं, यह भी कह सकता हूं। सत्य को पूरी तरह से प्राप्त करने का अर्थ है अपने आप को और अपने प्रारब्ध या उद्देश्य को पा लेना। दूसरे शब्दों में पूर्ण हो जाना। मुझे अपनी अपूर्णता का दुःखद ज्ञान है और सचमुच यही मेरी सारी शक्ति है। मैं यह बिलकुल भी दावा नहीं करता कि मुझमें कोई दैवी शक्ति है, और न उसकी मैं इच्छा करता हूं। मैं भी वही दूषित होने योग्य चोला पहने हूं जो मेरा कोई भी ज्यादा-से-ज्यादा कमज़ोर भाई पहने है, और इसीलिए दूसरे लोगों की तरह मैं भी भूल कर सकता हूं।" प्रार्थना, उपवास एवं प्रेम के अभ्यास द्वारा गांधीजी ने अपनी पार्थिव असंबद्धता और प्रकृति की चंचलता पर विजय प्राप्त करने का तथा ईश्वरीय कार्य के लिए अपने को अधिक योग्य साधन बनाने का प्रयत्न किया। उनका विश्वास था कि अपने श्रेष्ठतम रूप में सभी धर्म मानव की पूर्णता के लिए समान संयम और अनुशासन की व्यवस्था देते हैं।

वेद, त्रिपिटक, इंजील, और कुरान, सभी आत्म-संयम की आवश्यकता पर जोर देते हैं। हिन्दू ऋषियों, महात्मा बुद्ध और ईसा के जीवन में प्रार्थना और उपवास का महत्त्व हमें अच्छी तरह ज्ञात है। मुल्लाओं की वह अज़ान उषा की निस्तब्ध शांति को भंग करती हुई पिछली चौदह शताब्दियों से 'अल्लाहो अकबर' 'ईश्वर महान् है' के रूप में प्रतिध्वनित होकर हमें यह संदेश देती रही है कि सोते रहने से प्रार्थना करना अच्छा है और यह कि हमें अपना दैनिक कार्य ईश्वर के चिन्तन से ही प्रारम्भ करने चाहिए। इस्लाम के अनुयायी को दिन में पांच बार नियत समय पर निश्चित शब्दों और नियत ढंग से नमाज पढ़नी होती है और वर्ष में एक बार रमज़ान के महीने में सूर्योदय से सूर्यास्त तक बिना किसी प्रकार का कुछ भोजन किये उपवास करना होता है।

गांधीजी का यह विश्वास था कि, "सब धर्मों का लक्ष्य एक ही है। अभ्यान्तर जीवन, ईश्वर में आत्मा का जीवन, ही एक महान् सत्य है। शेष सबकुछ बाह्य है। हम धर्म को नहीं, धर्म के सहायक अंगों को अधिक महत्त्व देते हैं। आत्मा में प्रतिष्ठित भगवान के मंदिर को नहीं, उन खंभों और पुश्तों को अधिक महत्त्व देते हैं, जो मंदिर को गिरने से बचाने के लिए बनाये गए हैं। धर्म के उपांग बाह्य परिस्थितियों से निर्मित होते हैं और किसी जाति की परम्परा इन्हें अपने अनुरूप ढाल लेती है।

हिन्दू धर्म-शास्त्र 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के कर्त्तव्य पर जोर देते हैं। बाह्य प्रमाणों के आधार पर फैसला न करते हुए उनके मूल्य को स्वीकार करने की बात कहते हैं। भारत ने आत्मेच्छा और यहां बसकर भारतीय संस्कृति की वृद्धि में योग देने-वाली जातियों की विभिन्न जीवन-पद्धतियों को कभी कुचलने की कोशिश नहीं की। गांधीजी हमारा ध्यान युगों पुरानी भारत की उस परम्परा की ओर आकृष्ट करते हैं जिसने हमें केवल सहिष्णुता का सबक ही नहीं पढ़ाया, वरन् सभी धर्मों का अगाध आदर करना भी सिखाया है। साथ-ही-साथ उन्होंने हमें इस बात से भी साव-धान किया है कि कहीं उस विरासत को, जो पीढ़ियों से हमारे पुरखों ने विशेष त्याग और उद्योग के साथ हमारे लिए तैयार की है, हम गंवा न बैठें। जब उनसे हिन्दू धर्म की परिभाषा पछी गई तो उन्होंने कहा—"यद्यपि मैं एक सनातनी हिन्दू हूं, तो भी मैं हिन्दू धर्म की व्याख्या नहीं कर सकता। एक सामान्य मनुष्य की तरह जो धर्म का पंडित नहीं है, मैं यह कह सकता हूं कि हिन्दू धर्म सब धर्मों को सब तरह से आदर का पात्र समझता है।"[१] गांधीजी कहा करते थे कि "सहिष्णुता में अपने धर्म की अपेक्षा अन्य धर्मों के प्रति निष्कारण हेयभाव छिपा है, जबकि अहिंसा अन्य धर्मों के प्रति हमें वही आदर करना सिखाती है जो हम अपने धर्म के प्रति करते हैं और इस प्रकार वे सहिष्णुता की अपूर्णता को स्वीकार करते हैं।" गांधीजी एकमात्र हिन्दू धर्म की अनन्यता का दावा नहीं करते थे और इसीलिए वे उसे अन्य धर्मों से ऊपर नहीं समझते थे।

"मेरे लिए यह विश्वास करना असंभव है कि मैं केवल ईसाई होकर ही स्वर्ग को जा सकता हूं, अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकता हूं। मेरे लिए यह मानना भी उतना ही कठिन है कि ईसा ही भगवान् के एकमात्र अवतरित पुत्र हैं।"[२] सत्य का ईश्वर से

---

१. हरिजन, १ फरवरी, १९४८, पृष्ठ १३।

२. मि. डोक ने एक बार गांधीजी से पूछा, "क्या ईसाइयत का भी आपके धर्मशास्त्र में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान है ?" गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह उसका एक अंग है। स्वयं ईसा मसीह ईश्वर की एक उज्ज्वल अभिव्यक्ति थे।" मि. डोक ने पूछा, "क्या वे इस प्रकार की एक अद्वितीय ज्योति नहीं थे जैसाकि मैं समझता हूँ ?" गांधीजी ने उत्तर दिया, "उस प्रकार के नहीं जैसाकि आप उन्हें सोचते हैं। मैं उन्हें उस सिंहासन पर अकेले नहीं बिठा सकता, क्योंकि मेरा विश्वास है कि ईश्वर ने बार-बार अवतार लिये हैं।" मि. डोक ने पुनः कहा, "मुझे संदेह है कि कोई भी

संबंध है और विचारों का मनुष्य से, और इसलिए हम यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि हमारे विचारों ने पूर्ण सत्य को अपने में हजम कर लिया है।

हमारे धार्मिक विचार कुछ भी क्यों न हों, हम सब एक शैल-शिखर पर चढ़ना चाहते हैं और हमारी आँखें उसी एक लक्ष्य की ओर लगी हैं। हो सकता है कि हम विभिन्न मार्गों का अनुसरण करें और हमारे मार्गदर्शक भी अलग-अलग हों। जब हम चोटी पर पहुँच जाते हैं तो वहाँतक पहुँचानेवाले रास्तों का कोई मूल्य नहीं रहता। धर्म में प्रयत्न का विशेष महत्त्व है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। इस व्याख्या का यह अर्थ कदापि नहीं कि उसका एकमात्र उद्देश्य जीवन का ऐहिक सुख, सुविधाएं और सफलता ही है। इसका अर्थ यह है कि राज्य सभी धर्मों को अपने-अपने मतों के प्रकाशन, अभ्यास और प्रचार के लिए उस समय तक समान और निर्बाध अधिकार देगा जबतक कि उनके विश्वास और आचरण नैतिक सिद्धान्तों का उल्लंघन नहीं करते। सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार के सिद्धान्त से विविध धर्मानुयायियों पर पारस्परिक सहिष्णुता का दायित्व भी लागू होता है। असहिष्णुता संकीर्णता का प्रतीक है। जनवरी १९२८ में गांधीजी ने 'अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व संघ' के संमुख भाषण देते हुए कहा था, "लंबे अध्ययन और अनुभव के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि (१) सभी धर्म सच्चे है (२) सब धर्मों में कोई-न-कोई खराबी है और (३) सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय हैं जितना मेरा हिन्दू धर्म। मैं अन्य मतों का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का। इसलिए मेरे लिए धर्म-परिवर्तन का विचार ही असंभव है। अन्य व्यक्तियों के लिए हमारी प्रार्थना यह नहीं होनी चाहिए, 'हे भगवान्, उन्हें वही प्रकाश दो जो मुझे दिया है', अपितु यह कि 'उन्हें वह प्रकाश और सत्य दो जो उनके श्रेष्ठतम विकास के लिए आवश्यक है।' मेरा धर्म मुझे वह सबकुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह मुझे उपासना

धार्मिक पंथ क्या इतना विशाल हो सकता है कि जो अपने में उनके व्यापक सिद्धान्तों का समावेश करले या कोई भी चर्च-पद्धति इतनी बड़ी होगी कि वह उन्हें अपने में बन्द कर सके। यहूदी, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, बौद्ध तथा कन्फ्यूसियस के अनुयायी का उनके हृदय में एक पिता की अनेक संतानों के समान स्थान है।" डोक द्वारा लिखित 'दक्षिणी अफ्रीका में एक भारतीय देश-भक्त' (१९०९), नामक पुस्तक के पृष्ठ ९० से।

करना सिखाता है। परन्तु यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें, जिससे एक ईसाई एक अच्छा ईसाई बन सके और एक मुसलमान एक अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा हमसे एक दिन यह पूछेगा कि हम क्या हैं और क्या करते हैं; न कि वह नाम जो हमने अपने को, और अपने कामों को दे रखा है।" २१ जनवरी १९४८ को अपने प्रार्थना-प्रवचन के समय गांधीजी ने कहा था, "मैंने बचपन से हिन्दू धर्म का अभ्यास किया है। जब मैं छोटा था तो भूत-प्रेतों के डर से बचने के लिए मेरी दाई मुझसे रामनाम लेने को कहती थी। बाद में मैं ईसाइयों, मसलमानों और दूसरे धर्म को माननेवाले लोगों के संपर्क में आया और अन्य धर्मों का पर्याप्त अध्ययन करने के बाद भी मैं हिन्दू धर्म को अपनाए रहा। मेरा विश्वास अपने धर्म में आज भी उतना ही प्रबल है, जितना कि मेरे बचपन में था। मेरा यह विश्वास है कि परमात्मा मुझे उस धर्म की रक्षा करने का साधन बनायेगा जिसे मैं प्रेम करता हूं, जिसका पालन करता हूं और जिसका मैंने अभ्यास किया है।"

यद्यपि गांधीजी ने इस धर्म का साहस और स्थिरता के साथ पालन किया था, तथापि उनमें एक असाधारण विनोदी भाव था, एक प्रकार की खुश-मिज़ाजी, शायद विनोदी तबियत थी जिसे हम प्रायः कट्टर धार्मिक आत्माओं के पास नहीं देखते हैं। यह विनोदीपन उनके हृदय की पवित्रता और आत्मा की स्वच्छंदता का परिणाम था। जीवन के अति साधारण और चंचल क्षणों तक में उनकी दूर-दर्शिता एक क्षण के लिए भी ओझल नहीं होती थी। जीवन की बुराइयाँ और कुटिलताएं वस्तुओं की अच्छाई पर से उनके विश्वास को नहीं डिगा सकती थीं। उन्होंने बिना किसी वाद-विवाद के मान रखा था कि उनका जीवन-क्रम स्वच्छ, सही और प्राकृतिक था जबकि इस यांत्रिक औद्योगिक सभ्यता के युग में हमारी जिन्दगी और रहन-सहन अप्राकृतिक, अस्वास्थ्यकर और गलत हो गये थे।

गांधीजी का धर्म अत्यन्त व्यावहारिक धर्म था। ऐसे भी धार्मिक व्यक्ति होते हैं, जो दुनिया की मुसीबतों और परेशानियों से बुरी तरह घिर जाने पर अपना मुह छिपाकर मठों या पहाड़ों की गुफाओं में चले जाते हैं और वहीं अपने हृदयों में जलनेवाली पवित्र आग की रक्षा करते हैं। यदि सत्य, प्रेम और न्याय दुनिया में नहीं मिलते तो हम इन गुणों को अपनी आत्मा के पवित्र मंदिर में प्राप्त कर सकते हैं। गांधीजी के लिए पवित्रता और मानव-सेवा अभिन्न थे। "मेरी विचार-प्रणाली कुछ धार्मिक ही रही है। मैं उस समय तक धार्मिक जीवन नहीं बिता सकता जबतक

कि मानव-मात्र से मैं अपना तादात्म्य स्थापित न कर लूं। और यह मैं उस समय तक नहीं कर सकता जबतक कि मैं राजनीति में भाग न लूं। मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापों का विस्तार आज टुकड़ों में नहीं बांटा जा सकता है। आज आप सामाजिक, राजनैतिक और पूर्णतः धार्मिक कार्यों को किन्हीं अभेद्य खंडों में बांट नहीं सकते। मानव कर्म से भिन्न मैं किसी धर्म को नहीं जानता। सत्य के प्रति मेरी भक्ति नें ही मुझे राजनीति के क्षेत्र में खींचा है और बिना किसी संकोच के, परन्तु नम्रता के साथ, मैं मानता हूं कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई संबंध नहीं वे वास्तव में धर्म के अर्थ को समझते ही नहीं।" इसमें से बहुत-से लोग जो अपनेको धार्मिक कहते हैं वे धर्म के एक बाहरी रूप का ही व्यवहार करते हैं। हम मशीन की तरह इसके रीति-रिवाजों का पालन करते हैं और बिना समझे इसके विश्वासों के आगे सिर झुका देते हैं। हम उन बाहरी शक्लों से ऐसे सहमत हो जाते हैं मानों वह सहमति हमें सामाजिक और राजनैतिक सुविधाएं दिलाती हो। हम रोज ईश्वर का नाम लेते हैं और अपने पड़ोसियों से घृणा करते हैं। खोखले वाक्यों और दिमागी अभि-मान से अपनेको धोखा देते हैं। गांधीजी के लिए धर्म का आत्मजीवन के साथ एक भावनापूर्ण योग था। वह अत्यन्त व्यावहारिक और गतिशील था। वे दुनिया के दुःख के प्रति अति समवेदनशील थे और चाहते थे कि हर आँख का हर आंसू वे पोंछ सकें। वे संपूर्ण जीवन की पवित्रता में विश्वास करते थे। धर्म-शून्य राजनीति उनके लिए एक ऐसे "शव के समान थी जो केवल दाह किये जाने के ही योग्य" हो।

वे राजनीति को धर्म और आचार-शास्त्र का ही एक अंग मानते थे। उनका खयाल था कि यह संघर्ष केवल शक्ति और धन के लिए ही नहीं है, वरन् यह एक ऐसा अथक और अनवरत प्रयत्न है कि जिससे लाखों पीड़ित अच्छा जीवन प्राप्त कर सकें, मनुष्यों का गुणात्मक स्तर ऊंचा हो सके, स्वतन्त्रता और साहचर्य, आध्यात्मिक गांभीर्य और सामाजिक एकता की शिक्षा दी जा सके। कोई भी राजनीतिज्ञ जो इन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए कार्य करता है, धार्मिक हुए बिना नहीं रह सकता। वह सभ्यता के निर्माण में नैतिकता के सहयोग की उपेक्षा नहीं कर सकता और न ही अच्छाई के स्थान पर बुराई का समर्थन कर सकता है। जीवन की भौतिक वस्तुओं से लिप्त न होने के कारण वे उनमें परिवर्तन करने के योग्य थे। सिद्ध व्यक्ति या खलीफा इतिहास से स्वयं तटस्थ रहकर इतिहास का निर्माण करते हैं।

किसी भी आदमी के लिए सारी दुनिया को सुधारना धृष्टता होगी। जहाँ वह है वहीं से उसका काम शुरू होना चाहिए। जो काम उसके सबसे नज़दीक

है वही काम उसे पहले लेना चाहिए। अफ्रीका से वापस आने पर जब गांधीजी ने भारतीयों को कुचले हुए अभिमान, भूख, क्लेश और पतन से पीड़ित पाया तो उन्होंने उनके मुक्ति-कार्य को एक चुनौती और सुयोग समझकर तत्काल हाथ में ले लिया। कमजोर का अत्याचार के आगे झुकना और बलवान का और अधिक दबाते जाना दोनों गलत हैं। उनका विश्वास था कि बिना राजनैतिक स्वतंत्रता के कोई भी उन्नति संभव नहीं। पराधीनता से मुक्ति, गुप्त संगठनों, सशस्त्र क्रांतियों, आग लगाने और मारकाट के सामान्य तरीकों से नहीं प्राप्त करनी चाहिए। स्वाधीनता का रास्ता न तो गिड़गिड़ाकर विनती करने का रास्ता है और न क्रांतिकारी हिंसा का। स्वाधीनता किसी राष्ट्र पर तोहफे की शकल में ऊपर से नहीं टपकती, वरन् उसके योग्य बनने के लिए उन्हें यत्न करना पड़ता है। महात्मा बुद्ध ने कहा था, "तुम जो कष्ट भोग रहे हो यह समझो कि तुम अपने आप ही भोग रहे हो और कोई तुम्हें इसके लिए बाध्य नहीं करता।" आत्मशोधन में ही स्वाधीनता का सच्चा मार्ग छिपा है। बल या जोर कोई उपाय नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में बल का प्रयोग एक अशिष्ट या मलिन खेल है। आत्मशक्ति अजेय है। गांधीजी कहते थे, "अंग्रेज चाहते हैं कि हम अपने संघर्ष को मशीनगनों के स्तर पर लायें। परन्तु उनके पास शस्त्र है, हमारे पास नहीं है। उनके हिसाब से हम उन्हें तभी हरा सकते हैं जब हम ऐसे स्तर पर बने रहें जहां हमारे पास हथियार हों और उनके पास न हों।" गलत बात को सहन करते समय हमें उस उदारता से उसका मुकाबला करना चाहिए जो जुल्म करनेवालों को चोट पहुँचाने तथा घृणा करने से हमें रोकती है। यदि हम अपने भीतर संपूर्ण साहस को इकट्ठा कर सकें तो आततायी के भीतर छिपा हुआ मनुष्यत्व हमारी अपील का विरोध नहीं कर सकता। विदेशियों द्वारा शताब्दियों से कुचली गई जातियों को उन्होंने एक नया आत्म-सम्मान, एक नया आत्म-विश्वास और शक्ति का एक नया भरोसा दिया। उन्होंने ऐसे सामान्य स्त्री-पुरुषों को लिया, जो वीरता और दंभ की, महानता और तुच्छता की अप्रामाणिक खिचड़ी थे। इनके भीतर से ही वीरों का निर्माण किया और अंग्रेज़ी शक्ति के विरुद्ध अहिंसक क्रांति का संगठन किया।

उन्होंने देश को विप्लव और रक्त-क्रांति से मुक्ति दिलाई और राजनैतिक आत्मा को नष्ट हो जाने से बचा लिया। भारत के स्वाधीनता-संग्राम में कई ऐसे अवसर आये जब उन्होंने ऐसे साधनों को अपनाया जो केवल एक कोरे राजनीतिज्ञ की नजर में बुद्धिमत्तापूर्ण न थे। ऐसे बड़े नेता भी हैं, जो व्यक्तियों को अपने में मिलाने

के लिए उनके सामने झुकना और चापलूसी करना भी जानते हैं। यद्यपि वे अपनी दृष्टि अपने लक्ष्य पर केंद्रित रखते हैं, तथापि वे लक्ष्य तक पहुंचने के साधनों के विषय में चिन्ता नहीं करते; किन्तु गांधीजी में यह बात न थी। "यदि भारत हिंसा के सिद्धान्तों को अपनाता है तो वह अस्थायी विजय भले ही प्राप्त कर ले, लेकिन तब वह मेरे हृदय का गर्व नहीं रहेगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि भारत को दुनिया के लिए एक संदेश देना है। लेकिन यदि भारत ने हिंसात्मक साधनों को अपनाया तो यह परीक्षा का समय होगा। मेरा जीवन अहिसा-धर्म द्वारा भारत की सेवा के लिए समर्पित है, जिसे मैं हिन्दू धर्म की बुनियाद मानता हूँ।" उन्होंने असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने का उस समय आदेश दिया था जब उन्होंने स्वयं देख लिया कि उनके लोग उनके उच्च आदर्शों पर टिकने के काबिल नहीं हैं। आन्दोलन बन्द करके इस प्रकार उन्होंने अपनेको विरोधियों की आलोचना का लक्ष्य बनाया। "हमारे इस अपमान पर, जिसे पराजय भी कहा जा सकता है, विरोधियों को खुशी मना लेने दो। कायरता का आरोप सहन करना अपनी शपथ तोड़ने और ईश्वर के खिलाफ पाप करने से अधिक अच्छा है। अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करने की अपेक्षा दुनिया की हँसी का पात्र बनना लाख दर्जे अच्छा है। मैं जानता हूँ कि समस्त आक्रमणात्मक योजनाओं का यह तीव्र परिवर्तन राजनैतिक दृष्टि से अविवेकपूर्ण और गलत हो सकता है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि धार्मिक दृष्टि से यह बिलकुल ठोस है।" जो नैतिक रूप से गलत है वह राजनैतिक रूप से ठीक नहीं हो सकता। ८ अगस्त १९४२ की शाम को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने पास किया तो गांधीजी ने कहा था, "हमें दुनिया का सामना शांत और साफ निगाहों से करना है, हालांकि दुनिया की आँखें आज रक्तपूर्ण हैं।" बंबई में जब नौ-सेना-उपद्रव आरम्भ हुआ तो गांधीजी ने इसके संगठन करनेवालों को यह कहकर बुरा-भला कहा था कि "चारों ओर घृणा का वातावरण छाया हुआ है। अधीर देश-प्रेमी यदि उनके लिए संभव हुआ तो हिंसात्मक तरीके से देश की आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ाने में इसका बड़ी आसानी से फायदा उठा सकते हैं। मैं सलाह दूंगा कि यह नीति किसी भी समय और हर जगह गलत और अशोभनीय है, खास तौर पर ऐसे देश के लिए, जिसकी आजादी के लड़नेवालों ने दुनिया के सामने यह घोषणा कर रखी है कि उनकी नीति सत्य और अहिंसा की है।" उनका दृढ़ विश्वास था कि हिंसा की प्रवृत्ति एक अवशेष मात्र है, जो कुछ समय में स्वयं अपने को खत्म कर लेगी। भारत की भावना के यह सर्वथा विरुद्ध है। "मैंने भारत की

आजादी के लिए जीवनभर कोशिश की है, लेकिन यदि इसे सिर्फ हिंसा द्वारा ही पाया जा सकता है तो मैं इसे पाना नहीं चाहूंगा। स्वाधीनता प्राप्त करने के साधन उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितना कि स्वयं साध्य।" अनैतिकता द्वारा प्राप्त भारत की स्वाधीनता वास्तव में स्वाधीनता नहीं हो सकती। उन्होंने भारत में भी अफ्रीका की तरह ही जमी हुई सरकार के विरुद्ध बिना किसी जातीय भावना के दबाव के बड़ी शांति के साथ आन्दोलन का संचालन किया। १५ अगस्त १९४७ का दिन हमारे संघर्ष की समाप्ति का दिन है। यह संघर्ष सद्भावना और दोस्ती के वातावरण में तय होनेवाले समझौते में खत्म हुआ।

गांधीजी के लिए स्वाधीनता केवल एक राजनैतिक तथ्यमात्र न थी। यह एक सामाजिक सचाई भी थी। वे भारत को विदेशी शासन से नहीं, अपितु सामाजिक कुरीतियों और साम्प्रदायिक झगड़ों से भी मुक्ति दिलाने के लिए लड़े थे। "मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूंगा, जिसमें गरीब-से-गरीब भी यह महसूस करे कि यह देश उसका है और इसके निर्माण में उसकी ज़ोरदार आवाज़ है। ऐसे भारत में, जिसमें ऊंच-नीच वर्गों का भेद नहीं होगा, जिसमें सभी जातियां मेल-मिलाप के साथ रहेंगी, छुआछूत और नशेबाजी के लिए कोई स्थान नहीं होगा। स्त्रियों और पुरुषों के समानाधिकार होंगे। हम शेष दुनिया के साथ शांति-संबंध कायम करेंगे, न शोषण करेंगे और न शोषण होने देंगे; और इसलिए हमारी सेना इतनी कम होगी, जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसे तमाम हितों का जो लाखों भोले-भाले लोगों के हितों के विरुद्ध नहीं हैं, उदारता के साथ आदर किया जायगा। व्यक्तिगत तौर पर मैं स्वदेशी और विदेशी के भेद से घृणा करता हूँ। यह है मेरे स्वप्नों का भारत।"

किसी भी राष्ट्र के स्वप्नों की पूर्त्ति केवल राजनैतिक स्वाधीनता से नहीं होती। वह राष्ट्र के जीवन में एक नई जागृति के लिए क्षेत्र और अवसर प्रदान करती है। आजाद हिन्दुस्तान विवेकशील व्यक्तियों का एक ऐसा देश बने, जो सच्ची सभ्यता के मूल्यों को, शांति को, व्यवस्था को, मनुष्य के प्रति सद्भावना को, सत्य के प्रति प्रेम को, सौंदर्य की खोज को, और बुराई के प्रति घृणा को प्रेम करे। यदि हम अपने साथियों से उस अधिकार के लिए लड़ते हैं, जो रुपया कमा सकता है और जीवन को अधिक भद्दा बना सकता है, तो इसका अर्थ यह होता है कि हमने जीवन के सौंदर्य और सभ्यता के गौरव को नष्ट कर दिया है।

गांधीजी भारतीय समाज को सच्चे अर्थ में स्वतंत्र बनाना चाहते थे, इसी-

लिए अपने रचनात्मक कार्यक्रम के बीच में उन्होंने चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और साम्प्रदायिक एकता को हमेशा रखा था। स्वतंत्रता उस समय तक केवल मजाक है जबतक कि लोग भूखे मरें, नंगे रहें और असह्य पीड़ा से सूखते रहें। चरखा जन-साधारण को गरीबी, अज्ञान, बीमारी और गंदगी से मुक्ति दिलाने में सहायता करेगा। लाखों व्यक्ति यदि अपने पर लादे गये आलस्य को दूर नहीं कर सकते तो राजनैतिक स्वाधीनता का उनके लिए कोई मूल्य नहीं। हिन्दुस्तान की आबादी के ८० प्रतिशत लोग छः महीने तक अनिवार्यतः बेकार रहते हैं। ऐसे उद्योगों को, जिन्हें भुलाया जा चुका है, पुनर्जीवित कर, आमदनी का जरिया बनाना होगा। इसी तरह हम उनकी सहायता कर सकते हैं। गांधीजी कृषि के पूरक काम के रूप में चरखे के इस्तेमाल पर हमेशा ज़ोर देते थे।

चरखा जीवन के बढ़ते हुए यंत्रीकरण पर एक रोक का काम भी करता है। यंत्रों का ज्यादा-से-ज्यादा व्यवहार करनेवाले समाज में मनुष्यों के मस्तिष्क जीवित अंगों की तरह नहीं, बल्कि कलों की तरह काम करते हैं। वे बड़े पेचीदे संगठनों, उद्योगपतियों के गुट्टों और मजदूर-संगठनों पर निर्भर रहते हैं और उनके निर्णयों पर वे अधिक प्रभाव नहीं डाल सकते। इसके अलावा पूरा काम न करके केवल उसका एक हिस्सामात्र करने से लाखों लोगों की स्वाभाविक रचनात्मक सूझ दब जाती है। जब हम किसी काम को समाज के एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह नहीं कर पाते तो उस काम के करने में हमें सन्तोष नहीं होता। हम अपने जीवन से ऊब जाते हैं। हमारी जिन्दगी व्यर्थ हो जाती है और तब उत्तेजना और महत्त्वपूर्ण अनुभव की कमी को पूरा करने के लिए हम पाशविक क्षति-पूर्त्ति के उपायों का सहारा खोजते हैं। यंत्रीकरण-प्रधान-समाज में धनी और गरीब दोनों दुःखी रहते हैं। धनी स्त्री और पुरुषों को अपनी आध्यात्मिक मृत्यु का स्थूल भान होने लगता है, मानो उनकी आत्मा जड़ और गतिशून्य हो गई हो। बुड्ढे लोग भूखों मरने लगते हैं, क्योंकि उन्हें तबतक काम करने के लिए विवश होना पड़ता है जबतक कि वे और अधिक काम न कर सकें। स्त्रियों को दमतोड़ मेहनत के काम करने पड़ते हैं।

गांधीजी ने ग्रामों की परम्परागत सभ्यता को जीवित रखने के लिए संघर्ष किया; क्योंकि यह सभ्यता ऐसे लोगों की जीवित एकता की प्रतीक थी, जो सामंजस्य-पूर्वक एक ऐसे धरातल पर पारस्परिक संबंध के कार्यों में समान जीवन और विश्व की समान भावना द्वारा जुड़े थे।

अंधेरा और गंदगी, बदबू और सड़ी हवा, तथा बुखार और बच्चों के रोगों

से भरे बड़े घने बसे शहरों की अपेक्षा खुले मैदानों और हरी पत्तियोंवाले गांवों में मनुष्य की महत्वाकांक्षी आत्मा अपनेको अधिक स्वस्थ और स्वतंत्र अनुभव करती है। गांव-समूह में लोग अपनेको जिम्मेदार व्यक्ति मानते हैं, क्योंकि वे बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से ग्राम-जीवन में योग देते हैं। शहर में जाकर बसने पर ये गांववाले अपने को बेचैन, उत्साह-शून्य और बेकार समझने लगते हैं। किसानों और बुनकरों की जगह यंत्रों और व्यापारियों ने ले ली है, जहाँ जीवन की थकान को दूर करने के लिए उत्तेजनात्मक मनोविनोद रचे जाते हैं। ऐसी अवस्था में कोई आश्चर्य नहीं कि जीवन के इस मरुस्थल में मनुष्य का सारा उत्साह खत्म हो जाता है। यदि हम समाज का मनुष्यता के आधार पर संगठन और जीवन के सभी कामों और संबंधों में नैतिक प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहते हैं तो हमें विकेन्द्रित ग्राम-अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना होगा, जिसमें मशीन का उपयोग केवल उसी सीमा तक किया जा सके जिस सीमा तक वह समाज के मौलिक ढांचे और मनुष्य की आत्मा की स्वतंत्रता में बहुत बाधक न हो।

गांधीजी मशीनरी का मशीन होने के नाते बहिष्कार नहीं करते थे। इस विषय में उन्होंने स्वयं कहा है, "जब मैं यह जानता हूँ कि यह शरीर स्वयं यंत्रों का एक नाजुक समूह है तब मैं मशीन के खिलाफ कैसे हो सकता हूँ ? चरखा एक मशीन है। छोटी-सी खरिका (दाँत-कुरेदिनी) भी एक मशीन है। अतः मैं तो मशीन के लिए पागल बनने की वृत्ति का विरोधी हूँ, स्वयं मशीन का नहीं। यह पागलपन उनके कथनानुसार श्रम-शक्ति के बचाने के लिए है। लोग इस श्रम-शक्ति को बचाने की धुन में यहाँतक आगे बढ़ जाते हैं कि हजारों लोग बेकार होकर खुली सड़कों पर पड़कर भूखों मरने लगते हैं। "मैं समय और श्रम दोनों की बचत करना चाहता हूँ, लेकिन मानव-जाति के किसी एक अंश के लिए नहीं, वरन् सबके लिए। मैं चाहता हूँ कि पूंजी का संचय कुछ हाथों में न होकर सब हाथों में हो। मशीन आज केवल कुछ व्यक्तियों को लाखों लोगों की पीठ पर सवार होने में सहायता पहुँचाती है। इस सबके पीछे मेहनत बचाने की कल्याण-भावना नहीं, वरन् लालच है। अपनी समस्त शक्ति के साथ वस्तुओं की इस व्यवस्था के विरोध में मैं लड़ रहा हूँ। मशीनों को मनुष्य की हड्डियों को चूसने का काम नहीं करने देना है। बिजली द्वारा संचालित कारखानों का राष्ट्रीयकरण अथवा राजनियंत्रण होना चाहिए। इस कार्य में सबसे अधिक ध्यान मनुष्य का रहना चाहिए।"

"यदि गांव-गांव में, घर-घर में हम बिजली दे सकते हैं तो गांववाले अपने औजारों

को बिजली से चलायें। इसका विरोध मैं न करूंगा। परन्तु ऐसी अवस्था में ग्राम-पंचायतें या राज्य उन बिजलीघरों की मालिक होंगी, जैसे गांव के चरागाहों का स्वामित्व गांव का होता है। सार्वजनिक उपयोग की ऐसी बड़ी मशीनों का भी, अपना अनिवार्य स्थान है जिन्हें मनुष्य के श्रम से चालू किया जा सकता है; लेकिन ऐसी सभी मशीनों पर सरकार का नियंत्रण रहेगा और वे सब जनता के हित में ही इस्तेमाल की जायंगी।" धार्मिक और सामाजिक सुधारक के रूप में गांधीजी ने हमें प्रचलित सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ एड़ लगाकर सावधान कर दिया। उन्होंने हमें यह सलाह दी कि हम धर्म को उन व्यर्थ की बातों से छुटकारा दिलायें जिन्होंने बहुत दिनों तक उसके चारों ओर इकट्ठे होकर उसे बोझिल बना दिया है। ऐसी बातों में अस्पृश्यता का प्रमुख स्थान है। अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने से हिन्दू धर्म को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। नये भारत के संविधान का उद्देश्य समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था कायम करना है, जिसमें सदाचार और स्वातंत्र्य के आदर्श आर्थिक और राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को स्फूर्ति प्रदान करें।

गांधीजी के नेतृत्व में अखिल भारतीय कांग्रेस ने भारत के भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियों में मैत्रीपूर्ण संबंध एवं असाम्प्रदायिक लोकशाही स्थापित करने के लिए कार्य किया। उन्होंने एक स्वतंत्र और संगठित भारत के लिए यत्न किया। उनकी विजय का क्षण उनके लिए बड़ी दीनता का समय हो गया। देश का विभाजन बड़ी ही दुःखदायी भूल थी और घोर निराशा के चंगुल में फंसकर, साम्प्रदायिक खून-खराबी से थककर—जिसने पिछले कुछ महीनों से देश के मुख पर कालिख पोत रखी थी; पीड़ितों और भगाये हुए लोगों को राहत पहुंचाने के ख्याल से—अपने उचित निर्णय और गांधीजी की सलाह के बावजूद हम भारत-विभाजन के सामने झुक गये। कितना भी पश्चाताप अब उस खोये हुए अवसर को वापस नहीं ला सकता। एक क्षण की भूल को सुधारने के लिए हमें वर्षों तक दुःख सहकर प्रायश्चित्त करना पड़ सकता है। हम जो कुछ बनाना चाहते थे, वह नहीं बना सकते। अब तो जो कुछ बना सकते हैं, वही बन सकेगा। भारत-विभाजन जैसे महत्त्वपूर्ण निर्णयों को लोग उचित मान दे सकें इसके लिए इतिहास की शताब्दियां गुजर जायंगी। भविष्य को देखने की ताकत हमें नहीं मिली है तो भी इस समय तो विभाजन की कीमत साम्प्रदायिक शांति स्थापित नहीं कर सकी; बल्कि एक तरह से इसने साम्प्रदायिक कटुता को और बढ़ा दिया है।

१५ अगस्त को नई दिल्ली में मनाये गये समारोहों में गांधीजी ने भाग नहीं लिया। उन्होंने इसके लिए क्षमा मांगी। उस समय वे बंगाल के गांवों के सुनसान रास्तों पर पैदल चलते हुए गरीबों को सान्त्वना दे रहे थे और उनसे हाथ जोड़कर विनती कर रहे थे कि वे अपने हृदयों से संदेह, कटुता और घृणा की भावना को बिलकुल निकाल दें। असंख्य आदमियों का अपना देश छोड़ना, हजारों थके-मांदे घरों से निकाले हुए बे-घर लोगों का चिन्ता में डूबे हुए इधर-उधर भटकना, साम्प्रदायिक हिंसा का हैवानी दौर और सबसे भयंकर चारों ओर फैलने वाला आध्यात्मिक पतन, संदेह, क्रोध; शंका, वहम और निराशा को देखकर गांधीजी का हृदय दुःख में डूब गया। इन सब बातों से दुःखी होकर अपने शेष जीवन को इस समस्या के मनोवैज्ञानिक हल खोजने में लगाने का निश्चय किया। कलकत्ता और दिल्ली में किये गये उनके उपवासों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। लेकिन बुराई इतनी गहरी थी कि इतनी आसानी से उसका इलाज होना कठिन था। २ अक्तूबर १९४७ को अपने ७८ वें जन्म-दिवस पर उन्होंने कहा था, "मैं अपनी हर सांस के साथ परमात्मा से यह प्रार्थना करता हूं कि या तो मुझे इस आग को शांत करने की शक्ति दे या मुझे इस दुनिया से उठा ले। मैं, जिसने भारत की आजादी के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा दी, वह स्वयं इस खून-खराबी का एक जीवित गवाह नहीं बनना चाहता।"

जब मैं अन्तिम बार उनसे दिसम्बर १९४७ के शुरू में मिला तो मैंने उन्हें घोर पीड़ा में पाया। उस समय वे सम्प्रदायों के आपसी संबंधों को सुधारने का या इस काम को करते हुए अपनी आहुति देने का निश्चय कर चुके थे। १२ जनवरी १९४८ को दिल्ली में अपनी प्रार्थना-सभा में इस उपवास की सूचना देते हुए गांधीजी ने कहा था, "कोई भी इंसान जो पवित्र है अपनी जान से ज्यादा कीमती चीज कुर्बान नहीं कर सकता। मैं आशा रखता हूं और मैं प्रार्थना करता हूं कि मुझमें उपवास करने के लायक पवित्रता हो। जब मुझे यह यकीन हो जायगा कि सब कौमों के दिल मिल गये हैं और वह बाहर के दबाव के कारण नहीं, मगर अपना-अपना धर्म समझने के कारण, तब मेरा उपवास टूटेगा। आज हिन्दुस्तान का मान सब जगह कम हो रहा है। एशिया के हृदय पर और उसके द्वारा सारी दुनिया के हृदय पर हिन्दुस्तान का रामराज्य आज तेजी से गायब हो रहा है। अगर इस उपवास के निमित्त हमारी आंखें खुल जायं तो यह सब वापस आ जायगा। मैं यह विश्वास रखने का साहस करता हूं कि अगर हिन्दुस्तान की

अपनी आत्मा खो गई तो तूफानों से दुखी और भूखी दुनिया की आशा की आंख की किरण का लोप हो जायगा। . . . . मेरी सबसे यह प्रार्थना है कि वे उपवास पर तटस्थ वृत्ति से विचार करें और यदि मुझे मरना ही है तो मुझे शांति से मरने दें। मैं आशा रखता हूं कि शांति तो मुझे मिलने ही वाली है। हिन्दू धर्म का, सिख धर्म का और इस्लाम का बेबस बनकर नाश होते देखना इसकी निस्बत मृत्यु मेरे लिए सुन्दर रिहाई होगी। . . . . जरा सोचिये तो सही, आज हमारे प्यारे हिन्दुस्तान में कितनी गंदगी पैदा हो गई है! तब आप खुश होंगे कि हिन्दुस्तान का एक नम्र पूत, जिसमें इतनी ताकत है; और शायद इतनी पवित्रता भी है, इस गंदगी को हटाने के लिए ऐसा कदम उठा रहा है, और अगर उसमें ताकत और पवित्रता नहीं है तब वह पृथ्वी पर बोझ रूप है। जितनी जल्दी वह उठ जाय और हिन्दुस्तान को इस बोझ से मुक्त करे, उतना ही उसके लिए और सबके लिए अच्छा है।"[१] उनकी मृत्यु इसी समय हुई जब वह इस महान् कार्य में संलग्न थे। महात्माओं को यह दंड भोगना ही पड़ता है और इसीलिए वे जीवन को दुःख और कष्ट में ही खत्म कर देते हैं, ताकि उनके बाद आने वाले लोग अधिक शांति और सुरक्षा से रह सकें।[२]

अपने ही पिछले दुष्कर्मों में हम पूरी तरह उलझे हुए हैं। अपने नीति-शास्त्र के सिद्धान्तों को तोड़-मोड़कर जो जाल हमने स्वयं बुनकर तैयार किया है, हम उसमें स्वयं फंसते जा रहे हैं। साम्प्रदायिक मतभेद अभी तक एक घाव

---

१. 'प्रार्थना-प्रवचन', भाग २, पृष्ठ २९०-२९१

२. राबर्ट स्टीमसन ने संवाददाताओं से बातचीत करते हुए ३१ जनवरी को कहा था, ". . . . मैं उन आठ मुसलमान मजदूरों को याद रखूंगा, जिन्होंने यमुना के निकट सामान्य हरे मैदान में चिता तैयार करने म सहायता की थी। इन मजदूरों ने चिता पर चन्दन की लकड़ियां रखते हुए मुझे बताया कि वे महात्माजी से प्रेम करते थे, क्योंकि वे मुसलमानों के सच्चे दोस्त थे। वहां एक अछूत भी था, जिसने चिता तैयार होने से पूर्व एक टहनी उठाई और यह विचार करते हुए कि उसे कोई देख नहीं रहा है, वह लुकछुप कर आगे बढ़ा और उसने वह टहनी उस ईंधन के ऊपर रख दी, जो वहां पहले से ही रखा हुआ था और तब एक बहुत ही हल्के स्वर में उसने कहा, "बापू मुझे और मेरी जाति को आशीर्वाद दीजिए।" 'लिसनर', ५ फरवरी १९४८, पृष्ठ २०६

की शक्ल में हैं। वह पीब का फोड़ा नहीं बना है, लेकिन घाव में पीब पड़ने की संभावना रहती है। यदि उस संभावना को रोकना है तो हमें उन आदर्शों का पालन करना होगा, जिनके लिए महात्मा गांधी जिये और मरे। हमें आत्म-संयम पैदा करना होगा। हमें क्रोध, द्वेष, विचार और वाणी की अनुदारता एवं हर प्रकार की हिंसा से बचना होगा। यदि हम अच्छे पड़ोसियों की तरह रहते हुए अपनी समस्याओं को शांति और सद्भावना के साथ सुलझा लेते हैं तो उनके जीवन-कार्य का यह सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार होगा। उनकी पुण्यस्मृति मनाने का सब से अच्छा रास्ता यह है कि हम उनके दृष्टिकोण को एवं सभी मतभेदों को दूर करने के लिए सहानुभूतिपूर्ण समझौते के रास्ते को अपनायें, उसपर अमल करें।

लोग जब इस संघर्ष को भूल जायंगे, उस समय भी गांधीजी दुनिया में नैतिक और आध्यात्मिक क्रान्तिदूत की तरह हमेशा जीवित रहेंगे, जिसके बिना पथ-भ्रष्ट दुनिया को शांति नहीं मिलेगी। ऐसा कहा जाता है कि अहिंसा बुद्धिमानों का स्वप्न है और हिंसा मनुष्य का इतिहास। यह सच है कि युद्ध स्पष्ट और नाटकीय होते हैं और इतिहास की दिशा को बदलने में उसके नतीजों का बड़ा साफ और महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, किन्तु एक ऐसा संघर्ष है जो हमेशा जनता के दिमाग़ में चलता रहता है। उसके नतीजों को मृत और घायलों के आंकड़ों में नहीं लिखा जाता। यह संघर्ष मानवीय शालीनता के लिए, उन भौतिक युद्धों को टालने के लिए जो मानव-जीवन को अवरुद्ध करते हैं और युद्धविहीन दुनिया के लिए किया जाता है। इस महान् संघर्ष के योद्धाओं में गांधीजी अग्रगण्य थे। उनका संदेश बुद्धिवादी लोगों के शास्त्रीय विवाद का विषय नहीं, यह पीड़ित मानव की आर्त पुकार का उत्तर है, जो आज ऐसे चौराहे पर खड़ा है, जहां प्रेम के अथवा जंगली कानूनों के द्वार खुलते हैं। यदि यह सत्य कि प्रेम घृणा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है, सिद्ध नहीं हो सका तो हमारे समस्त विश्व-संगठन व्यर्थ सिद्ध होंगे। दुनिया केवल इसीसे एक नहीं हो सकती कि हम उसका चक्कर एक दिन में पूरा कर लेते हैं। कितनी ही दूर या कितने ही तेज हम क्यों न चलें, हमारे दिमाग हमारे पड़ोसियों के नजदीक नहीं जाते। हमारी आकांक्षाओं और हमारे कार्यों की एकरूपता ही सच्चे अर्थ में विश्व-एकता है। संगठित विश्व आध्यात्मिक एकता का ही भौतिक प्रतिरूप है। यंत्रवत् अस्थायी व्यवस्थाओं एवं बाह्य संगठनों द्वारा आध्यात्मिक परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकते। सामाजिक ढांचों का परिवर्तन जनता के दिमाग़ को नहीं बदलता। युद्धों की जड़ बनावटी

मूल्यांकन, अज्ञान और असहिष्णुता में होती है। गलत नेतृत्व के कारण ही दुनिया इस मुसीबत में पड़ी है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो सारे संसार में सभ्य गुणों पर काला पर्दा पड़ रहा है। बड़े-बड़े राष्ट्र एक-दूसरे के शहरों पर विजय प्राप्त करने के लिए बमबारी करते हैं। अणुबम के प्रयोग का नैतिक प्रभाव बम से भी कहो अधिक घातक सिद्ध हो सकता है। दोष भाग्य का नही, हमारा अपना है। जबतक हम अपनी आत्मा का पालन करना और भ्रातृ-स्नेह बढ़ाना नहीं सीखते तबतक संस्थाओं का कोई लाभ नहीं। जबतक दुनिया के नेता अपने उन ऊंचे पदों में नही, बल्कि स्वयं अपनी आत्मा की गहराई में, अन्तःकरण की स्वच्छता में और खुद में सर्वोत्कृष्ट मानवीय महानता को नहीं तलाश करते तबतक दुनिया में स्थायी शान्ति की कोई आशा नहीं। गांधीजी का यह विश्वास था कि दुनिया अपने मूल में और उच्चतम आकांक्षाओ में एक ही है। वे जानते थे कि ऐतिहासिक मनुष्यता का एकमात्र उद्देश्य एक विश्व-सभ्यता, एक विश्व-संस्कृति और एक ही विश्व-समुदाय था। मनुष्यों के हृदयों में बुरी तरह घिरे अंधकार के स्थान पर समझदारी और सहिष्णुता को प्रसारित करके ही हम दुनिया के दुःख से छुटकारा पा सकते हैं। गांधीजी का करुणार्द्र और सन्तप्त हृदय उस विश्व की घोषणा करता है जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ भी प्रयत्नशील है। विलीन होने वाले भूत का यह एकाकी प्रतीक नवीन जन्म के लिए संघर्ष करनेवाली दुनिया का भी दूत है और इसी प्रकार वे भावी मानव की अन्तरात्मा का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

गांधीजी के लिए सत्य ही शाश्वत है। वही मानवात्मा में निहित परमात्मा का स्वरूप है। यह तलवार से अधिक शक्तिशाली है। सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू है। यदि हम पदार्थवाद की अपेक्षा आत्मा की श्रेष्ठता को और नैतिक विधान की प्रधानता को स्वीकार कर लें तो हम नैतिक शक्तियों द्वारा बुराई पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। हिंसा सत्य की भावना से कोसों दूर रहने वाले व्यक्तित्व की अन्तिम अभिव्यक्ति है। जब कोई आदमी हिंसा की आखिर में नहीं, शुरू में ही शरण लेता है तो उसे अपराधी या पागल या दोनों ही कहा जाता है। अहिंसा पार्थिव जीवन तक ही सीमित नहीं, वह मस्तिष्क का भी एक रूप है। औरों का बुरा सोचना और झूठ बोलना दोनों ही हिंसा-कार्य हैं। अहिंसा अथवा सत्याग्रह गांधीजी के लिए नकारात्मक मनःस्थिति का सूचक न था। वह एक यथार्थ और गतिशील विचार का प्रतीक है। यह बुराई के सामने झुक

जाना या प्रतिरोध न करना नहीं है। यह प्रेम द्वारा उसका प्रतिरोध करता है। आत्मा की, सत्य की और प्रेम की उस शक्ति में विश्वास करने का नाम ही सत्याग्रह है, जिससे हम आत्म-त्याग और आत्म-क्लेश द्वारा बुराइयों पर विजय प्राप्त करते हैं। यह स्वतंत्रता और शाति के लिए किये गये सासारिक प्रयत्नों को एक नया अर्थ देता है। हमें स्वयं कष्ट सहना चाहिए। दूसरों पर इसको नहीं लादना चाहिए। सत्याग्रह आत्म-निर्भर है। अमल में लाये जाने से पहले यह विरोधी की स्वीकृति नहीं चाहता। प्रतिरोध करनेवाले विरोधों के सामने इसकी शक्ति और ज़ोर के साथ प्रकट होती है। अतः इसे कोई रोक नहीं सकता। सत्याग्रही यह नहीं जानता कि पराजय क्या होती है, क्योंकि वह अपनी शक्ति का ह्रास किये बिना सत्य के लिए लड़ता है। इस संघर्ष में मृत्यु पाना मुक्ति है, और जेल आज़ादी के लिए खुले द्वार का काम करती है। चूंकि सत्याग्रही अपने विरोधी को कभी चोट नहीं पहुँचाता, वह या तो नम्र तर्कों द्वारा उसकी विवेक-बुद्धि से, या आत्म-त्याग द्वारा उसके हृदय से प्रार्थना करता है। इसलिए सत्याग्रह दोनों को मंगलकारी होता है। यह करने वाले का भी मंगल करता है और जिसके खिलाफ इसका प्रयोग किया जाता है, उसका भी मंगल करता है।

"मेरी अहिंसा का साधन एक जीवित शक्ति है। इसम कायरता या कमजोरी के लिए कोई भी जगह नहीं है। एक हिंसक के लिए किसी दिन अहिंसक बन जाना संभव है, लेकिन डरपोक के लिए नहीं। इसीलिए मैंने इन पृष्ठों में कई बार कहा है कि यदि हम अपनी स्त्रियों की और अपने पूजा के स्थानों की रक्षा कष्ट-सहन की शक्ति, अर्थात् अहिंसा द्वारा नहीं कर सकते तो हमें, यदि हम मनुष्य है तो, "उनकी रक्षा लड़कर ही करनी चाहिए।"[१] "दुनिया केवल तर्क से नहीं चलती। जीवन में भी किसी हद तक हिंसा है और इस लिए हमें न्यूनतम हिंसा का रास्ता अपनाना पड़ेगा।"[२] जिसे हम सत्य समझते है उसके लिए हम लड़ेंगे। पर कमजोरी, कायरता और आरामतलबी के कारण हिंसा से बचने की कोशिश नहीं करेंगे।

गांधीजी डाक्टरी सहायता के लिए एक भारतीय चिकित्सा-टुकड़ी तैयार करके स्वयं उसे एक सार्जेन्ट की हैसियत से बोअर-युद्ध में ले गये थे।

---

१. **'यंग इडिया' १६ सितम्बर १९२७**

२. **'यंग इंडिया, २८ सितम्बर १९३४**

१९०६ में ज़ुलू-क्रान्ति के समय उन्होंने घायलों को ले जाने के लिए एक स्ट्रेचर-टुकड़ी तैयार की थी। उन्होंने यह इसलिए किया था, क्योंकि उनका विश्वास था कि भारतीयों की नागरिकता की मांग के अनुरूप ही उनकी कुछ जिम्मेदारियां भी हैं। पिछले महायुद्ध में उन्होंने फौजों के लिए सिपाही भर्ती कराने में इसीलिए सहायता पहुंचाई, क्योंकि उसमें जो लोग भरती नहीं हो रहे थे, वे ऐसा अहिंसा के प्रति विश्वास के कारण नहीं कर रहे थे, बल्कि वे डरपोक थे। वे इस बात पर सदा ज़ोर देते थे कि डर के कारण खतरे से दूर भागने की अपेक्षा साहस से लड़कर मर जाना कहीं ज्यादा अच्छा है। लेकिन उनके लिए 'अहिंसा' धर्म का हृदय थी और उनके अनेक अनुभवों ने इस विश्वास को और भी मजबूत बना दिया था।

१९३८ में गांधीजी ने कहा था, "जान लेने वाले बम के पीछे उसे छोड़ने-वाले मनुष्य का हाथ है और उसके हाथ के पीछे एक इंसानी दिल है, जो हाथ को गति प्रदान करता है। आतंक की नीति के पीछे यह मान्यता रहती है कि यदि आतंक को पर्याप्त मात्रा में इस्तेमाल किया गया तो वह इच्छित फल प्रदान करेगा अर्थात् विरोधी को आतंक की इच्छा के सामने झुका देगा। गत ५० वर्षों के अहिंसा के अखंड व्यवहार के अनुभव के उपरान्त मेरा यह दृढ़ विश्वास हो चला है और वह विश्वास आज पहले से अधिक उज्ज्वल है कि मानव-समाज की रक्षा उस अहिंसा द्वारा ही की जा सकती है, जो इंजील (बाइबिल) की भी प्रधान शिक्षा है, जैसा कि मैंने इंजील को समझा है। शक्ति का चाहे कितने ही न्याययुक्त ढंग से इस्तेमाल किया जाय, हमें अन्त में उसी दलदल की ओर ले जायगी जिसकी ओर हिटलर और मुसोलिनी की शक्ति ले गई। अंतर केवल अंश का है। अहिंसा में विश्वास रखने वाले लोगों को इसे संकट के समय ही व्यवहार में लाना चाहिए। थोड़ी देर के लिए हमें भले ही ऐसा मालूम हो कि हम एक अंधेरी दीवार से अपना सिर टकरा रहे हैं, तो भी तथ्य यह है कि लुटेरों तक के हृदय को छूने से हमें निराश नहीं होना चाहिए।"

'उन्नत' राष्ट्रों को यह विश्वास दिलाना कठिन है कि राजनैतिक सफलता शांति के अस्त्रों द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है। एप्टन सिंकलेयर ने कहा था, "मेरे पूर्वजों ने स्वयं राजनैतिक स्वाधीनता हिंसा द्वारा प्राप्त की थी; यानी उन्होंने ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंका और अपनेको एक स्वतंत्र गणतंत्र घोषित किया। और इसी भूमिपर काली जातियों को बंदी बनाये जाने की प्रथा का भी उन्होंने

हिंसा द्वारा ही अंत किया था। यदि शोषित जनता के हिंसा द्वारा स्वाधीन होने की कोई संभावना है तो मैं इसके इस्तैमाल को न्याययुक्त मानूंगा।" बर्नाड शॉ का कहना था, "हिंसा इतिहास की एक शास्त्रीय पद्धति रही है। इतिहास के सामने इन तथ्यों को अस्वीकार करना निरर्थक है। शायद यह भी कहा जा सकता है कि शेर कभी भी हिंसा के द्वारा जिन्दा रहने के योग्य नहीं है और सविनय अवज्ञा से वह शायद चावल भी खाने लगे।" लेकिन शक्तिशाली राष्ट्रों के ये प्रगतिशील विचारक इस बात को आज स्वीकार करते हैं कि अणुशस्त्रों द्वारा संचालित आगामी युद्ध मानव-जाति और उन सभी चीजों को, जिनकी वह रक्षा करना चाहती है, नेस्तनाबूद कर देगी। यह ऐसा युद्ध है, जिसमें जिन्दगियां बरबाद होती हैं, दिल टूटते हैं और दिमाग बिड़गते है और जिस दावे का उनके शत्रु ही खंडन करते है—"ईश्वर और इंसानियत के अस्तित्व से इन्कार करनेवाले शैतान हैं। यदि परिवर्तन लाने वाले गांधीजी के शांतिपूर्ण प्रयास सफल नही होते तो हमें घबराना नहीं चाहिए। क्या बात है, अगर हम अहिंसा के सिद्धान्त को अमल में लाने की कोशिश करते हुए मिट जायं। इस प्रकार हम एक बड़े सिद्धान्त के लिए ही मरेंगे और जियेंगे।"

गांधीजी यह महसूस करते थे कि उनके अनुयायियों ने स्वाधीनता-संघर्ष के लिए उनका नेतृत्व अवश्य स्वीकार किया था, लेकिन वे उनकी तरह हर परिस्थिति में अहिंसा को अपनाने के लिए तैयार न थे। राजनैतिक कार्य में जन-साधारण की प्रकृति की सीमाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है। इसीलिए गांधीजी मानते थे कि अखिल भारतीय कांग्रेस को बार-बार ऐसे राजनैतिक निर्णयों के पक्ष में अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है जो उनके दृढ़ विश्वासों के सर्वदा अनुरूप नहीं होते थे। यदि हम एक बार समझौता करना शुरू कर दें तो फिर पता नहीं, हम कहां जाकर रुकेंगे? यदि सत्य में हमारा अटूट विश्वास नहीं है तो उपयोगिता के नाम पर किसी भी चीज़ को न्याययुक्त ठहराया जा सकता है। राजनैतिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप सत्य को अंगीकार करने के खतरे से गांधीजी परिचित थे और इसीलिए उन्होंने कांग्रेस के निर्णयों के लिए अपने को जिम्मेदार मानने से इन्कार कर दिया था। उन्होंने उसकी सदस्यता से भी इस्तीफा देकर उससे अपना संबंध बिलकुल अलग कर लिया था।

हमें इस भ्रांति में नहीं रहना चाहिए कि हिंसा से तात्पर्य दबाव या दंड से है। राज्य के भीतर शक्ति के प्रयोग में और युद्धरत एक राज्य के दूसरे युद्धरत

राज्य के साथ शक्ति के प्रयोग में बहुत अन्तर है। शक्ति के प्रयोग की उस समय इजाजत दी जा सकती है जब वह एक तटस्थ सत्ता द्वारा जनहित के लिए न्यायानुकूल ढंग से व्यवहार में लाई जाती है, न कि विवादग्रस्त दलों में से किसी एक के पक्ष में। एक सुव्यवस्थित राज्य में न्याय का ही शासन होता है। वहां न्यायालय, पुलिस तथा कारावास सब कुछ होते है, किन्तु कोई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस नहीं होती। यह अराजकता और लूटमार का राज्य है। प्रत्येक युद्धरत राज्य अपनेको ठीक समझने का दावा करता है। हम भी सोच सकते हैं कि हमारा उद्देश्य उचित है। यह मानवीय हृदय की अच्छाई का सबूत है कि वह अच्छाई को स्वीकार करे और बुराई को त्याग दे। हिटलर ने भी जर्मनी में जर्मनों के हित की दुहाई देते हुए अपील की थी, जो उन्हें उचित मालूम पड़ती थी। इससे स्पष्ट है कि आज भी संसार में बुरे उद्देश्यों पर सदुद्देश्य का प्रभुत्व है। संभवतः हिटलर इसलिए हारा कि उसका मकसद बुरा होने के कारण वह हमसे अच्छा नही था। जहाँपर यह अन्तर्राष्ट्रीय सरकार न हो, जहां उचित-अनुचित का फैसला करने के लिए कोई निष्पक्ष न्यायालय न हो, वहाँपर किसीको कोई अधिकार नही कि वह अपने पड़ोसी पर अपनी इच्छा को थोपने के लिए बल का प्रयोग करे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के आदर्शवाले संसार में शक्ति का प्रयोग ही हिंसा है और इसलिए वह गलत है।

युद्धों का मूल कारण विश्व की अराजकता है। हिटलर स्वयं उसकी उत्पत्ति का कारण नही। जबतक हमारा विश्वास राज्य से परे किसी महान् उद्देश्य में नही है तबतक राज्य का निर्माण स्वयं अनियमित है। नागरिकों की सेवा को राज्य का उच्चतम साध्य मान लेने से पागल के उन्माद को उत्तेजना भले ही मिले, लेकिन आधुनिक मानवीय विकास की स्थिति में वह कोई स्थायी प्रोत्साहन नहीं दे सकता। प्रभुत्व-शक्ति कानून से परे नही है। धर्म का सबसे बड़ा अधिनियम वह है, जिसकी राज्य सरकारें सेवक है। जब हमारे पास न्यायालयों और पुलिस से मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय सरकार होगी, तो गांधीजी भी अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की ओर से पुलिस की शक्ति के व्यवहार की अनुमति दे देंगे। जिस प्रकार सभ्य राष्ट्रीय सरकार कानून के फैसलों और प्रचलित कार्यों को सख्त उपायों द्वारा लोगों से मनवाती है, उसी तरह विश्व-सरकार आक्रमणात्मक राज्यों को बल के जोर से रोक सकती है। तब भी गांधीजी यह चाहेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय सरकार कानन-भग

करने वाले से उसी प्रकार असहयोग करे, जैसे कि प्रतिरोध करने वाली जनता जुल्मी सरकार के विरोध में करती है।

गांधीजी ने अपने जीवन और अपनी शिक्षा द्वारा शासक और गुरु, ब्राह्मण और क्षत्रिय, स्वप्नद्रष्टा और संगठक के कार्यों में जो प्राचीन भेद है, उसकी अभिव्यक्ति की है। गुरु, खलीफा, हिन्दू संन्यासी, बौद्ध भिक्षु और ईसाई पादरी को चाहिए कि सत्य को जैसा स्वयं देखते है, उसी रूप में प्रकट करें। किसी भी दशा में उन्हें बल के प्रयोग से बचना चाहिए। उन्हें हत्या इसलिए नहीं करनी चाहिए, क्योंकि शत्रुओं को सन्तोष प्रदान करना तथा घृणा को दूर भगाना उनका कर्तव्य है। बल के भौतिक प्रयोग से भी बचने का संदेश देने वाली अहिंसा उनके जीवन का सिद्धान्त है। उनकी जड़ें साधारण मनुष्यों की अपेक्षा कहीं अधिक गहरी होती हैं, क्योंकि वे आभ्यन्तरिक सौंदर्य, वस्तुओं के उद्देश्य बोध, और उस अदृश्य जीवन से शक्ति प्राप्त करते हैं जो इस जगती के जीवन से परे है। लेकिन फिर भी वे ही जीवन को उन्नत बनाते हुए उसकी व्याख्या करते हैं। लेकिन दुष्ट व्यक्ति को शारीरिक शक्ति के बिना केवल नैतिक अच्छाई से नहीं दबाया जा सकता। शूली पर लटक कर ईसा मसीह अपनी ओर सबको आकृष्ट कर सके, लेकिन नैतिक दृढ़ता का वह अपूर्व कार्य, जिसके साथ शक्ति का सहयोग नहीं था, उन्हें फांसी लगाने से नहीं बचा सका। इतिहास के अन्य थोड़े व्यक्तियों की तरह ही गांधीजी का उदाहरण यह प्रकट करता है कि सबसे बड़ी बुद्धिमानी इसमें है कि दूसरा गाल भी सामने कर दिया जाय। लेकिन इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि इस गाल को कोई काटेगा नहीं। जबतक कि सारी दुनिया इससे मुक्त नहीं हो जाती तबतक हृदयहीन रहेगा ही और ऐसी अवस्था में सामाजिक व्यवस्था की सुरक्षा हमपर इस दायित्व को लादती है कि हम न्याय करें और जहाँ भी संभव हो हम उसे आध्यात्मिक समझाव द्वारा अमल में लावें और जहाँ आवश्यक हो वहाँ बल के प्रयोग द्वारा अमल में लायें। संत-परंपरा और प्रेम-अनुशासन में विश्वास करने वाले शिक्षकों के उपदेश के बावजूद, जो मानव-स्वभाव की दैवी संभावनाओं को जागृत करते हैं, हमें न्यायाधीश और ऐसी पुलिस की आवश्यकता रहेगी ही, जो बल का प्रयोग बल के लिए, वैयक्तिक लाभ के लिए, अथवा बदला लेने के लिए न करें। वे बल का प्रयोग उचित सत्ता के अधीन करते हैं और अहिसा अथवा करुणा की सच्ची भावना से ओत-प्रोत रहते हैं। इसलिए एक ऐसे गुरु के आचरण का भेद, जो एक ओर हमें प्राचीन

करुणा एवं संयत सहयोग की शिक्षा देते समय बल प्रयोग से बिलकुल दूर रहने की शिक्षा देता है और दूसरी ओर पुलिस और न्यायाधीशों के द्वारा उचित सत्ता के अधीन बल प्रयोग की सलाह देता है, कार्य-भेद के कारण पैदा होता है। दया और न्याय दोनों ही अपूर्ण मानव-समाज में अपना स्थान रखते हैं।[१]

अपने समय से पहले पैदा होने वाले सभी लोगों के दंड का भुगतान गांधीजी ने घृणा, प्रतिक्रिया और दुर्दान्त मृत्यु के रूप में किया है। अन्धकार में प्रकाश चमकता है, लेकिन अन्धकार को इसका बोध नहीं रहता। हमारे युग की इस अति मर्मान्तिक दु:खान्त घटना ने ऐहिक संसार के भीतर उपस्थित प्रकाश और अन्धकार के, प्रेम और घृणा के एवं तर्क और अतर्क के बीच चलने वाले संघर्ष को स्पष्ट कर दिया है। हमने सुकरात को जहर का प्याला पिला कर मारा, ईसा को सूली पर लटकाया और मध्ययुगीन शहीदों को जलाने वाले ईंधन के गट्ठों को आग लगा दी। हमने अपने अवतारों पर पत्थर बरसाये और मारा। गांधीजी भी गलत समझे जाने और नफरत के दुर्भाग्य से न बच सके। वे अन्धकार और कर्तव्य की ताकतों का मुकाबला करते हुए मरे और इस तरह उन्होंने प्रकाश, प्रेम और विवेक की शक्ति को बढ़ा दिया। कौन जानता है कि ईसाई मत बिना ईसा मसीह के फांसी पर लटके इतना बढ़ सकता था। वर्षों पहले रोम्यां रोलां ने कहा था कि वे गांधीजी को ऐसा ईसा मानते थे जिनको फांसी नहीं लगाई गई। हमने अब उन्हें फांसी भी दे दी। गांधीजी की मृत्यु उनके जीवन का सर्वोत्तम अंग था। ओठों पर रामनाम और हृदय में प्रेम का वरदान लिये हुए वे मरे।[२] गोलियां

---

१. देखिए, राधाकृष्णन् द्वारा लिखित 'भगवद्गीता' (१९४८, पृष्ठ ६८-६९)

२. **गांधीजी के पहले वक्तव्य :**

"उन एक लाख व्यक्तियों के आत्मत्याग से, जो औरों की हत्या करते हुए मरते हैं, एक निर्दोष व्यक्ति का आत्मत्याग लाख गुना प्रभावयुक्त है।" "मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तान में ऐसे अनेकों अहिंसक असहयोगी होंगे, जिनके बारे में यह लिखा जाता है कि उन्होंने बिना क्रोध के अपने बेसमझ हत्यारे के लिए प्रार्थना करते हुए गोलियां सहीं।" हरिजन २२ फरवरी १९४८। २० जनवरी १९४८ को जब एक पथभ्रष्ट यवक ने बम फेंका तो गांधीजी ने पुलिस इन्सपेक्टर जनरल को

लगने पर उन्होंने अपने हत्यारे को अभिवादन करते हुए उसके लिए शुभ कामना की। जो कुछ उन्होंने कहा, उसके लिए अपना जीवन दिया। वे उस आदर्श के लिए मरे जिसकी उन्होंने शिक्षा दी थी।

मानव-स्वभाव जिन श्रेष्ठतम आदर्शों को ग्रहण करने के योग्य है, उन आदर्शों से पूरित और प्रेरित होकर; जिस सत्य की उन्हें अनुभूति हुई उसका निर्भय होकर पालन और प्रचार करते हुए; लोभ और भूलों के अजेय दुर्गों के विरुद्ध त्याज्य आशा की अलख दुनिया में अकेले जगाते हुए, और इसपर भी शांत-दृढ़ता के साथ दुनिया की कठोरताओं का मुकाबला करते हुए—ऐसी दृढ़ता जो भय और संकट के आने पर ही अपना कुछ भी नहीं खोती—गांधीजी ने इस विश्वास-शून्य संसार के सामने एक मनुष्य में जो कुछ अच्छा और महान् होता है, उसे प्रदर्शित किया। मनुष्य के प्रयास की अनन्त प्रतिष्ठा में विश्वास स्थापित करके उन्होंने मानवीय गौरव को जाज्वल्यमान किया। वे ऐसे व्यक्तियों में से है जो मानव-जाति की सदा रक्षा करते है।

गाधीजी आत्मा के आन्तरिक जीवन की उस शक्ति में विश्वास रखते थे जो सदा से भारत की अपनी विरासत रही है और इसीलिए द्रोह और घृणा से अपने को मुक्त करने में, समस्त अपवित्रताओं को जला कर राख कर देने वाली प्रेम की इस शिखा को आगे बढ़ाने में, मृत्यु की छाया में भी निर्भीक होकर चलने में, और आशा की अमर पुकार को हमारे मामने रखने में वे पूरी तरह सफल हुए। जब नैतिक और आध्यात्मिक समस्याएं उन्हे घेर लेती थी, परस्पर-विरोधी आवेग जब उन्हे हिला देते थे और मुसीबत सताने लगती थी तो वे शक्ति और विश्राम प्राप्ति के लिए अपनी इच्छानुसार अपनी आत्मा के एकान्त में 'स्व' के रहस्यमय क्षेत्र मे चले जाते थे। धर्म के अर्थ और मूल्य के विषय में उनके जीवन ने हमारी भावना को एक नई चेतना और एक नई ताजगी प्रदान की है। ऐसे व्यक्ति, जो आध्यात्मिक भावना से भरे होने पर भी अपने ऊपर दु खी मानवता का भार ओढ़ लेते है, दुनिया में बहुत दिनों के बाद पैदा होते है।

हमने उनके शरीर का अन्त कर दिया; किन्तु उनकी आत्मा, जो स्वयं एक

उसे तंग न करने के लिए कहा। उन्होंने कहा था कि पुलिस को चाहिए कि वे उसे ठीक विचार और काम की ओर प्रवृत्त करें। गांधीजी ने श्रोताओं को अपराधी के प्रति क्रोध न करने की चेतावनी दी थी। 'हरिजन,' २ फरवरी १९४८, पृष्ठ ११

दैवी प्रकाश है बहुत दिनों और बहुत दूर तक प्रवेश कर, असंख्य पीढ़ियों को श्रेष्ठता से जीवनयापन के लिए प्रोत्साहित करती रहेगी ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽसम्भवम् ।

(गीता, १० अध्याय, ४१ श्लोक)

अर्थात्––जगत् में जो कुछ भी शक्ति, विभूति और गौरव से पूर्ण है उनको मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न समझो ।

: २ :

शहीद् गांधी

वेरा ब्रिटेन

३० जनवरी, १९४८ की शाम के ठीक पांच वजे के बाद, महात्मा गांधी अपनी प्रार्थना-सभा की ओर बढ़े । यह प्रार्थना बिड़ला-भवन से लगभग ५० गज की दूरी पर एक खुले लॉन में होती थी ।

वे, अपने अन्तिम और सबसे अधिक सफल उपवास से, जिसने कुछ समय के लिए सांप्रदायिक रक्तपात को बन्द कर दिया था, अभी पूरी तरह स्वस्थ भी नही हो पाये थे । अपनी दो नातिनों के कंधो का सहारा लिये हुए वे उस लाल पत्थर की वेदी की ओर चले, जहां रोज शाम को लोगों के सामने वे कुछ प्रवचन करते थे । पांच सौ के करीब लोग, जो उन्हें बडे ध्यान से देख रहे थे, प्रसन्न और हँसमुख गांधीजी को अपने बीच से रास्ता देने के लिए दो कतारों में खड़े हो गये थे ।

जैसे ही वे चबूतरे की तीन सीढ़ियो के ऊपर पहुंचे एक आदमी भीड़ को चीरकर सामने आया । दोनों हाथ जोड़ते-जोड़ते महात्माजी के मुख से ये आखिरी शब्द निकले, "मुझे आज देर हो गई ।" इसी समय उस अजनबी आदमी ने अपनी खाकी बुश-शर्ट के भीतर से एक रिवाल्वर निकाला और महात्माजी पर तीन बार गोली चलाई । वे वही जमीन पर गिर पड़े । गिरते ही कंधों पर से हटे हुए अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाते हुए उन्होंने भय-विह्वल भीड़ की ओर इस तरह जोड़ा, मानों वे प्रार्थना कर रहे हों ।

इस प्रकार अहिंसा का संरक्षक संत, भारत की महान् आत्मा हिसा के हाथों

हमेशा के लिए नष्ट कर दी गई। वे उन थोड़े लोगों में से एक थे जिन्होंने जिन्दगी के एक विशेष तरीके का अपने ऊपर सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। यह ऐसा तरीका था, जिसके अधिक स्त्री-पुरुषों द्वारा अनुसरणमात्र से कुटिल मानव-जाति आनन्द की एक निश्चित दुनिया की ओर बढ सकती है।

सभी संत स्वयं ईश्वर नहीं होते, इसलिए उन सबमें कुछ-न-कुछ दोष रहते हैं। अभी पिछले दिनों मेरी एक प्रसिद्ध महिला से भेंट हुई, जो महात्मा गांधी में किसी भी संत-गुण को मानने से नाराज़गी के साथ इन्कार कर रही थी, क्योंकि महात्माजी ने संतति-निरोध के पक्ष को आगे नहीं बढ़ाया था। उपर्युक्त महिला का विचार था कि गांधीजी द्वारा इसके समर्थन से भारतीय नारी की पीड़ा बहुत अंश तक कम हो सकती थी, और साथ ही आबादी की अति-वृद्धि से जो खाद्य-समस्या उपस्थित हो गई है, वह भी हल हो जाती।

परन्तु, शायद ही कभी अपने इन दोषों के कारण संतों की हत्या होती है। बुराई एक ऐसा तत्त्व है, जो सबमें पाया जाता है। अधिकांश लोग ऐसे हे जो अपने इस दुर्गुण का प्रदर्शन जीवन के अधिक क्षेत्रों में करते है। प्रायः उनका सारा मस्तिष्क अंधेरे से भरा रहता है; परन्तु संतों की मृत्यु उनके गुणों के कारण होती है। उनकी हत्या उनके इस प्रकाश के कारण की जाती है, जिसे अन्धकार सहन नहीं कर सकता।

अपनी 'दी वेराइटीज़ ऑव रिलीजियस एक्सपीरियेंस' (धार्मिक अनुभवों की अनेकताएं) नामक पुस्तक में विलियम जेम्स ने कहीं भी पाई जाने वाली संतों की कुछ विशेषताओं की परिभाषा करने की कोशिश की है। उनका कहना है कि संत अपनेको हमेशा संकीर्ण स्वार्थों का भागीदार न मानकर व्यापक जीवन का अंग मानता है। अपने भीतर वह एक आदर्श शक्ति की उपस्थिति का विश्वास लेकर चलता है, जो कि ईसाइयों के लिए ईसा या ईश्वर का रूप होता है। अपनी तमाम जिन्दगी में वह इस आदर्श शक्ति के कोमल और अनवरत प्रभाव को महसूस करता रहता है, और स्वेच्छापूर्वक वह अपनेको इसके नियंत्रण में छोड़ देता है। ऐसी अवस्था में उसके अधिकांश अस्तित्व से 'अहं' का भाव ओझल हो जाता है, इसलिए इसका अन्तर स्वतंत्रता और उल्लास से भर जाता है। दूसरों के प्रति सेवा-भाव के विचार से उसका भावात्मक केंद्र बिंदु प्रेम और सामंजस्य की ओर बढ़ता है। लौकिक मूल्यों के निषेधात्मक पक्ष से हटकर वह स्थिर ईश्वरप्रेमी की स्वीकारोक्ति की ओर बढ़ता है।

जब यह आध्यात्मिक अवस्था स्थिर हो जाती है तो संत वैराग्य और पवित्रता की ओर बढ़ता है। वह अपनी आत्मा को पशुता एवं वासना के तत्त्वों से मुक्त करता है। उसके लिए लोकप्रियता और महत्वाकांक्षा की अहमियत खत्म हो जाती है। उसके अंतर की प्रेरणा नकलीपन और बनावट से उसकी रक्षा करने लगती है। जनता के दिमाग से उत्पन्न आतंक और भनभनाहट का उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसकी आत्मशक्ति उसे सहनशीलता और धीरज की उस ऊंचाई तक ले जाती है, जहां पहुँचकर वह खतरे और कष्ट से उदासीन हो जाता है। "शहादत की कहानियां धार्मिक शांति की विजय के संकेत-चिह्न हैं।" करुणा और कोमलता विकास की अन्तिम सीमा तक पहुंचकर अपने साथी इन्सानों के प्रति उसके संबंध को प्रभावित करती है। "संत अपने शत्रु को भी प्यार करता है, और वह घिनौने भिखारियों तक के साथ अपने भाई जैसा व्यवहार करने लगता है।" ऐसा प्रतीत होता है, मानो व्यापक रूप से संतों के जीवन पर लागू होने वाले इस आरंभिक मनोविश्लेषण में विलियम जेम्स सीधे गांधीजी की जीवनी का ही उल्लेख कर रहे हों—यह बात और है कि १९१० में मृत्यु हो जाने के कारण उन (महात्माजी) के अस्तित्व तक से वे भली-भांति परिचित नहीं रहे होंगे।

यद्यपि संतों की विशेषताओं में सार्वभौमिक गुण होते है, तथापि उनके जीवन के प्रति कृतज्ञता की मात्रा उन गुणों के अनुपात से नहीं रहती। एक अमेरिकन पत्रकार विलियम ई. बोन ने केलीफोर्निया के एक दैनिक 'दी न्यू लीडर' का उद्धरण देते हुए, महात्माजी की हत्या के थोड़े ही दिनों बाद ही लिखा था, "अनुकरण करने की अपेक्षा अच्छे व्यक्तियों को मारना सदा आसान होता है।" आगे मि. बोन कहते हैं, "यह वाक्य मानव के सामने संतों द्वारा रखे गये दो विकल्पों की ओर संकेत करता है। एक बात निश्चित है कि संत की उपेक्षा नहीं की जा सकती है—या तो लोग उसे मानकर उसका अनुसरण करेंगे या उसे रास्ते से हटा दिया जायगा। इस कारण गांधीजी की हत्या एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। क्योंकि आज की विकास-अवस्था में मानवता, हिन्दुस्तान या कहीं भी, महात्माजी की मान्यताओं और उसूलों को अपने जीवन का नियम नही बना सकती।"

इस वक्तव्य के पीछे छिपे हुए सामान्य सत्य को कभी-कभी संशोधित रूप में अमल में लाया जाता है। समय-समय पर संत अग्रदूतों का दीर्घकालीन कार्य प्रौढ़ लोगों की एक बड़ी अल्प-संख्या द्वारा अथवा बहुसंख्यक व्यक्तियों की एक छोटी संख्या द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और इस प्रकार संपूर्ण समाज सिद्धि को

प्राप्त कर लेता है। दास-प्रथा की समाप्ति और भारतीय स्वाधीनता की स्वीकृति, इस पद्धति के दो उदाहरण है। ये इस बात का भी उदाहरण हैं कि आमतौर पर सामाजिक और राजनैतिक सुधारों के आन्दोलनों में हमेशा पीछे रहने वाले विधि-निर्माताओं का एक बहुमत भी धीरे-धीरे पीड़ित और दलित लोगों के प्रति देव-पुरुषों की भांति उत्सुक हो जाता है।

जेम्स ने एक स्थान पर लिखा है, "अपनी असीम मानवीय कोमलता के कारण, संत इस विश्वास के महान् ज्योतिवाहक और अंधकार को दूर करने वाले नेता होते है। वे दूसरों को रास्ता दिखाने वाले अगुआ हैं और क्योंकि आजतक दुनिया उनके कामों के साथ नही है, इसलिए प्रायः दुनिया के विषयों या मामलों के बीच वे असंगत से प्रतीत होते हैं। फिर भी वे नवीन दुनिया को अपने भीतर धारण करने वाले और अच्छाई की संभावनाओं को, जो कि उनके बिना सदा छिपी पड़ी रहती; प्राण और जीवन देने वाले है। जब वे हमारे सामने से हमेशा के लिए चले गये तो फिर इतना नीच रह सकना हमारे लिए संभव नहीं है, जितना कि स्वभावतः हम होते है। आग की एक चिनगारी दूसरी को प्रज्वलित करती है और इसलिए मानवीय शक्ति में अपने उस अपार विश्वास के बिना, जिसे कि वे अमली तौर पर हमेशा दिखाते रहते है, शेष हम सब एक प्रकार की आत्मिक जड़ता में पडे रहते है।"

अपने इस असंबद्धता के गुण के कारण संत दुनिया के इंसान के लिए, हठी राजनीतिज्ञ, व्यस्त संपादक और यथार्थवादी धार्मिक नेता के लिए असह्य हो जाते है, और इसी गुण के कारण उन्हें संभावित शहादत प्राप्त होती है। मानव-पुत्र (ईसा) के समान वह अपनी ही आत्मा के पास आता है, और उसके ही लोग उसका स्वागत नही करते। कभी-कभी यह अ-स्वागत केवल नकारात्मक होता है, उसे अकेला छोड़ दिया जाता है, बहिष्कृत कर दिया जाता है, त्याग दिया जाता है। परन्तु दूसरे समय उसे केवल टाला नही जाता है वरन् हिंसापूर्वक धावा बोलकर उसका विरोध किया जाता है; उसके साथियों और उसके बीच की खाई बहुत चौड़ी होती है, और इसलिए उसके द्वारा निर्धारित जीवन-स्तर पर चलना कठिन होता है। और तभी संत का यश रूपांतरित होकर शहीद के ताज में बदल जाता है।

उसके जीवनभर यह मृत्यु ऐसे पुरुष या स्त्री की प्रतीक्षा करती है जिसके काबिल यह संसार नहीं हैं और बलिदान की छाया के समान इसकी छाया हमेशा उसके आत्मिक उत्कर्ष पर पड़ती है; और शायद यही कारण है कि गांधीजी की

शहादत के समय बहुत-सी कलमों ने यही टीका की थी कि इस प्रकार का अंत ही उनके लिए सबसे अधिक गौरवपूर्ण था। संत अपने भाग्य से कभी नहीं डरता, क्योंकि उसे पहले से ही यह पता है कि उसने मृत्यु को जीत लिया है।

जेम्स आगे फिर कहते है, "पैदायशी संत में, यह मान लेना चाहिए, एक ऐसी बात होती है जो कि संसारी मनुष्य की वासना को ऊपर उठा देती है।" जिस संसारी मनष्य ने महात्माजी को मारा, वह निस्संदेह यह स्वीकार कर लेगा कि संत लोग जिन दैवी मूल्यों की अपील करते है, वे मूल्य 'दुनियावी इन्सान' के मूल्यों से बिल्कुल भिन्न होते है। संत हठी और बलवान् नहीं होता, बल्कि वह लोगों को विनम्रता में बदल जाने वाली अपनी ताकत से जीतता है। वह योग्यता में अथवा हेयभाव में बसने वाली स्थूल प्रशंसा को नहीं बल्कि 'सद्स्वभाव' में निहित मनुष्य के उस कोमल स्वभाव और विवेक को चुनौती देता है, जिस 'सद्स्वभाव' को इन्सान अक्सर दबा देता है।

इस प्रकार संसारी और साधु के आदर्श में एक बुनियादी अन्तर होता है जिसे संसारी आदर्श के समर्थक सहन नहीं कर सकते; और ऐसी अवस्था में उद्देश्य की मंजिल तक पहुंचने में जब दो-चार कदम शेष रह जाते हैं तभी संसारी शक्तियां संत को दुनिया से हटा देती है। इस मानसिक अवस्था को स्पष्ट करने के विचार से विलियम जेम्स नीत्शे का एक उद्धरण पेश करते है, जोकि संतों को ऐसे "सामान्य औसत मूल्यों" का घोर शत्रु मानता था, जिन्हें कि वह सामान्य मानवी प्रकार का समरूप समझता था।

"और इस अवस्था में सफलता पाने वाले महापुरुषों के विरुद्ध एक अतिक्षुद्र षड्यंत्र का अनवरत जाल रचा जाता है। यहां सफलता पाने वाले की एक-एक बात से घृणा की जाती है, मानो स्वास्थ्य, सफलता, शक्ति, अभिमान, चेतना आदि सब बुरी बातें हों।"

नीत्शे के समान मनुष्यों को आत्म-त्याग में एक रोग; लगन और प्रेम में एक प्रकार की दिमागी कमजोरी दिखलाई पड़ती है। पिछले चन्द वर्षों में ऐसे बिगड़े दिमागों के उदाहरण बहुत मिलते हैं—ये उदाहरण केवल मनोवैज्ञानिक पंडितों के क्षेत्र में ही नहीं, जिनके प्रतिनिधि नीत्शे है, बल्कि प्रभावशाली पत्रकारों और जिम्मेदार राजनीतिज्ञों, सबमें, ये तत्व पाये जाते हैं, जो बम के द्वारा सार्वजनिक संहार एवं बिना शर्त समर्पण आदि के घृणित कामों तक के औचित्य को साबित करने की कोशिश करते हैं। धार्मिक नेताओं तक का बहुमत इस सामूहिक अवस्था

के ज़ोर को रोकने में असमर्थ रहा है । आर्क बिशप ऑव केंटरबरी और यार्क द्वारा सन् १९४६ में नियुक्त एक कमीशन की रिपोर्ट में, जिसका नाम 'चर्च और अणु-बम' था इन लोगों ने मुह फाड़-फाड़ कर पहले अनिश्चत युद्ध के और बिना भेदभाव किये होने वाली बम-बारी के विरुद्ध बड़े-बड़े वक्तव्य दिये थे ।

संतों के प्रभावपूर्ण गुणों से डरकर, जिनके कारण उनके नकली मूल्यों की कोई कीमत नही रहती, विकृत मानव और उनके प्रभाव के दूसरे लोग अहिंसा के प्रभाव को बढ़ने का मौका देने की अपेक्षा उसका कत्ल करना अधिक पसन्द करते हैं । संतों के दृष्टिकोण को ठीक-ठीक न समझ सकने में ही उनकी सफलता छिपी है और यहीपर वे गलती करते हैं, क्योंकि वे स्त्री-पुरुष जो कि ईश्वरी शक्ति द्वारा नर्धारित नियमों का पालन करते हैं--जिस शक्ति के अस्तित्व में वे स्वयं जीवित हैं—उनके विचार में जीवन सीमारहित और अनन्त है और मृत्यु जिन्दगी का अन्त नहीं है ।

शहीद होने वाला संत केवल शरीर-शास्त्र की दृष्टि में असफल होता है, क्योंकि वह अपने शरीर की रक्षा की चिन्ता नहीं करता । लेकिन धर्माचार्य पॉल के संबंध में विलियम जेम्स ने एक स्थान पर लिखा है, "वे बड़े शानदार तरीके से इतिहास के एक अधिक व्यापक वातावरण में समा जाते हैं ।" इस विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने पर गांधीजी भी विजयी साबित होंगे—'साधुता का एक खमीर' जो कि इन्सानियत को आत्मिक अनुभवों के एक नये स्तर तक उठा देता है ।

: ३ :

महात्मा गांधी का विश्व-संदेश

जार्ज केटलिन

आज दुनिया का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विश्व-शांति की स्थापना है । राज-नीति-शास्त्रियों का इस बात में आश्चर्यजनक मतैक्य है कि आज विश्व-सरकार ही शांति कायम करने का सबसे बड़ा साधन है और यही शांति सभ्यता की प्रथम नियोजक है । एक प्रकार से यह स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय से भी अधिक

जरूरी है। क्योंकि बिना इसके ये दोनों भी खोखले हैं। सत्य के प्रति आदर हमें इसी नतीजे पर पहुंचाता है।

फिर भी राजनीति-विज्ञान साधन के विवाद से ऊपर नहीं उठता, और ऐसी दशा में विश्व-सरकार राजनैतिक मशीन का एक प्रकार मात्र रह जाती है। जीवन-मूल्यों की योजनाओं में लोगों ने जिन साध्यों को प्रथम चुन लिया है उन्हीं साध्यों पर इसके (विश्व-सरकार) पसन्द किये जाने अथवा न किये जाने का प्रश्न निर्भर करेगा; और इस विश्व-सरकार की सफलता इसको कार्यान्वित करने वाले व्यक्तियों की भावना और निश्चय पर निर्भर रहेगी। बरट्रेन्ड रसेल ने अपने 'फ्यूचर आव मैनकाइण्ड' (मानव-जाति का भविष्य) नामक लेख में जो बात कही है, वह हमें याद रखनी है और उसका सामना करना है—"मेरे विचार से हमें यह मान लेना चाहिए कि विश्व-सरकार की प्रतिष्ठा बलपूर्वक ही की जा सकेगी। . . . मुझे आशा है कि ज़ोर या शक्ति की धमकी मात्र ही काफी होगी, लेकिन, यदि उससे काम नहीं चलता तो हमें सचमुच शक्ति का सहारा लेना होगा।" कुछ लोग, इतिहास के सबकों को ध्यान में रखते हुए 'शक्ति का सहारा लेना होगा' के स्थान पर 'शक्ति का सहारा लिया जा सकता है'—वाक्य का प्रयोग कर सकते हैं। हमारी सामयिक कूटनीति की यह परख है कि यह 'सकता है' 'होगा' में बदलता है या नहीं। यह अनधिकृत नैराश्य और अनधिकृत अनुमान जो या तो हमारी स्वयं की कमजोरियों और कायरतापूर्ण दलबन्दियों के कारण उत्पन्न हुआ है या युद्ध अनिवार्य है, ऐसा मान कर चलने वाले रूस में 'यथार्थवाद' की कमी के कारण है। ऐसी परिस्थिति में भी हमारा यह कर्तव्य है कि एक दिन के लिए भी, हम सभी देशों के सद्भावना-पूर्ण लोगों की बातचीत को आगे बढ़ाने और साधारण व्यक्तियों को युद्धप्रिय देश-भक्ति और आक्रामक प्रोत्साहन न देने वाले कर्तव्य से सचेत करने वाले समझौते के काम को ढीला न पड़ने दें।

फिर भी विश्व-सरकार की स्थापना किसी तरह से हो, उसका व्यवहार बहुत ही भिन्न तरीकों से किया जा सकता है। इसे दया और पवित्रता की उच्च भावना से काम में लाया जा सकता है, जिसमें हिंसा और शक्ति के लिए कम-से-कम स्थान हो, अथवा सबकुछ उजाड़ कर उसे शांति का नाम दे सकने वाली अपनी उस न्याय-पद्धति और तर्क के बल पर एक सर्वसत्तावादी सरकार का रूप दिया जा सकता है। यह भेद संत अगस्टायन या उनसे भी पुराना है।

तब, हममें से जो लोग विश्व-शांति और विश्व-सरकार के लिए काम करते

हैं, आज यह मानते है कि यदि यह सरकार और अधिक शोषण को आश्रय नहीं देती है तो निश्चय ही इसे सत्य के प्रति आदर और सद्भावना से प्रेरणा या उत्साह मिलना चाहिए। निस्संदेह हमारी सीमा के भीतर शांति और अमन की स्थापना पुलिस द्वारा हो; परन्तु जनता का विशाल बहुमत यदि अपने दिमाग और आदतों से स्वयं कानून का पालन करने वाला नही बन जाता तो यह पुलिस-शक्तिशून्य ही रहेगी। चिरस्थायी शांति अहिसक स्वभाव के भीतर भावना की उचित शिक्षा से ही उत्पन्न होती है।

कुछ ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्हें न्यायाधीश का काम करना होगा, कुछ ऐसे होंगे जो पुलिस का काम करेंगे, कुछ क्लर्क और शिक्षक बनेगे। यही उनका धर्म है। अहिंसा की शिक्षा देना और दुनिया का ध्यान अहिसा के सौन्दर्य-शिक्षा की आवश्यकता की ओर आकर्षित करना गांधीजी का अपना मिशन था, विशेष कर ऐसी दशा में जबकि अन्तर्राष्ट्रीय विप्लव के युद्ध और अधिक घृणित तथा सभ्यता की आत्मा के ही विनाशक बन गये हों। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से विश्व-सरकार की योजनाओं की व्याख्या का काम वे दूसरों पर छोड़ गये थे। किसी समस्या की जड़ में पहुंचकर वे यदि एक नई मानसिक ओषधि, एक नई मानसिक चिकित्सा, आत्मा की एक नई दवा की ओर संकेत कर सके तो समझो कि उनका काम तो उसी समय पूरा हो गया। उन्होंने जो उपदेश दिये, वे सब पुराने थे, क्योंकि वे लोगों को टाल्स्टाय से भी बहुत आगे 'गिरि-प्रवचन', बुद्ध और गीता तक ले गये। सभी सच्चे धर्मों की तात्विक भावना का नशा उनपर छाया था। परन्तु जो कुछ उन्हें कहना था, वह भी एक प्रकार से नया था, क्योंकि इसी बात की परीक्षा बाल-शिक्षा के क्षेत्र में अति आधुनिक मनो-वैज्ञानिक भी कर चुके है और हममें से कुछ की ऐसी राय है कि इसी तरह की आधुनिक मनोशिक्षा राजनैतिक संबंधों के विषय में भी लागू होनी चाहिए।

गांधीजी की दोहरी जिन्दगी थी—एक कांग्रेसी की जिन्दगी, जो भारत की मुक्ति के उद्देश्य में राजनीति में, और राष्ट्रीयता के उत्थान में लगी थी—हालांकि उनके लिए मेज़िनी के समान राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता से अलग नही थी। उनकी एक भीतरी जिन्दगी भी थी, आश्रम की जिन्दगी, जो कि फीनिक्स के दिनों से एक प्रकार से आश्रम या लौकिक संघ की ही जिन्दगी रही थी। उन्होंने वही बातें कहनी शुरू की थीं जिनकी कि आधुनिक नास्तिक जगत् को, जो कि आज १९वीं सदी के लौकिक भौतिकवाद से शनैः शनैः उबर रहा था, जरूरत थी। और यह कि

राजनीति से धर्म का न तो विच्छेद हो सकता है और न होना चाहिए। दुनिया को धार्मिक व्यक्तियों की, साधुओं और संन्यासियों की उतनी ही आवश्यकता है। यह बात साधारणतया हमारे पेशेवर राजनीतिज्ञों के गले से नीचे नहीं उतरती। सर स्टेफर्ड क्रिप्स और लार्ड हेलीफेक्स के समान कुछ अंग्रेजों ने इसे समझा। प्लेटो के समान गांधीजी का यह विश्वास था कि प्रेम की पवित्रता कर्तव्य भी है और अधिकार भी और यह कि वह लौकिक व्यक्तियों को उपदेश दे। वे भीतर और बाहर पूरी तरह धार्मिक थे। उनके कुछ विरोधी उनमें एक प्रकार की बुजुरगाना ऊंचाई या बड़प्पन देखते थे और इसीलिए उनसे डरते थे।

इधर कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो उन्हें देवता या अवतार का रूप देने में व्यस्त हैं, ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस धीरे-धीरे देवता बनाये जा रहे हैं। मेरा विचार है कि गांधीजी की कभी भी यह इच्छा नहीं रही होगी। लेकिन दूसरों के लिए नियम बनाना मेरा काम नहीं है। ईसाई-समाज की तरह एक व्यक्ति के विषय में बोलते हुए, जो जेक्विस मेरीटन—कैथोलिक दार्शनिक—के समान इस बात में विश्वास करते थे कि एक रहस्यवादी सत्य-निरीक्षण की बुद्धि ईश्वर ने कृपापूर्वक अपने उन सभी भक्तों को दी है, जो ईमानदारी और सच्चाई के साथ उन्हें खोजते है, इस विषय में मैं इतना ही कह सकता हूँ—राजकुमारी अमृतकौर के ही शब्द मानो मेरे शब्दों में भी प्रतिध्वनित होते हैं—"ईश्वर के द्वारा प्रशंसित ऐसे बहुत कम लोग होंगे, जैसे गांधीजी।" संतों के समान वे एक अति विनम्र व्यक्ति थे और मेरे लिए यह बहुत खुशी की बात है कि उनकी आत्मा की शांति के लिए मेरी जानकारी में लंदन और पेरिस के गिरजाघरों में प्रार्थना की गई। यह पर्याप्त है कि युग-युग तक एक संत के सदृश्य और निश्चय ही एक ईश्वर द्वारा निर्वाचित दूत के संदेश के समान उनका संदेश लोगों के कानों में गूंजता रहेगा। 'औसरवेटर रोमेनो' नामक अखबार के शब्दों में—"उन्होंने अपने तरीके से ईसा का अनुकरण किया था। ईसा ने कहा था, 'वे धन्य हैं जो शांति को प्राप्त हो चुके हैं' और गांधीजी को यह गौरव प्राप्त हुआ, हालांकि उन्हें इसके लिए अपना जीवन देना पड़ा।"

उनका संदेश है क्या? वही पुराना संदेश कि जिन्हें आदेश दिया जाता है, उन्हें अनुशासन के चारों अंगों, ब्रह्मचर्य, गरीबी, आध्यात्मिक साहस और सत्य के प्रति अडिग प्रेम का पालन करना ही चाहिए। उन्हें जीवमात्र के प्रति दया का व्यवहार करना चाहिए जैसाकि संत फ्रांसिस ने भी कहा था, अहिंसा का मन और

कर्म से पालन करना चाहिए। और यह कि मृत्यु के बाद जीवन के आदि-भौतिक अनुमानों और ईश्वर की अप्रश्नात्मक इच्छा की परीक्षा करते रहने के बजाय अपने हृदय के इरादों पर अधिक विचार करना चाहिए; और यह कि उन्हें कष्ट पहुँचाने के बजाय सदा स्वयं कष्टों का स्वागत करना चाहिए, क्योंकि इससे व्यक्ति को मानवमात्र के प्रति कल्पना और समवेदना की प्रेरणा मिलती है; और यह कि वे सहनशील, नम्र, दयालु, लम्बे समय तक कष्टसहिष्णु बनें, क्योंकि इन बातों के विरुद्ध कोई नियम नहीं है।

मार्क्सवादियों के इस कथन के विरुद्ध कि सर्वप्रथम पृथ्वी पर 'पदार्थ' था गांधीजी ने 'आत्मा' का उपदेश दिया था। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार सत्य सापेक्ष है और वह सामाजिक सुविधाओं पर निर्भर करता है। गांधीजी का कहना था कि सत्य का मूल्य सदा निरपेक्ष है और यही ईश्वर का रूप है। वस्तुओं के द्वन्द्वात्मक तत्वज्ञान-संबंधी निरर्थक शास्त्र के विरुद्ध उन्होंने सीधे-सादे नैतिक सत्यों और आवश्यक एवं स्वतः-प्रमाणित मानव-आचरण के मूल्यों को हमारे सामने उपस्थित किया। प्रत्येक कार्य की जड़ में मूलतः आर्थिक कारण हैं—इस व्याख्या के विपरीत उन्होंने मनुष्यों को युद्ध के मनोवैज्ञानिक प्रारंभिक कारणों को अपने भीतर, अपने विचारों में एवं आत्म-नियंत्रण-शून्य लोगों की ऐसी चर्चाओं में, जो हिंसा के नाटकीय प्रदर्शन को हमेशा प्रेम करते हैं, खोजने की शिक्षा दी। हिंसा की जड़ें किसी एक जाति की विशेषता नहीं, वरन् वे जड़ें प्रत्येक व्यक्ति के भीतर छिपी हैं। इसलिए कोई भी व्यक्ति इस पाप से मुक्त नहीं है। वर्ग-संघर्ष और वर्ग-द्वेष फैलाने वाले मार्क्सवादी एवं उन सभी लोगों के विरुद्ध जो अन्य दूसरे प्रकार की सांप्रदायिक, धार्मिक, जातीय, वर्गीय या रंगभेद-संबंधी घृणा का प्रचार करते हैं उन्होंने एक ऐसा रास्ता दिखाया जिस पर चलकर मानव-जाति अपनी शक्ति के विकास की दिशा म आगे बढ़ेगी। इस भारी मार्क्सवादी संदेह की जगह उन्होंने भरोसे और निष्कपट सदिच्छा से प्राप्त होने वाले पुरस्कार की शिक्षा दी। वे मार्क्सवाद के विरोधी नहीं थे। वे बहुत रचनात्मक थे और इसीलिए मार्क्सवादी होने से वे कोसों दूर थे।

यही कारण है कि उनका दर्शन एक प्रकार से नया न होते हुए भी दूसरी तरह से बिल्कुल नया, बिल्कुल सामयिक है, और भूल से आज लोग जिसे समाज का वैज्ञानिक दर्शन कहते हैं, उसके और दंभ की बारीकियों के विरुद्ध वह एक प्रचंड आग है। वे एक ऐसे स्वप्नदर्शी थे, जिसने अपने बहुत-से स्वप्नों को साकार

कर दिखाया। जहाँ कि एक ओर हिटलर, स्टेलिन जैसी विश्व की सफल हस्तियों ने लोगों की संभावना से अधिक शीघ्र दुनिया में अपने शत्रुओं का ही निर्माण किया, वहींपर इस 'असफल' व्यक्ति ने, जो कभी जेल में बन्द किया गया, कभी लोगों ने दुतकारा और अन्त में जो कत्ल किया गया, और जो हमारे युग का एक बड़ा व्यवहारवादी राजनीतिज्ञ था, हमें केवल हिन्दुस्तान की आजादी ही नहीं दिलाई वरन् दुनिया को आशा का एक संदेश दिया—ऐसी दुनिया को जो आशा की मांग कर रही है।

यह एक ऐसा दर्शन है जो यह दावा करता है कि इस दृश्य और चेतन जगत् से परे, जहां एक वस्तु दूसरी के बुरी तरह से पूरे क्रोध और जोर के साथ पीछे पड़ी है, एक ऐसा महत्त्वपूर्ण संसार है—मानव-मूल्यों का एक ठोस जगत् है—जहां न तो भिन्नताएं हैं और न परिवर्तन की छाया; और जहां सच्चाई और नम्रता के साथ अपने भीतर खोज करने वाला व्यक्ति शांति-रत्न को प्राप्त कर सकता है। उनका शांतिवाद एक वैरागी के शांतिवाद से भिन्न था। फकीर वे अवश्य थे, परन्तु वे यथार्थ या तथ्य से भागते नहीं थे, उसमें प्रवेश करते थे। परन्तु वस्तुओं में छिपे आंसुओं को भली प्रकार जानते हुए, और दुःख के क्षेत्र में नौसिखिया न होते हुए भी, वे एक ऐसे व्यवहारवादी थे, जिन्होंने मेहतर के काम तक से कभी नफरत नहीं की। अपने पीछे चलने वालों को वे हमेशा समाज-सुधार की दुनिया में जाकर, राजनीति के नीरस रास्तों पर चलकर एक अच्छे मेहतर के समान, एक अच्छे हरिजन के समान दुनिया को स्वच्छ करते रहने का आग्रहपूर्ण उपदेश देते रहे।

वे अपने को हिन्दू कहते थे और सच्चे अर्थ में वे टाल्स्टायवादी थे। परन्तु वे ऐसे हिन्दुओं में से एक हिन्दू थे जो अपनी जाति के ऐतिहासिक बोझ से डरते नहीं थे। इसपर भी डरबन में अपनी मेज के ऊपर दीवार पर उन्होंने ईसा का का एक चित्र लगा रखा था, जो बड़ा अनोखा और सुन्दर था। इसे उन्होंने इस ढंग से लगा रखा था कि ऊपर निगाह करते ही वे उसे देखकर याद कर सकें। श्रीमती पोलक के शब्दों में, "उनकी आंखों में सबसे अधिक दया थी।" भारत को उन्होंने जो भी संदेश दिया, उतने ही अंश तक उन्होंने दुनिया को 'विश्व-ईसाईयत' की प्रेरणा का संदेश दिया था—और किसी भी दशा में कम उस पश्चिम को नहीं, जो दर्पपूर्वक पूर्व के ईसा को 'अपना' मानने का दावा करता था। पीटर के समान उन्होंने पश्चिम को कितनी गहराई तक यह सोचने के लिए विवश किया

कि इसने इन दिनों अपने उस शहीद देवता को अपने आचरण से कितना अधिक धोखा दिया है। इस शक्ति-पूजक शताब्दी और हमारी वर्तमान सभ्यता के खिलाफ अत्याचारियों के इस नये युग में जबकि इन्सान एक बार पुनः अधर्म के घर में भौतिक शक्ति का पुजारी बन गया है, गांधीजी मानवता के एक साक्षी हैं।

गांधीजी के साथ आज वे सब पुकार रहे हैं जो युद्ध के अस्त्रों द्वारा कत्ल किये गये हैं, या जिन्हें दम घोट कर मारा गया है, या जो जीवित ही अत्याचारियों द्वारा दफना दिये गये हैं और जिन अत्याचारियों को हम बिना किसी हिंसक प्रतिरोध के क्षमा कर देते हैं। डचाउ से लेकर आर्कटिक तक के बन्दी और श्रम कैम्पों में, जेलों एवं धुधुकाते स्पेन के गिर्जाघरों में जो लोग हिंसा द्वारा विजय पाने वाले दर्शन के, पवित्र भूमि और पवित्र मूर्ति के आसपास तक, शिकार हुए हैं, उन सब की कामना आज गांधीजी के साथ है। ये सब उन हिंसक और महत्त्वाकांक्षी लोगों के विरुद्ध सच्चे प्रेम-विज्ञान और मनोवैज्ञानिक बुद्धि के गवाह हैं जो पुकार-पुकार कर कहते हैं—'घृणा क्यों न करें'; जो राष्ट्रीय तर्क के आगे सब बातों को तुच्छ समझते हैं, और जो सत्य को केवल एक ऐसी नीति मानते हैं जिसके अन्तर्गत शांति तक एक प्रकार का युद्ध है। 'कवेस्ट्री ड्रेस्डन' और जापान के देवदूत 'कागवा' के देशवासियों की पुकार भी गांधीजी के साथ है, क्योंकि जहां न्यायालय होता है और सही न्याय, वहां हमारा राष्ट्रीय अभिमान ऊंचा रहता है; लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को भी महत्त्व देते हैं और मानते हैं कि हमारे दिलों की कठोरता और हमारी आत्माओं की महत्वाकांक्षा के कारण बाइबल-वर्णित घुड़सवार हमारे बच्चों के शरीरों को रोंदते हुए चलते रहने चाहिए। गांधीजी ने हमें बिना किसी भय के अपने दिमागों को शांत रखने की, भय से शून्य उदारता की शिक्षा दी है जो कि अभिमान के साथ मिलकर सब बुराइयों की जड़ बन जाती है। साथ-ही-साथ सत्य के प्रति उस निष्ठा का उपदेश दिया है जिसमें कट्टरपन और घृणा के लिए कोई स्थान न हो।

हममें से कुछ लोगों ने अपनी आंखों से इस युग के सीज़रों—मुसोलिनी, हिटलर और स्टेलिन—को अपने वैभव के उत्कर्ष के दिनों में देखा है और फ्रेंकलिन, रूज़वेल्ट, एवं गरीब मैसारिक जैसे महान् लोकतंत्रवादियों को भी देखा है। शीघ्र ही इन सबको निर्णय का सामना करना होगा। परन्तु इनसब से महत्त्वपूर्ण उस संत की वह शांति-आवाज है जो दबाय जाने के बाद भी आज सुनाई देती है, और जिसके समस्त रास्ते आनंद के रास्ते थे, जिसकी सब पगडंडियां शांति की पगडंडियां थीं।

: ४ :

मेरी श्रद्धांजलि

जी० डी० एच० कोल

प्रशंसा करने योग्य गुण के विचार से महानता दो प्रकार की होती है। पहली वह जो विशुद्ध बौद्धिक या कलात्मक होती है, जिसके अधिकारी पात्र को चाहे जितनी ख्याति प्राप्त हो जाय, लेकिन यह महानता उसे दुनिया से बिल्कुल अलग कर देती है, जबकि दूसरे प्रकार की महानता अपने पात्र को, एक ऐसे प्रतिनिधित्व का गौरव देकर उसे दुनिया से मिला देती है जिसमें देश के बहुत-से नर-नारी अपनी आकांक्षाओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति केवल शब्दों में नहीं अपितु जीवन की कला में देखते हैं। मैं इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि यह दूसरे प्रकार की महानता कभी-कभी कलाकारों या लेखकों म और प्रायः कर्मशील व्यक्तियों में पाई जाती है; परन्तु प्रायः से अधिक यह दार्शनिक की अपेक्षा कर्मठ व्यक्ति या सुन्दर वस्तुओं के निर्माता में पाई जाती है।

गांधीजी प्रधानतया इस दूसरी श्रेणी के महान् व्यक्ति थे। उनकी महानता और अपने लोगों के एवं दुनिया के हृदय पर उनके असीम प्रभाव का कारण यह था कि वे अपने देश के साधारण नर-नारी के साथ एक हो जाते थे और उन लोगों को इस तादात्म्य की अनुभूति करा देने की असीम शक्ति रखते थे। जब मैं कहता हूँ "उनकी जाति" तब मेरा मतलब केवल हिन्दुओं से नहीं है, हालांकि उनपर उनकी अपील का प्रभाव पूरी तरह से पड़ता था; बल्कि मेरा मतलब उन सभी हिन्दुस्तानियों से है—हिन्दू, मुसलमान एवं वे सभी जातियां, जो अपने रोजाना के संघर्ष और देश-विभाजन के बावजूद भी मिलकर एक विशाल राष्ट्र का निर्माण करती हैं और जिनके समान हित और भविष्य की समान सम्भावनाएं हैं। गांधीजी भारतीय एकता की एक महान् प्रतिनिधि हस्ती थे और इसी एकता एवं उस एकता में अपने अडिग विश्वास के कारण उनकी मृत्यु हुई।

हिन्दुस्तान के एक ऐसे प्रतिनिधि को, पश्चिम के लिए, और पश्चिम के भीतर और बाहर रहने वाले उन लोगों के लिए जो उनकी बहुत प्रशंसा करते थे, समझ सकना आसान नहीं है। जिस तरह गांधीजी ने सोचा या महसूस किया, उस

तरह पश्चिम के बहुत कम लोग सोच सकते हैं या महसूस कर सकते हैं। और अगर तह में मानव-स्वभाव के समान स्रोत से प्रवाहित होने वाले विचार और भावनाएं वही है तो भी उनकी अभिव्यक्ति करने वाले शब्द और प्रतीक इतने भिन्न हैं कि वे समझने के रास्ते में बड़ी बाधाएं उपस्थित करते हैं। पश्चिम का जीवन और उसपर आधारित बातचीत की भाषा दोनों ही मुख्यतः बहिर्मुखी हैं। मध्य युग के अन्तिम दिनों से, पश्चिमी ईसाईयत, पूर्व में अपने जन्म के बावजूद, इसी प्रकार की दिमागी आदतों में पली-पोसी है जोकि यूरोप अथवा यों कहिए कि पश्चिमी यूरोप की अपनी विशेषता रही है। प्रायः हम अपने अन्तर्मुखी विचारों और भावनाओं को प्रकट करते समय उन्हें बाह्य जीवन के ढांचे में ढाल देते हैं, परन्तु गांधीजी के साथ इससे उल्टी बात थी। वे अपने सामाजिक चिंतन एवं अपने साथियों के प्रति भावनाओं तक को व्यक्तिगत पूर्णता की उस खोज के ढांचे में ढाल देते थे, जिसे कि उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में "मेरे सत्य के प्रयोग" की संज्ञा दी है। सत्य उनके लिए वातावरण से प्राप्त करने और फिर उसे पचा लेने जैसी कोई बाहरी वस्तु नहीं थी। यह उनके अंतर की चीज़ थी, जो निजी भी थी और वस्तु-सापेक्ष भी। इसे केवल निजी जीवन में उतारा जा सकता है और इस तरह सत्य का जीवन बिताने के सिवाय उसे प्राप्त करने का और कोई रास्ता नहीं है। यह बात उनकी 'आत्मकथा' से जिसे कि यह लेख लिखने से पहले मैंने एक बार पुनः पढ़ा था एवं दक्षिण अफ्रीका के उनके सत्याग्रह की कहानी से और उनके अन्य सामयिक लेखों से बराबर प्रकट होती है। सत्य की खोज और प्राप्ति के लिए उन्हें सत्य का जीवन बिताना पड़ा था और यह साधना उनके अति महत्त्व-पूर्ण आन्दोलनों में, व्यवहार में सत्य के द्वारा व्यक्तिगत पूर्णता की अनवरत साधना में और अति महत्त्वपूर्ण वस्तुओं के समान छोटी-से-छोटी बात में बराबर शामिल रही है।

पश्चिमी विद्यार्थी गांधीजी की इस धारणा को बड़ी आसानी से उनकी आत्मश्लाघा कह सकते हैं। वे अपनी आत्मा के लिए इतने परेशान से जान पड़ते हैं कि मानो यह बात उन सार्वजनिक कार्यों की सफलता से, जिन्हें वे कर रहे थे, कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो। फिर भी सच्ची बात यह है कि उनसे कम आत्म-श्लाघी लोग बहुत कम मिलेंगे। गांधीजी अपनी आत्मा के विषय में इसलिए अधिक चिन्तित रहते थे, क्योंकि इसकी पवित्रता और सत्यता को वे अपने उन उद्देश्यों से अभिन्न मानते थे, जिनके लिए वे संघर्ष कर रहे थे। संभवतः किसी हिन्दुस्तानी

को इस बात की याद दिलाने की जरूरत नहीं है और न वह गांधीजी के इस तरह के सोचने के गलत अर्थ लगा सकता है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि एक बार नहीं, बार-बार मैं इस बात को अन्यथा समझा हूँ, जबतक कि मैंने अपने को स्वयं गांधीजी के दिमाग में रखने की कोशिश नहीं की। जिन कार्यों में मेरा विश्वास है उन्हें मैं अपने से हमेशा बाहर मानता हूँ। यह मानता हूँ कि उनका संबंध केवल बाह्य जगत के अनुभवों से ही है, जबकि गांधीजी उन्हें सदा अपने भीतर देखते थे और यह मानते थे कि आन्तरिक पवित्रता की साधना एवं सार्वजनिक कार्यों द्वारा ही उनमें सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उनके बहुत-से सार्वजनिक कार्यों में, अभ्यंतर और बाह्य दोनों ही एक ही वस्तु के समान मिले-जुले रहते थे। उनका उपवास अपने लोगों के लिए केवल प्रायश्चित्त मात्र नहीं था; इससे परे यह उद्देश्य की पवित्रता का एक यज्ञ था। परंतु इच्छाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त किये बिना पवित्रता का यह यज्ञ पूरा नहीं होता—उनका ऐसा विश्वास और अन्तर का दृढ़ वैराग्य, उनके उपवास का दूसरा पक्ष था। निःसंदेह पश्चिम में पहले भी और आज भी साधु हैं, परन्तु वैरागी या फकीर का जो आदर्श गांधीजी के सामने था, उसकी कुछ अपनी विशेषताएं थीं जिनका, मेरे विचार से, पच्छिमी परंपराओं में पले स्त्री-पुरुषों के लिए समझ सकना बहुत कठिन था। उनकी 'आत्मकथा' में, पच्छिमी पाठक के लिए सबसे कठिन अंश वे हैं जहां वे पत्नी और पुत्रों के प्रति अपने संबंध की व्याख्या करते हैं—मेरा तात्पर्य मुख्यतः बाल-विवाह-पद्धति से संबंध रखनेवाले विचारों से नहीं वरन् पुस्तक के उन अंशों से है जिनमें वे पत्नी के प्रति अपने यौन-संबंधी विचारों एवं संतति की प्रारंभिक शिक्षा पर प्रकाश डालते हैं। पति-पत्नी के संबंध में वासना का कोई स्थान न रहे, क्या सचमुच यह आदर्श हो सकता है? इस विषय में स्त्री के दृष्टिकोण का क्या वजन है, और पुरुष के भी? और बच्चों के विषय में जो कुछ गांधीजी के विचार हैं उनमें क्या एक व्यक्ति की हैसियत से उनकी आवश्यकताओं को पूरा ध्यान में रखा गया है? इस विषय में मेरे अपने जो विचार हैं वे शायद उसे ठीक-ठीक न समझ सकने की असफलता के कारण हों; परन्तु गांधीजी के आदर्श में साधारण मानवता के प्रति उत्साह की भावना की कुछ कमी मेरी निगाह में आये बिना नहीं रह सकती, और जबतक यह आदर्श अमल में आता है तबतक सन्तोष-जनक मानव समाज की उत्पत्ति के अनुरूप इसे कभी नहीं बनाया जा सकता। अगर इसका उत्तर हो कि अपनी पूर्णता में संन्यास का आदर्श एक साधारण

व्यक्ति के लिए नहीं वरन् अपवादस्वरूप संत के लिए ही निश्चित है, तो मैं यह उत्तर दिये बिना नहीं रह सकता कि संत या वैराग्य का मेरा अपना आदर्श यह है कि साधारण मनुष्य के जिन्दगी के तरीके को ही एक इंच ऊंचे स्तर तक उठाया जाय, जो न तो इससे तत्व रूप में सर्वथा भिन्न ही हो और न प्रतिकूल ही।

पाठक चाहें तो मेरे इस विचार को यह समझकर छोड़ सकते हैं कि मेरे न समझ सकने का ही यह नतीजा है। यह हो सकता है; लेकिन यह बात मुझे कभी यह सोचने के लिए मजबूर नहीं करती कि गांधीजी किसी भी दशा में कम मानव-प्रतिनिधि थे। आत्म-तादात्म्य द्वारा इस प्रतिनिधित्व के गुण के बिना उन्होंने जो कुछ किया, वह कभी नहीं कर सकते थे और न उनके इतने अनुयायी हो सकते थे। भारतीयों की ओर से चलाया गया दक्षिण-अफ्रीका का उनका सत्याग्रह इस बात का जीता-जागता उदाहरण है। यह सर्वांश में एक व्यक्तिगत सफलता थी जिस की विशेषता का पहला कारण गांधीजी की वह आश्चर्यजनक शक्ति थी जिससे वे अपने को उन सभी लोगों के साथ मिला देते थे, जिनके लिए वे संघर्ष करते थे। इस प्रकार संपूर्ण उद्देश्य को वे अपनी सच्चाई और सत्य के प्रति आदरभाव से भर देते थे।

उनके यही गुण उनके साथ हिन्दुस्तान में आये और वे कांग्रेस एवं अन्य राष्ट्रीय नेताओं से उनके संबंध में आदि से अन्त तक प्रकट होते हैं। गोखले में, जिनकी प्राय: गांधीजी बड़ी उदारता से प्रशंसा किया करते थे, उनके बहुत-से गुण पाये जाते थे। भारतीय संघर्ष की साधना के समय दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की अपेक्षा उन्हें अधिक जटिल और व्यापक मसलों का सामना करना पड़ा था। भारत में अंग्रेजी राज्य की समाप्ति एवं स्वराज्य की प्रतिष्ठा के प्रश्न से सर्वदा भिन्न एक ऐसा मसला था, जिसका कि उन्हें सामना करना था; और वह था भारत के निवासियों के लिए एक ऐसी 'जीवन-पद्धति' या जिन्दगी का नमूना मालूम करना, जिसका कि अमल यहां के लिए सबसे अधिक उपयोगी हो। इस विषय में भारत के राष्ट्रीय नेता स्वयं अनेक मत रखते थे और यदि गांधीजी को मैं ठीक समझता हूँ, तो जो रास्ता इस दिशा में उन्होंने अपनाया वह दूसरों से बिल्कुल भिन्न था। एक ओर, सभी धर्मों में मतभेद से परे उन समान तत्वों के वे कायल थे और इसलिए हिन्दू धर्म से उन निषेधात्मक दोषों को दूर करना चाहते थे, जिनके कारण समान मानव बधुंत्व के विकास की इसमें गुंजायश नहीं रही थी। यही कारण है कि अपने स्वधर्मियों में रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी दलों का वे हमेशा विरोध करते

रहे। यह विरोध राजनैतिक और दार्शनिक दोनों दृष्टियों से था। वे एक ऐसे भारत के लिए प्रयत्नशील थे जिसमें भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग केवल सहिष्णुता के साथ नहीं, वरन् भाई-भाई के समान साथ-साथ रह सकें। इसके लिए आवश्यक था कि हिन्दू मुसलमानों के प्रति और मुसलमान हिन्दुओं के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदल दें; साथ-ही-साथ जाति को मनुष्य-मनुष्य के बीच एक अजेय बाधा के रूप में अस्वीकार कर दें। दूसरी ओर, वे ऐसे लोगों से सहमत नहीं थे जो यह चाहते थे कि पश्चिमी सभ्यता के सबक सीखते समय हिन्दुस्तान का जो कुछ अपना है, उसे भुला कर वह एकदम अपने को पश्चिमी जिन्दगी के तौर-तरीके के आधार पर ढाल ले। उनके आदर्श भारत की सीमा में न तो दौलत को कोई स्थान था, फिर उसे चाहे जिस तरह से क्यों न बांटा गया हो; और न सैनिक शक्ति को। जीवन की सादगी और पार्थिव बल के विरुद्ध नैतिक शक्ति में भरोसा उनके आदर्श का तकाज़ा था। इस आदर्श का एक पक्ष उन्हें खद्दर और सादे संघ-जीवन की बुनियाद पंचायत की ओर ले गया; एवं दूसरे पक्ष के भीतर से अहिंसक असहयोग की नीति का अथवा व्यवहार में अपने को असहयोग के रूप में अभिव्यक्त करने वाली अहिंसा का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप इस दृष्टि से वे पूरे पश्चिमवादी लोगों के मौलिक विरोध में थे—एक ओर उन मिल-मालिकों और इस्पात-उद्योगपतियों के गांधीजी खिलाफ थे जो हिन्दुस्तान में पूंजीवादी औद्योगीकरण का स्वप्न देखते थे, और दूसरी ओर उन मार्क्सवादियों के जो सामाजिक क्रांति द्वारा सर्वहारावर्ग के नियंत्रण में एक उसी प्रकार के औद्योगीकरण का सपना देखते थे। परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ कि अपने इस तीव्र मतभेद के कारण उनका कभी मिल-मालिकों से या मार्क्सवादियों से सीधा झगड़ा हुआ हो, अथवा इन दोनों पर उनका कोई प्रभाव न हो। वे झगड़ा करना पसन्द कर नहीं सकते थे, क्योंकि वे हिन्दुस्तान को आज़ाद और संगठित देखना चाहते थे। वे यह कभी नहीं चाहते थे कि आज़ादी की लड़ाई के दौरान में या इसे प्राप्त करने के बाद देश आन्तरिक कलह से छिन्न-भिन्न हो जाय। फिर भी इन दोनों दलों का विरोध वे स्वयं अपने जीवन के उदाहरण और अपने सिद्धान्त के उपदेश द्वारा किया करते थे। इस विषय में उनका यह कहना था कि भारतवर्ष पश्चिम से जो कुछ सीख रहा है उसमें से उन पश्चिमी विचारों और व्यवहार को लेकर अपने में पचा लेना चाहिए जो उसकी अपनी बिल्कुल भिन्न जीवन-प्रणाली को विकसित करने में सहायक हों, न कि अपनी परंपराओं और स्वभाव के विपरीत वह अपने को बिल्कुल पश्चिम

में हजम हो जाने दें।

इस सैद्धान्तिक संघर्ष के निश्चय करने में, स्वतंत्र भारत को गांधीजी की जीवित सहायता के बिना अपना रास्ता आप खोजना होगा। समस्या के इस हल के प्रति गांधीजी के इस दृष्टिकोण को नगरों की अपेक्षा गांवों में अथवा शहरों में रहने वाले शहरी दिमाग वाले लोगों की अपेक्षा देहाती ढांचे में ढले शहरियों से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ था। कांग्रेस के भीतर किसानों को एक क्रियात्मक शक्ति के रूप में लाने, एवं राष्ट्रीय निर्माण के कार्यों में उन्हें अयोग्य और असमर्थ मानने वाली विचारधारा का मुकाबला करने में उनका प्रभाव सर्वोपरि था। अभी पिछले दिनों मुझे कांग्रेस की वित्त-नीति एवं उद्योग-नीति-संबंधी रिपोर्ट पढ़ने का मौका मिला था। इस रिपोर्ट में नीति-संबंधी अस्पष्ट एवं धुंधले उल्लेखों को पढ़कर मैं दंग रह गया। यह सब इसलिए हुआ कि नीति निश्चित करते समय रिपोर्ट बनाने वाले ग्राम-उद्योग के विकास और पश्चिमी ढंग पर संगठित व्यापक उद्योगीकरण के बीच ठीक चुनाव नहीं कर सके अथवा राष्ट्रीय संयुक्त योजना में दोनों प्रणालियों को एक संतुलित स्थान दे सकने में वे असमर्थ रहे। मैं ऐसा मानता हूँ कि दोनों मार्गों में समन्वय या मेल करने का रास्ता खोजा जा सकता था और यह भी विश्वास है कि कम खर्च एवं अधिक श्रम पर आधारित ग्राम-विकास ही बुनियादी गरीबी के खिलाफ उठाये गये आन्दोलन में एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करेगा। यह धारणा बिल्कुल अव्यावहारिक है कि भारतवर्ष को केवल बड़ी पूंजी की लागत से ही दुनिया के अति बड़े व्यवसायी देशों के समकक्ष तेजी से उठाया जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति या तो बड़ी तेजी से बढ़ने वाली आबादी के कठिन आत्मत्याग द्वारा हो सकती है, जो अनिच्छा से पहले से ही काफी संयमी है अथवा सिद्धान्तरूप में विदेशों से विशेषकर संयुक्त राष्ट्र अमरीका से असंख्य पूंजी उधार लेकर हो सकती है। यह सोचना पागलपन होगा कि प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकतानुसार कर्ज मिल सकता है और यदि ऐसा हो भी सका तो उसका प्रभाव यह होगा कि हमें देश की आज़ादी से फिर हाथ धोना पड़ेगा। मेरा यह सुझाव नहीं है कि हिन्दुस्तान को लागत-पूंजी या मूलधन को बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। स्पष्टतः पूंजी की आवश्यकता है, विशेषकर सिंचाई एवं जल-विद्युत योजनाओं के लिए, अधिक उन्नत आवागमन के साधनों के लिए, और एक सीमा तक, इंजिनियरिंग और उन्नत उद्योगों के विस्तार के लिए। परन्तु इस प्रकार किया गया प्रत्येक प्रयत्न बहुत दिनों तक जनता की गरीबी पर एक दवाब डालता रहेगा और

इस प्रकार उनके रहन-सहन के तरीकों पर एक आक्रमण-सा होगा; परन्तु यदि इस योजना को ग्राम-उद्योगों के विकास और ग्राम-निर्माण के ऐसे कार्यों से मिला दिया जाय, जो असीम श्रम-साधनों से अधिक उपयोगी काम लेने के लिए निश्चित किये गए हों, न कि ऐसे साधनों का सहारा लिया जाय, जिनमें स्त्री-पुरुष का काम करने के लिए अधिक खर्चीली मशीनों की आवश्यकता हो; तो उनके रहन-सहन के तरीकों और उनके जीवन-स्तर में अवश्य सुधार होगा और वह भी बिना किसी अनुचित दबाव के।

मुझे पूरा भरोसा है कि इस संबंध में गांधीजी का सिद्धान्त पूर्णतया कल्याण-कारी था। यह एक अच्छे अर्थशास्त्र के साथ-साथ एक अच्छा समाज-शास्त्र भी था। इसका संकेत उस मार्ग की ओर था जो देश की बुनियादी गरीबी के खिलाफ हमें एक सफल संघर्ष की ओर ले जाता और जिसमें भारतीय जीवन-प्रणाली के तत्त्वों को पूर्ण संरक्षण भी प्राप्त होता।

यह अर्थ-नीति, अन्य बातों के समान, गांधीजी के लिए धर्म के प्रति उनके दृष्टिकोण से ही उद्‌भूत हुई थी। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक था, जिसकी विभिन्न तरीकों, नामों और रूपों से लोग उपासना करते हैं। व्यक्तित्व की किसी साधारण धारणा के अनुसार यह ईश्वर किसी भी दशा में व्यक्तिगत हस्ती नहीं रखता है। गांधीजी का ईश्वर एक प्रकार से एकता का, अर्थ का एवं मूल्य का सिद्धान्त था; और इस ईश्वर की उपासना के स्वरूप स्वयं सत्य के पहलुओं में समाविष्ट थे, जो प्रत्येक धर्म में बहुत-कुछ नकलीपन और कट्टरपन से शामिल हो गए थे और इन्हीं दोषों से वे धर्म की शुद्धि करना चाहते थे। उनका यह उद्देश्य कदापि नहीं था कि सभी लोग या सभी हिन्दुस्तानी इस ईश्वर की उपासना एक ही रूप या पद्धति से करें, बल्कि वे सब अपने सभी ईश्वरों और पूजा-विधियों को एक मौलिक सत्य के विभिन्न पहलुओं एवं तरीकों के रूप में पहचानने के लिए संगठित हों।

पश्चिमी सभ्यता के विषय में उनका लगभग वही दृष्टिकोण था, परन्तु कुछ बातों में भिन्न था। पश्चिमी जीवन-प्रणाली में, कुछ स्पष्ट मूल्यों के साथ जो उन्हें अपने लोगों में भी दिखलाई देते थे, वे उसी आंशिक सत्य के मिश्रण को स्वीकार करते थे, परन्तु एक हिन्दुस्तानी के नाते और भारतीय परंपराओं एवं लोगों के साथ अपनी एकरूपता की गहरी चेतना से पूर्ण होने के कारण वे पश्चिमी जीवन के मूल्यों से उसी सीमा तक अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर सके, जिस सीमा तक हिन्दुस्तान की प्रत्येक जाति के प्रति उन्होंने किया। पश्चिमी जीवन के

मूल्यों को उन्होंने देखा और कुछ हद तक उसके कायल भी रहे, पर उसमें हिस्सा नहीं ले सके। पश्चिमी मूल्य उनके लिए सदा बाह्य रहे और अधिकांश में उनके निजी मूल्यों से उनका मेल नहीं बैठता था। और इसलिए जब एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा जिसका जीवन पूर्णतया पश्चिमी रहा, गांधीजी की महानता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का कर्त्तव्य सामने आया, तो उस समय मुझमें एक बाहरी-पन के भाव का मौजूद रहना अनिवार्य था, क्योंकि मैं उनका आदर कर सकता हूं, पर एकरूपता का अभाव तो रहता ही है। और मैं ऐसा चाहता भी नहीं कि उसे होना चाहिए था।

: ५ :

गांधीजी की सफलता का रहस्य

स्टैफर्ड क्रिप्स

गांधीजी की जिन्दगी ठीक उसी तरह शुरू हुई थी जिस तरह हममें से कोई भी शुरू करता है। उन्होंने वकील बनने के लिए पढ़ाई शुरू की और इस सिलसिले में लंदन की 'मिडिल-टेम्पिल' नामक संस्था के वे विद्यार्थी हुए, जहाँ बाद में उन्होंने बैरिस्टर की उपाधि प्राप्त की। आगे चलकर अपने इन दिनों के लिए उन्हें पश्चाताप नहीं हुआ बल्कि मुझसे अक्सर वे जिन्दगी के उन दिनों की बातें किया करते थे। अपनी कानूनी योग्यताओं पर उन्हें अभिमान था और दक्षिण अफ्रीका में वकालत करते समय पायी गई अपनी कानूनी सफलताओं को वे बड़ा महत्त्व देते थे।

यहां आकर पहली बार वे अपने लोगों की मुसीबतों के निकट संपर्क में आये। यहीं वे हिन्दुस्तानियों और गरीबों के वकील बने और यहींपर उन्होंने अपने लोगों को गुलामी से आजादी की ओर ले जाने वाले मानसिक निश्चय और उद्देश्य को मजबूत बनाया।

इस समय तक अहिंसा-संबंधी उनका धार्मिक विश्वास एक रूप ले चुका था और इस विश्वास का आधार था भारत में हिन्दुत्त्व के गौरवपूर्ण दिनों में अपनाई गई नीति।

अहिंसा उनके लिए एक निषेधात्मक नीति नहीं थी। इसका उससे कहीं अधिक मूल्य था। प्रेम की शक्ति में विजय प्राप्त करने का यह दृढ़ निश्चय था।

यह निश्चय उस शक्ति के प्रति गहरे और अडिग विश्वास पर अवलम्बित था। प्रेम की इसी शक्ति की बदौलत वे अपने देश को बन्धन से मुक्त करने का आग्रह रखते थे और इसी उद्देश्य के लिए वे हिन्दुस्तान में लौटकर आये। अहिंसा और प्रेम के द्वारा आज़ादी के इस संदेश को देश के कोने-कोने में फैलाने के लिए उन्होंने वर्षों इस छोर से उस छोर तक पैदल भ्रमण में लगा दिये।

अपनें दैनिक जीवन से धर्म को अलग रखने का खयाल तक उनके मन में कभी नहीं आया। धर्म ही उनकी जिन्दगी थी और उनकी जिन्दगी ही धर्म था। जब वे कोई अन्याय होते देखते अथवा जब कोई उन्हें ऐसा लगता कि उनके लोगों के लिए आज़ादी की दिशा में आगे बढ़ने का यही ठीक समय है तो ऐसी अवस्था में अपने विश्वास को वे सदा कार्य में लाते थे। हिन्दुस्तान में रहने वाले सभी धर्मों और जातियों के लोगों के चरित्र और भावना को उनसे अधिक समझने वाला और कोई व्यक्ति नहीं था। वे यह भी जानते थे कि आत्मत्याग की बात का उनपर कितना असर होता है और इसीलिए अपने आत्मत्याग को ही उन्होंने अपने सभी कामों का केन्द्रीय लक्ष्य बनाया था। बढ़ते हुए भक्त-अनुयायियों से सदा घिरा रहने वाला उनका जीवन सबसे सादा था। उनका भोजन, उनके कपड़े, उनका घर, सभी कुछ बिल्कुल सीधा-सादा था।

उन्होंने अपनेको आरामतलबी से सदा दूर रखा और ऐसी बहुत-सी चीजों के बिना रहे, जिन्हें हममें से अधिकांश लोग आवश्यकता मान सकते हैं।

उनका 'उपवास' अपने लोगों के बीच उनका सबसे शक्तिशाली हथियार था और इसके लिए वे हमेशा इच्छुक रहते थे। दूसरे के पापों को अपने ऊपर लेते हुए वे सदा उनके लिए प्रायश्चित्त करते थे।

वे जिद्दी नहीं थे, परन्तु उन्हें यदि एक बार अपने काम की अच्छाई पर विश्वास हो जाय तो उनके निश्चय की उस दृढ़ता को जीत सकना असंभव था।

वे एक साधारण साधु नहीं थे। कानूनी तौर पर दीक्षित उनका वकीली दिमाग़ उनके धार्मिक दृष्टिकोण के मेल से तर्क एवं निर्णय में बड़ा कुशल बन गया था। तर्क के वे बड़े अजेय विरोधी थे और प्रायः उनका ऐसा रुख रहता था कि जिस नीति और विचार का वे समर्थन कर रहे हैं, वह ध्यानावस्था में ईश्वर से आया है और तब दुनिया की कोई ताकत, कोई तर्क, उन्हें उससे हटा नहीं सकता था। वे जानते थे कि वे ठीक हैं, बल्कि प्रायः प्रार्थना और ध्यान के द्वारा उनका मस्तिष्क किसी निर्णय पर पहुँचता था, अपने साथियों के साथ तर्क करके नहीं।

एक निष्ठावान व्यक्ति की तरह अपनी मान्यताओं को वे निर्भीकता के साथ सदा अमल में लाये और पूरी तरह से उनपर भरोसा किया। इस दृष्टि से अपने तमाम समकालीन व्यक्तियों से वे बहुत ऊंचे थे। अपने युग में या पिछले इतिहास में मुझे ऐसा कोई व्यक्ति दिखलाई नहीं पड़ता जिसने भौतिक वस्तुओं के ऊपर आत्म-शक्ति का इस विश्वास और पूर्णता के साथ प्रयोग किया हो।

अपने धर्म के क्षेत्र में उनका दृष्टिकोण बहुत उदार था। एक सच्चे हिन्दू के नाते उन्होंने दूसरे को अपने धर्म में कभी शुद्ध नहीं किया, क्योंकि मानव-जीवन पर पड़ने वाले सभी धर्मों के प्रभाव के मूल्य को वे स्वीकार करते थे। वे हमेशा दूसरों से यह आशा रखते थे कि उनके समान ही वे लोग भी अपनी मान्यताओं और धार्मिक विश्वासों के अनुरूप जीवन बिताएँ।

उनका मुसलमानों, ईसाइयों या दूसरों के साथ कभी कोई धार्मिक या सांप्रदायिक विरोध नहीं रहा। जैसाकि वे कहा करते थे, उन्होंने दूसरे धर्मों की सभी अच्छाइयों को अपने में मिला लेने की हमेशा कोशिश की थी और वे दूसरे धर्म वालों से भी हिन्दू धर्म की परीक्षा कर उसमें से उपयोगी तत्त्वों को अपने में ले लेने की बात कहा करते थे।

भारतीय स्वतंत्रता किस प्रकार प्राप्त होगी, इस संबंधी अपने विचारों पर वे मजबूती के साथ जमे रहे, परन्तु सांप्रदायिक भावना और प्रतिद्वंद्विता को टालने की उन्होंने भरसक कोशिश की।

अपनी मृत्यु के समय जिस प्रयत्न में वे जुटे थे, हिन्दू, मुसलमान और सिक्खों के आपसी मतभेदों को दूर करनेवाला वह प्रयत्न सचमुच बड़ा महान् था। इतना महान् कार्य अपने हाथों में उन्होंने अभीतक कोई नहीं लिया था, और इसमें उन्हें बहुत हद तक सफलता भी मिली थी। करीब-करीब अकेले ही उन्होंने बंगाल की उस अशांति को शांत किया, जो उनकी चारित्रिक शक्ति और शिक्षा के बिना निःसंदेह बंगाल में भी पंजाब के समान भयंकर और गंभीर संकट को फैलाने का कारण बनती।

एक व्यक्ति के नाते अंग्रेजों के प्रति उनका विचार सदा मैत्रीपूर्ण रहा था और जहांतक उनके सामान्य अस्तित्व का प्रश्न था, गांधीजी अंग्रेज जाति को सदा सुखी देखना चाहते थे। सूत-उद्योग को लेकर जब हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध एक कटु भावना इंगलैण्ड में फैल रही थी, उस समय लंकाशायर को जाकर देखने की गांधीजी की बात बहुतों को याद होगी। जैसाकि उनका नियम था, वे सीधे मजदूरों के बीच

में गए और अपने व्यक्तित्व और हमदर्दी के कारण वहां सभी की प्रशंसा के पात्र बन गए। उनका व्यक्तित्व चुम्बक के समान आकर्षक था, विशेषकर निजी गहरी दोस्ताना बातचीत में, जिसे वे हमेशा अपना बहुत समय दिया करते थे—केवल मौन के दिनों को छोड़कर—वे सदा बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी बात पर चर्चा करने और अपना मत देने के लिए तैयार रहते थे। जिनसे वे मिले, उनके वे सच्चे दोस्त बन गए।

मैंने सदा उनमें एक ऐसे विश्वासपात्र और अच्छे दोस्त को पाया, जिसके शब्दों का मैं पूरा भरोसा कर सकता था। कभी-कभी चीजों को उनकी निगाह से देखना और तर्क को समझ सकना मेरे लिए बड़ा कठिन होता था। परन्तु यह होना स्वाभाविक था, क्योंकि मेरे पास पश्चिमी यूरोपीय विचारों की पृष्ठभूमि थी और वे भारत और पूर्व के दर्शन से पगे थे। अंग्रेजी सरकार की जिस नीति को वे गलत और हमदर्दी से खाली समझते थे, उसके विरुद्ध उनका रुख बड़ा कड़ा रहता था, और युद्ध के बाद भी यह महसूस करने में उन्हें बड़ी कठिनाई हुई कि इस देश (इंगलैण्ड) के दृष्टिकोण में कोई मौलिक परिवर्तन हुआ है, हालांकि मेरा विश्वास है कि सन १९४६ में केबिनेट प्रतिनिधि-मंडल के हिन्दुस्तान देखने के बाद आखिर वे यह बात मान गए थे। अपनी असहयोग की नीति से ब्रिटिश सरकार द्वारा नियंत्रित हिन्दुस्तानी हुकूमत का विरोध करना बिल्कुल स्वाभाविक था और मैं तो यह कहूँगा कि अहिंसक साधनों द्वारा अपने लोगों की आजादी हासिल करने वाले सच्चे भारतीय राष्ट्र-वादी की यह एक अनुकूल प्रतिक्रिया थी। मुझे पूरा यकीन है कि यदि हमें अपने देश में उन्हीं परिस्थितियों का सामना करना पड़ता, तो हम भी वही कदम उठाने को मजबूर होते, यदि हमारे भीतर भी उन जैसी ही आध्यात्मिक शक्ति और राजनैतिक दृढ़ता होती।

हमारे सामने वे आज एक महान् आत्मिक शक्ति के रूप में आने वाली संकट-पूर्ण स्थिति के दिनों में हमारा और अपने लोगों का मार्ग-दर्शन करने के लिए खड़े हैं।

हमारे बीच से उनका चला जाना दुनिया के लिए एक बड़ी भारी क्षति है, क्योंकि आज हमें ऐसे नेता कहां मिल सकते हैं जो अपने जीवन और कर्म से प्रेम की असीम शक्ति के द्वारा दुनिया की मुसीबतों के हल पर जोर दे सकें। फिर भी यही वह सिद्धान्त है, जिसका ईसा ने उपदेश किया था और ईसाई होने के नाते जिसे मानने का हम दावा करते हैं।

हो सकता है कि दुनिया उनके जीवन से किसी बुनियादी उसूल की नसीहत

न ले, परन्तु यह निश्चित है कि बल-प्रयोग की सहायता से, संहार से, अपनी रक्षा की बातें करना आज व्यर्थ है और हमारी रक्षा या मुक्ति का सबसे बड़ा हथियार प्रेम की कल्याणकारी और असीम शक्ति ही है।

हम दिल से प्रार्थना करते हैं कि उनके देश में उनके धैर्य, सहिष्णुता, और लोक-प्रेम का उदाहरण सदा जीवित रहे और यह उदाहरण मुसीबत के उन बादलों के बीच से, जो आज देश पर छाये हुए हैं, उनके लोगों को सफलतापूर्वक सुन्दर और सुखमय भविष्य की ओर ले जाय, जैसा कि उनकी इच्छा थी और जिसके लिए सदा दृढ़ता के साथ उन्होंने काम किया और जीवन-पर्यंत जिसके लिए वे बलिदान करते रहे।

टामस ए. केम्पिस के शब्दों से अधिक सुन्दर रूप उनकी भावना को और कोई नहीं दे सकता :—

"प्रेम बोझ का अनुभव नहीं करता, कठिनाई की बात नहीं सोचता, जो कुछ अपनी ताकत से बाहर है, उसके लिए कोशिश करता है, असंभव का बहाना नहीं करता; क्योंकि सभी वस्तुओं को वह अपने लिए न्यायपूर्ण और संभव मानता है।

"इसलिए किसी भी काम को हाथ में ले सकता है और वह बहुत-से ऐसे असंभव कामों को पूरा करता है, उनके एक ऐसे निर्णय पर पहुँचाता है, जहांपर प्रेम न करने वाला व्यक्ति बेहोश होकर बैठ जाता है।"

: ६ :

'एक बहुत बड़ा आदमी'

ई. एम. फॉर्स्टर

गांधीजी को संक्षिप्त श्रद्धांजलि भेंट करते समय मैं शोक पर अधिक जोर नहीं देना चाहता। शोक उन्हें हुआ है जो महात्मा गांधी को व्यक्तिगत रूप से जानते थे, या जो उनकी शिक्षाओं के बहुत निकट हैं। मै इन दोनों बातों का दावा नहीं कर सकता और न एक ऐसे व्यक्ति के विषय में दया और करुणा से भरे शब्दों में बोलना उचित ही है, मानो उनकी मृत्यु का आघात हिन्दुस्तान या विश्वभर को नहीं, बल्कि स्वयं उनपर हुआ हो। अगर मैंने उन्हें ठीक समझा है तो मैं कह सकता हूँ कि वे मृत्यु के प्रति हमेशा उदासीन रहे। उनका स्वयं का कार्य और दूसरों की भलाई उनके लिए सर्वोपरि थे और यदि उनका उद्देश्य जीवित रहने की अपेक्षा मरने से पूरा होता तो

वे निश्चित ही इससे संतुष्ट होते वे बाधा को सदा साधन मानने के अभ्यासी थे और इसी विषय को लेकर उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि जो योजना मैं तैयार करता था, ईश्वर की इच्छा सदा उसके अनुकूल नहीं होती थी; और १२५ वर्ष तक जीवित रहने की कल्पना की अपेक्षा, जिसकी उन्होंने अपने भोलेपन में आशा कर रखी थी, वे सबसे बड़ी बाधा मृत्यु तक को जीवन का सबसे बड़ा साधन मानते होते। उनकी हत्या हमारे लिए बड़ी भयंकर और अविवेकपूर्ण है। अपने एक अंग्रेज मित्र के शब्दों में हम यह चाहते थे कि यह वृद्ध संत जादू के समान हमारे बीच से ओझल हो। परन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि हम इस सारी घटना पर बाह्य दृष्टि से ही विचार कर रहे हैं; यह उनकी हार नहीं थी।

आज की इस सभा में यद्यपि शोक और करुणा का अभाव है, फिर भी हम एक श्रद्धामिश्रित आतंक और अपने प्रति छोटेपन की भावना का अनुभव कर रहे हैं। गत सप्ताह मुझे जब यह समाचार मिला तो मुझे उस समय अपनी क्षुद्रता का गंभीर अनुभव हुआ। मेरे चारों ओर के लोग कितने छोटे हैं, हममें से अधिकांश के जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से कितने अशक्त और सीमित हैं, और उस परिपक्व अच्छाई के मुकाबले में हमारे युग के ये तथाकथित महापुरुष शेखीबाज़ स्कूल-बालकों से अधिक और कुछ नहीं हैं। कल समाचार-पत्र पढ़िए और देखिए कि वे क्या और किसलिए इतना विज्ञापन करते हैं। उन मूल्यों को परखिये, जिन्हें वे मानते हैं, उन कामों को समझिये, जिनपर वे जोर देते हैं। और तब नये सिरे से महात्मा गांधी के जीवन और चरित्र पर विचार कीजिए और भयमिश्रित श्रद्धा की एक कल्याणकारी लहर से हमारा व्यक्तित्व हिल उठेगा। हम आज चीजों को गढ़ना जानते हैं, स्थिति के अनुकूल अपने को बदल लेते हैं, हम अपने को निस्पृही और सहनशील समझते हैं। हमारे नौजवानों ने 'पीछे हटे हुए बहादुर' की मनोवृत्ति धारण कर ली है और यह सबकुछ ठीक माना जाता है। परन्तु हम आश्चर्य के भाव को खो रहे हैं। हम यह भूल रहे हैं कि मानव-स्वभाव क्या-क्या कर सकता है और इसका क्षेत्र कितना व्यापक है। इस महापुरुष की मृत्यु हमें यह याद दिलाती है कि उन्होंने अपने अस्तित्व से उन संभावनाओं की ओर संकेत किया है, जिनकी आज भी खोज की जा सकती है।

उनका चरित्र बड़ा पेचीदा था, पर उसके विश्लेषण का यह स्थान नहीं है। परन्तु जो कोई उनसे मिला, उनके आलोचक तक ने उनसे उनकी अच्छाई का सबूत पाया—एक ऐसी अच्छाई जो साधारण प्रकाश से नहीं चमकती। उनकी व्यावहारिक

शिक्षा—अहिंसा और सादगी का सिद्धान्त, जो चर्खे में मूर्त्तरूप हुआ था, उसी अच्छाई से उत्पन्न होता है और इसीने उनके भीतर स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने की प्रेरणा को जन्म दिया था। वे सिर्फ अच्छे नहीं थे, उन्होंने अच्छाई को रूप दिया था और इसीलिए आज दुनिया का प्रत्येक साधारण व्यक्ति उनकी ओर देखता है। उन्होंने हिन्दुस्तान को उनके आध्यात्मिक नक्शे में स्थान दिलाया। विद्यार्थियों और विद्वानों के लिए तो वह हमेशा उसी नक्शे में था, परन्तु साधारण व्यक्ति को स्पष्ट साक्षी चाहिए, चारित्रिक दृढ़ता के आध्यात्मिक प्रमाण चाहिए, और ये प्रमाण उसे उनके बन्दी जीवन में, उनके उपवास में, स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने की उनकी आदत में और आखिर में उनकी इस मृत्यु में मिले। अभी मैं टैक्सी की कतारों के सामने से होकर गुजरा और वहां मैंने ड्राइवरों को आपस में 'बूढ़े गांधी' के विषय में चर्चा करते सुना। वे सब अपने तरीके से उनकी बड़ाई कर रहे थे। वे उनकी बड़ाई की कद्र अवश्य करते, वे किसी भी विद्वान् या विद्यार्थी की श्रद्धांजलि से अधिक महत्त्व इसे देते, क्योंकि यह सादगी के भीतर से निकली थी।

मैंने उन्हें "एक बहुत बड़ा आदमी" कहा है। वे इस शताब्दी के महानतम व्यक्ति हो सकते हैं। लोग कभी-कभी लेनिन को उनके बराबर रखते हैं, परन्तु लेनिन का साम्राज्य इस दुनिया का था, और हमें यह भी पता नहीं कि आगे चलकर दुनिया उसके साथ कैसा व्यवहार करेगी। गांधीजी के साथ ऐसी बात नहीं थी। यद्यपि वे घटनाओं से संघर्ष करते थे, राजनीति पर असर डालते थे, तथापि उनकी जड़ें देश-काल से परे थीं और यहीं से उन्हें शक्ति प्राप्त होती थी।

उन्होंने चाहे किसी धर्म की प्रतिष्ठा न की हो, पर वे धर्म-प्रवर्तकों के साथ रखे जा सकते हैं। वे बड़े कलाकारों के साथ हैं हालांकि कला उनके जीवन का माध्यम नहीं थी। वे उन सभी स्त्री-पुरुषों के साथ हैं, जिन्होंने यंत्रवाद और विप्लव से अलग जीवन में कोई नई बात खोजने की कोशिश की, जिन्होंने आनन्द को स्वामित्व या अधिकार से, विजय को सफलता से सदा अलग समझा और जिनका प्रेम में अटल विश्वास रहा।

: ७ :

गांधीजी की महानता का कारण

एल० डब्ल्यू० ग्रेनस्टेड

अपने समयातीत गुण से सम्पन्न यदा-कदा कोई ऐसी खबर हमें मिल जाती है, जो आघात और महत्त्व से भरी हुई होती है और जिसे सुनते ही ऐसा प्रतीत होता है कि मानों यह दुनिया के किसी अमर अर्थ और सत्य की द्योतक हो। कभी-कभी ऐसे समाचारों का संबंध केवल व्यक्तिगत विषय तक ही सीमित रहता है। इसका संदेश केवल हमारे लिए ही महत्त्व रखता है, दूसरों के लिए इसका कोई अर्थ नहीं। परन्तु, कभी, प्रायः नही, ऐसे समाचार विश्व के व्यापक विषयों से संबंध रखते है और इसमें निहित संदेश को बहुत-से लोग पढ सकते हैं; यद्यपि उसे भली प्रकार समझने वाले लोग बहुत थोड़े ही होते है और उसे पूर्णतया समझ सकने वाले तो और भी कम होते है। संभवतः ऐसे सभी मामलों में घनिष्टता और व्यक्तिगत संबंध का तत्त्व रहता ही है, जिसके पीछे केवल अभिरुचि या दिलचस्पी ही नही, वरन् आत्म-तादात्म्य का गुण भी होता है, जिसके कारण होने वाली घटना की हमें केवल चिन्ता ही नही होती क्योंकि ऐसी चिन्ता या उत्सुकता बहुत दूर की भी हो सकती है, वरन् ऐसा लगता है कि वह घटना मानों हमो पर घटित हुई हो। ऐसे समाचार केवल इतिहास की सामयिक घटनाओं की चर्चा ही नही करते अपितु उनके भीतर एक अनंत तत्त्व भी रहता है। और ऐसे अनन्त तत्त्वों के ही हिस्से हम लोग हैं। आक्सफोर्ड में रहने वाले एक अंग्रेज के लिए गांधीजी की मृत्यु का समाचार ऐसा ही था।

मेरे लिए यह किसी मित्र की मृत्यु का समाचार नहीं था; क्योंकि मै गांधीजी से कभी मिला भी नहीं था। फिर भी मैं गांधीजी के विषय में उन लोगों से कही आधिक जानकारी रखता था, जिनके लिए उनकी मैत्री एक बड़ी बात थी। और यद्यपि हिन्दुस्तान, उसकी संस्कृति, उसकी आकांक्षाओं एवं अन्य समस्याओं के लिए मैं सदा उत्सुक रहा हूँ, फिर भी यह कहना कल्पना-मात्र होगा कि मै गहराई के साथ उसके मामले को जानता हूँ क्योंकि स्वीज़रलैण्ड से आगे पूर्व की ओर मैं कभी नहीं गया। परन्तु उस घातक रविवार के दिन, जब हमें हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में चलने वाली, विनाशक शक्तियों का पता भी न था, मेरे लिए ईसाइयों की एक सभा में गांधीजी की मृत्यु और जीवन के अलावा किसी दूसरे विषय पर बोल सकना असंभव

था और सचमुच उसी संध्या को भारतीय विद्यार्थियों के साथ आक्सफोर्ड की एक शोक-सभा में महात्माजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना और उन विद्यार्थियों के प्रति—और विद्यार्थियों के ज़रिये भारत के प्रति पश्चिमी और ईसाई मित्रों की समवेदना प्रकट करने का कार्य सचमुच बड़ा नाजुक और हृदय-विदारक था। और एक ईसाई होने के नाते यह संदेश दे सकना मेरे लिए कठिन नहीं था, क्योंकि यह मैं पूरी सच्चाई के साथ कह सकता हूँ कि गांधीजी के जीवन में ईसा मसीह की शिक्षा के बहुत-से तत्त्व अति अनुरूपता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं, जिन्हें देखकर हम ईसाइयों का सिर लज्जा से झुक जाता है, और जब मैं उन सिद्धान्तों पर विचार करता हूँ, जिनकी उन्हें सदा चिन्ता थी और जिनके लिए उनका संपूर्ण जीवन ही एक नमूना बन गया था, तो स्वयं मेरा विश्वास एक नया रूप ले लेता है और इस व्यक्ति की उस नई चुनौती को अंगीकार कर लेता है, जिसने स्वयं अपने को कभी ईसाई कहने का दावा न करते हुए भी जीवन में ईसा का अनुसरण और सम्मान किया। मैं उस संध्या को, विभिन्न राष्ट्रों के विद्यार्थियों की मूक सच्चाई को, चन्दन की लकड़ी की सुगन्ध को, अल्प-आलोकित आल-सोल्स कालेज के विशाल कानूनी पुस्तकालय को और समस्त संसार में व्याप्त शक्तिपूर्ण जीवन और मृत्यु की तीव्र अनुभूति को आसानी से नहीं भूल सकता हूँ।

अब कुछ समय बीत जाने के बाद, मैं उस विषय पर अधिक तटस्थ भाव से लिखने की कोशिश कर सकता हूँ कि आखिर गांधीजी में ऐसी कौन-सी बात थी, जिसने उन्हें मेरे लिए और मेरे समान अन्य लोगों के लिए, जो मेरी तरह ही, जिन लोगों के बीच वे काम करते थे, उनकी राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं से बिल्कुल अवगत न होते हुए भी ऐसी प्रभावशाली और चुनौती देने वाली हस्ती बना दिया था। शायद इस बात को संक्षेप में मैं इस तरह कह सकता हूँ कि उनकी महानता, क्योंकि इतिहास उन्हें निश्चय ही महान् व्यक्तियों की श्रेणी में ही रखेगा, उनके कामों में नहीं, उनके चरित्र में थी। निःसंदेह उनके कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण थे, और थोड़ी देर के लिए यह विचारणीय बात है, क्योंकि दुनिया में पवित्रता और प्रभावशीलता हमेशा साथ-साथ नहीं चलते, परन्तु गांधीजी के कार्यों या सफलताओं ने विश्व को इतना प्रभावित नहीं किया, जितना उनके भीतर की किसी चीज ने। उनके कार्य अभी इतिहास की आलोचना के विषय हैं, वे इतिहास के फैसले का इन्तज़ार कर रहे हैं, और गांधीजी सबसे पहले यह कहते थे कि उनकी अन्तर्दृष्टि के समान ही उनकी भूलों को भी उस निर्णय का सामना करना चाहिए। लेकिन उनकी

भावना आज भी जीवित है और वही भावना इतिहास को आज एक शक्ल दे रही है, उसे बना रही है और यही गांधीजी के महान् होने का सबसे प्रबल प्रमाण है।

अपनी तमाम प्रारम्भिक पश्चिमी संस्कृति और कानूनी शिक्षण की पृष्ठ-भूमि के बावजूद वे एक पक्के हिन्दुस्तानी थे। भारत की मूल आत्मा उनके भीतर मौजूद थी और वे सदा अपने स्वप्न के, अपनी कल्पना के, भारत के लिए जिये और मरे। भारत के लिए तैयार की गई उनकी योजना और आकांक्षाओं पर कोई फैसला देना मेरे जैसे एक पश्चिमी का कर्तव्य नहीं है। उनके जीवन में सबसे अधिक प्रभावशाली बात अपनी कल्पनाओं को मूर्त्तरूप देने का ढंग था। किसी राजनीतिज्ञ के विषय में यह कहना सर्वथा असत्य होगा कि उसमें राजनैतिक कार्य और अंतर धार्मिक प्रवृत्ति मिलकर एक हो गई थीं और दो विभिन्न प्रवृत्तियों की इसी एकता को बाह्य तथ्य में बदलने की आज भारत को सबसे अधिक जरूरत है और यदि इंगलैण्ड में हममें से बहुत-से लोग इस महान् प्रयोग की ओर आशा और सद्भावना से देख रहे हैं तो निश्चय ही यह स्वीकार करना चाहिए कि हमारी आशा और सद्भावना केवल गांधीजी के कारण है।

उनके आचरण और उनके कार्यों में जो बात मुझे सबसे महत्व की मालूम हुई, उसका मै विश्लेषण करना चाहता हूँ।

पहली बात का उल्लेख मैं कर चुका हूँ। अपनी गलतियों को स्वीकार न करने वाली निजी-बचाव और मुंह छिपाने की प्रवृत्ति से वे सदा दूर रहते थे। उनके निर्णय और नीति-संबंधी गलतियों को प्रायः उद्धृत किया जा चुका है। वे उन अहंकारी धार्मिक नेताओं से कोसों दूर थे जो केवल अपनी बात की सच्चाई का ही आग्रह रखते हैं। परिणामस्वरूप वे अपने अनुयायियों और राजनीतिज्ञों के लिए, जिन्हें सदा उनसे काम पड़ता था, एक परेशानी का कारण रहे हैं, परन्तु कभी कोई उनकी ईमानदारी के बारे में प्रश्न नहीं उठा सका। और हालांकि कभी-कभी किसी विशेष कार्य-पद्धति के औचित्य के बारे में उनके दिमाग़ में कई विचार उठते थे, तथापि उसे व्यवहार में लाने में उनका कोई निजी स्वार्थ या तरीका नहीं रहता था। वे अपने मित्रों और अनुयायियों से कभी उस नियम का पालन करवाने का आग्रह नहीं करते थे, जिसे वे स्वयं अधिक कठोरता के साथ न निभा सकें।

यही कारण था कि उन्होंने अपने लिए एक सीधा-सादा संत का रास्ता चुना और इस मार्ग का अनुसरण उन्होंने सदा मुक्त आजादी, आनंद और निर्दोषपूर्ण विनोद के साथ किया। इस आदत के गवाह उनके सभी मित्र हैं। अपने इसी विनोदी

स्वभाव के कारण वे उन पूर्वी और पश्चिमी लोगों की महान् संगति से पृथक् नहीं मालूम पड़ते थे, जिन्होंने गांधीजी के इस तौर-तरीके को अच्छा मानकर अपना लिया था।

सबसे विचित्र और एक पश्चिमी के लिए समझने में सबसे कठिन बात थी, उनका उपवास का प्रयोग, जिसे वे प्रायः घटनाओं की गति को प्रभावित करने और संकट-काल में शीघ्र-निर्णय के लिए करते थे। पश्चिमी देशों में भूख-हड़ताल का इतिहास न तो बहुत कल्याणकारी ही रहा है और न बहुत प्रशंसनीय ही। जहाँतक मेरी जानकारी का सवाल है, पूर्व में यह और भी खराब रहा है और इसका संबंध भी ऐसी विश्वास और मान्यताओं से रहा है, जो गांधीजी के स्वभाव के बिल्कुल विपरीत थी। परन्तु उन्होंने इसकी जो व्याख्या की है, और जिस तरह से इसे अमल में लाये, उससे उपवास का स्तर निःसंदेह बहुत ऊपर उठ गया है। दूसरों के कामों की जिम्मेदारी और परिणाम को अपने ऊपर ले लेना उनकी दिली इच्छा का प्रतीक बन गया था और हालांकि इस उपवास का इस्तेमाल दूसरों के समान वे उन लोगों पर असर डालने के लिए ही करते थे, जिनके कि कामों को वे प्रभावित करना चाहते थे, फिर भी बिना विशेष प्रयत्न के उन्होंने अपने इस प्रयोग को कटुता और विद्वेष की शंकामात्र से ही मुक्त रखा था और इसीलिए सचमुच जिन लोगों की नीति के खिलाफ़ उन्होंने उपवास का प्रयोग भी किया, उनके साथ भी सदा मित्रतापूर्ण संबंधों को कायम रखा। उनके उपवास में अमंगल की कामना नही थी, बल्कि स्वयं अपने ऊपर अभिशाप को लेने की चाह रहती थी।

इससे उनके जीवन के वे पक्ष हमारे सामने आते हैं, जो सबसे महत्त्वपूर्ण थे। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति याद नही आता, जो दुनिया की राजनीति के क्षेत्र में ईसा मसीह की जीवन-प्रणाली को मूर्त्तरूप देने और प्रभावपूर्ण बनाने में इतना आगे जा सका हो। मेरे समान एक ईसाई की दृष्टि में उन्होंने केवल अपनी शिक्षा की आत्मा को ही बाइबिल से नही लिया, वरन् अपने हिन्दू धार्मिक ग्रंथों तक को उन्होंने ईसा मसीह के सिद्धान्त के प्रकाश में पढ़ा। हिन्दू धर्म उन्हें अपना मानने का दावा कर सकता है, परन्तु उनकी आत्मा सभी धर्मो की उस गहरी-से-गहरी भूमि से अवतरित हुई थी, जहांपर सब धर्मो का मेल होता है। अछूतों के हकों के हिमायती होने के कारण वे जिस आग्रह और तीव्रता से हिन्दू धर्म की कट्टरता के कुछ पहलुओं को चुनौती दे सकते थे, उसी तरह ईसाईयत के उन दावों का भी वे खंडन कर सकते थे, जोकि वास्तविक जीवन में अमल में नहीं लाये जा सकते। अपने-अपने युगों

के धार्मिक विश्वासों के अनुसार ईसा और गौतम दोनों विद्रोही थे। गांधीजी न तो बौद्ध थे और न ईसाई, पर उन दोनों के अति निकट थे। उनका राजनैतिक जीवन इसीलिए इतना प्रभावपूर्ण था, क्योंकि उन्होंने राजनीति की आत्मा के भीतर धर्म की प्रतिष्ठा की थी। अन्य लोगों की तरह अपनी आत्म-मुक्ति के लिए दूर जंगल में जाने के वे समर्थक नहीं थे, परन्तु विश्व-कार्यक्षेत्र के बीच जिस विश्वास या धर्म को उन्होंने पाया, दूसरों को मुक्ति दिलाने की उस धर्म की क्षमता को वे प्रमाणित करना चाहते थे।

भारत के प्रति उनकी भक्ति और उसकी आजादी की तीव्र भावना अंधी और संकीर्ण देश-भक्ति के अभिशाप से बिल्कुल मुक्त थी और निःसंदेह यह बात उनके विचारों के बिल्कुल अनुकूल थी। दुनिया में जो कुछ अच्छे-से-अच्छा मिला, उसकी उन्होंने अपने देश में प्रतिष्ठा करनी चाही, परन्तु उससे भी अधिक स्वयं भारत की विशेषताओं को सामने लाने की उन्होंने कोशिश की। अपने ही देशवासियों से अधिक-से-अधिक आत्म-त्याग की माग करके उन्होंने उनके ऊपर असीम अधिकार प्राप्त कर लिया था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आजतक दुनिया में आजादी बिना रक्तपात के प्राप्त नही हुई हैं। "परन्तु याद रखिये, यह रक्त आपका हो। किसी दूसरे के खून की एक बूंद भी नही गिरना चाहिए।" स्वागत की आवाज बुलन्द करते हुए विद्यार्थियों से वे एक वाक्य में हमेशा ईश्वर से यह प्रार्थना करने को कहते थे कि हिन्दुस्तान वह न रहे जो आज है, वरन् वह बने जो ईश्वर उसे बनाना चाहता है। उनके अन्तिम उपवास के समय प्रायश्चित्त की सात शर्तें केवल हिन्दुस्तान के लिए थी, पाकिस्तान के लिए नहीं।

प्रायः अपने देश में और इंगलैण्ड में इस बात के लिए उनकी आलोचना होती थी कि वे जो कुछ भी कहें, उनकी नीति से वास्तव में हिंसा के कार्य शुरू हो जाते थे। इस संबंध में उनका उत्तर बड़ा विचित्र था। उन्होंने बन्दी-जीवन का खुशी के साथ स्वागत किया और लेशमात्र भी इस भावना के बिना कि उनके प्रति कोई अन्याय किया जा रहा है, या उन्हें शहीद बनाया जा रहा है। जब उत्तेजना फैलाने के अपराध में उन्हें दंड दिया गया तो उन्होंने तत्काल अपने अनुयायियों के उन सारे कार्यों की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली, जो उन लोगों ने उनकी सख्त हिदायतों के बावजूद किये थे और अदालत से प्रार्थना की कि दंड-विधान के अनुसार उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा सजा दी जाय। वे गवर्नरों और शासकों के लिए एक समस्या थे, क्योंकि कोई प्रशास-कीय कार्य उनके आचरण के गहरे सिद्धांत को छू तक न पाता था और न उनके मैत्री-

पूर्ण व्यवहार या मेलजोल को सरकारी अनुशासन की कोई ऐसी कार्यवाही तोड़ ही सकती थी, जिसे करने के लिए वह विवश थे। जहांतक असर की ताकत का सवाल था, आजाद गांधी और बन्दी गांधी में कोई अन्तर नहीं था। आत्म-शक्ति के अलावा वे किसी दूसरी शक्ति को जानते नहीं थे और आत्म-शक्ति के लिए जेल के सीखचों का कोई अर्थ नहीं, सिवाय इसके कि वस्तुतः बलिदान की रचनात्मक शक्ति की अंत में जीत होती है। उनकी पूर्ण निर्भीकता और व्यक्तिगत खतरे के प्रति उनकी उदासीनता से बढ़कर असर करने वाली बात उनकी जिन्दगी में और कोई नहीं थी।

इसके पीछे उनकी अहिंसा की सारगर्भित और अर्थपूर्ण व्याख्या थी और इसीने उन्हें पूर्ण अहिंसा की शिक्षा और मानवमात्र के लिए आदर-भाव का मार्ग दिखाया। लंदन के पूर्वी छोर पर बसने वाले गरीबों के साथ वे उतने ही घुले-मिले थे, जितने कि हिन्दुस्तान में। दलितों के प्रति उनकी चिन्ता केवल भावुकता नहीं थी, वरन् जीवन के प्रति पवित्रता के व्यापक अर्थ की अभिव्यक्ति थी। उनके एक मित्र ने एक बार मुझसे कहा था कि गांधीजी के दो तीव्र भाव थे—शांति और गरीबी, परन्तु असल में ये दोनों एक ही चीज थे। वे मानव-प्रेमी थे और इस नाते मानवमात्र के लिए संघर्ष करना भी उनके लिए आवश्यक था। परन्तु अपने इस संघर्ष में आत्म-शक्ति के सिवा किसी दूसरे हथियार का प्रयोग वे नहीं करते थे, क्योंकि बल प्रेम को नष्ट कर देता है।

आज वे हमारे बीच नहीं हैं, और जैसा कि उनकी मृत्यु के बाद मैंने कहा था, "यह अच्छा ही हुआ कि उनका देहावसान किसी पूर्व निश्चित उपवास के कारण नहीं हुआ, बल्कि संसार के कुतर्क का सामना करते हुए, उसका स्वागत करते हुए हुआ, और वह भी इस महत्ता के साथ कि अन्त में कुतर्क और दुःख स्वयं अजेय प्रेम की विजय द्वारा रूपान्तरित हो जायंगे। वे मरे नहीं हैं। जिस मृत्यु से वे मरे हैं, उसने उन्हें मुक्त कर दिया है और आज हम पश्चिम-निवासी फिर से नया जन्म लेने वाले उस भारत का अभिवादन करते हैं, जहां कि उनकी आत्मा आज भी जीवित है और जिसका पूर्ण परिणाम देखने तक शायद हम लोग जीवित भी न रहें।

: ८ :

उनका महान् गुण

हैलीफ़ैक्स

गांधीजी का मित्र होने और उन्हें जानने के सुअवसर के प्रति मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। उनकी दु:खदाई मृत्यु के बाद आजतक उनके गुणों के विषय में इतना लिखा और कहा गया है कि संसार का प्रत्येक देश आज उस महान् विभूति से बहुत अंश तक परिचित हो गया है। प्रत्येक महापुरुष के बारे में कहा जा सकता है कि उसके जीवन के भिन्न-भिन्न पक्ष अलग-अलग लोगों के लिए अपना अलग-अलग महत्व रखते हैं। हिन्दुस्तान में जिस गुण के कारण उन्हें ऐसा अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ, वह उस गुण से सर्वथा भिन्न था जिसके कारण पश्चिम में उनके मित्रों से उन्हें प्रशंसा मिली। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस तरह कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व असल में उनका चित्र खींचने के किसी भी प्रयत्न से कहीं अधिक बड़ा था।

उनमें एक ऐसी स्पष्टता थी जो लोगों को पूरी तरह अपनी ओर खींच लेती थी। परन्तु इसके साथ ही उनके व्यवहार में एक ऐसी बौद्धिक बारीकी थी, जो कभी-कभी बड़ी उलझानेवाली मालूम होती थी। उनके दिमाग़ में क्या चल रहा है, इसे ठीक-ठीक समझने के लिए यह आवश्यक था कि यदि हम स्वयं उसी बिंदु से शुरू न कर सकें तो कम-से-कम उस बिंदु को भली प्रकार समझ लें कि उन्होंने अपना सोचना कहाँ से शुरू किया था, और यह बात हमेशा बड़ी मानवीय और सीधी होती थी।

मुझे अच्छी तरह याद है जब पहली बार हिन्दुस्तान जाकर मैंने सी. एफ. एन्ड्रूज से उनके विषय में बातचीत की थी, जोकि मेरे खयाल से किसी अंग्रेज की अपेक्षा गांधीजी के अधिक निकट थे। उस समय मुझसे उन्होंने कहा था कि मि. गांधी विधान और वैधानिक रूप की कम परवाह करते हैं और वह गोलमेज कान्फ्रेंस के समय और भी स्पष्ट हो गया। हिन्दुस्तान का गरीब किस तरह रहता है, इस मानवीय समस्या की उन्हें सबसे अधिक चन्ता थी। वैधानिक सुधार हिन्दुस्तान के व्यक्तित्त्व और आत्म-सम्मान के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण था; परन्तु सबसे अहम सवाल लाखों लोगों की रोजाना की जिन्दगी पर असर डालने वाला— नमक, अफीम, घरेलू धंधे और दूसरी ऐसी ही चीजों का था।

हालांकि चर्खे के प्रति गांधीजी की आस्था पर हँसना बहुत आसान है, विशेष-

कर ऐसी अवस्था में जबकि एक ओर कांग्रेस अपने चन्दे के लिए ज्यादातर धनी हिन्दुस्तानी मिल-मालिकों की उदारता पर निर्भर थी, तो भी चर्खे का उनके जीवन-दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों में एक विशेष स्थान था, यह बात बिल्कुल सत्य थी और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है ।

वे स्वाभाविक योद्धा थे । गरीबों के साथ किये गए अन्याय और दिये गए कष्टों के खिलाफ वे हमेशा लड़ते रहे । दक्षिण-अफ्रीका में भारतीयों के अधिकार, नील के खेतों में हिन्दुस्तानी मजदूरों के साथ होने वाला व्यवहार, उड़ीसा की बाढ़ से बेघरबार होने वाले हजारों लोग और सबसे ज्यादा सांप्रदायिक घृणा से उत्पन्न कष्ट और पीड़ा—ये सब बारी-बारी से उनकी लड़ाई के मैदान थे, जहां वे अपनी सारी ताकत के साथ मानवता और अधिकारों के लिए लड़े थे ।

उनके साथ सन् १९३१ के वसन्त के दिनों में दिल्ली में होने वाली बातचीत को जब याद करता हूँ तो उस समय की दो बातें आज भी मेरे दिमाग में साफ झलक आती हैं । अन्य बातों की अपेक्षा उनके मस्तिष्क और पद्धति की ये दोनों बातें अधिक अच्छी व्याख्या करती हैं—और ये दोनों बातें हमें ऐसा रास्ता दिखाती हैं, जहां आदर्शवादी और यथार्थवादी दोनों मिल सकें ।

पहली बात असहयोग आन्दोलन बन्द करने के बाद उस बीच में पुलिस रा किये गए जुल्मों की जांच करवाने की उनकी मांग से संबंधित है । कई एक कारणों से मैंने इस मांग का विरोध किया । अन्य दलीलों के साथ इस तर्क को भी मैंने उनके सामने रख की कोशिश की कि हो सकता है कि दूसरे लोगों के समान पुलिस ने भी कुछ गलतियां की हों, परन्तु अब बारह महीने के बाद उन स्थानीय झंझटों या उपद्रवों के विषय में ठीक-ठीक बातों का पता लगाने का प्रयत्न बेकार साबित होगा और इसका नतीजा यह होगा कि दोनों ओर अधिक उत्तेजना बढ़ेगी । इससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और इस मुद्दे पर तीन दिन तक हमारी बहस चलती रही । अंत में मैंने उनसे कहा कि मैं उन्हें वह असली कारण बताऊँगा जिसकी वजह से मैं उनकी उस मांग को स्वीकार नहीं कर सका । मुझे इस बात का भरोसा नहीं है कि अगले चन्द दिनों में वह फिर कहीं आन्दोलन न छेड़ दें और जब कभी वे ऐसा करें तो मैं चाहता हूँ कि पुलिस का जोश ठंढा न पड़े बल्कि और बढ़े । इसपर उनका चेहरा चमक उठा और वे बोले—"ओह, आप श्रीमान मेरे साथ वैसी ही बात कर रहे हैं, जैसीकि जनरल स्मट्स ने दक्षिण-अफ्रीका सत्याग्रह के समय की थी । आप इस बात से इन्कार नहीं करते कि मेरा दावा उचित नहीं है, परन्तु सरकारी दृष्टिकोण से आप अपनी

असमर्थता की ऐसी दलील पेश कर रहे हैं, जिनका जवाब नहीं दिया जा सकता। मैं अपनी मांग वापस लेता हूँ।"

दूसरी घटना भी उसी दिन की है और अगर मेरी सूचना गलत नहीं है तो इससे गांधीजी के साहस और वचन पालन करने के गुणों का सबूत मिलता है। गांधी-अर्विन समझौता पूर्ण होने के बाद दूसरे दिन सुबह वे मेरे पास आए और मुझसे एक दूसरे विषय पर बात करने की इच्छा प्रगट की। वे उस समय करांची-कांग्रेस में भाग लेने जा रहे थे, जोकि उनके विचार से इस समझौते का अंतिम निर्णय करने वाली थी। उन्होंने इसी सिलसिले में मुझसे भगतसिंह नाम के एक नौजवान की जिन्दगी की अपील करनी चाही, जिन्हें कि विभिन्न आतंकपूर्ण अपराधों के लिए मृत्यु-दंड दिया जा चुका था। वे स्वयं प्राण-दंड के विरोधी थे, पर इस समय हमारे तर्क का यह विषय नहीं था। उन्होंने कहा कि यदि इस समय भगतसिंह को फांसी दी गई तो वे राष्ट्रीय शहीद का गौरव प्राप्त कर लेंगे और इससे समझौते के आम वातावरण को बड़ा धक्का पहुँचेगा। मैंने कहा कि उनके उस विचार की मैं कद्र करता हूँ, इस समय प्राण-दंड की अच्छाई-बुराई का ख़याल भी मेरे सामने नही हैं, क्योंकि न्याय का आज जो रूप है, उसीके अनुसार मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना है। इस आधार पर मैं किसी दूसरे व्यक्ति की कल्पना भी नही कर सकता कि जो भगतसिंह से अधिक प्राण-दंड का अधिकारी हो। इसके अलावा गांधीजी ने यह अपील बड़े बेमौके की थी, क्योंकि पिछली शाम को ही मेरे पास प्राण-दंड को कुछ समय तक रोकने के विषय में स्वयं भगतसिंह की अपील आ चुकी थी जिसे अस्वीकृत करना ही मैंने ठीक समझा था, और इसलिए शनिवार को प्रातःकाल उन्हें फांसी दी जाने वाली थी (हमारी बातचीत का दिन, जहांतक मुझे याद है, गुरुवार था)। गांधीजी कांग्रेस-अधिवेशन के लिए शनिवार की शाम को करांची पहुँचने वाले थे। तबतक भगतसिंह की फांसी के समाचार फैल चुके होंगे। अतः उनके विचार से दोनों बातों की तारीख के एक ही दिन पड़ने से अधिक उलझाने वाली बात और कोई नहीं हो सकती थी।

गाधीजी ने चलते समय मुझसे अपने भय का संकेत किया था कि यदि मैं उस दिशा में कुछ नही कर सका तो इसका प्रभाव हमारे समझौते पर बहुत बुरा पड़ेगा।

मैंने उनसे कहा कि यह तो स्पष्ट ही है कि इसके अब तीन ही संभव रास्ते हैं। पहला रास्ता यह है कि कुछ न करना और फांसी लगने देना, दूसरा यह कि आदेश

देकर दंड को कुछ समय के लिए स्थगित करना और तीसरा रास्ता यह था कि कांग्रेस-अधिवेशन के खत्म होने तक इस निर्णय को रोक रखना। मैंने उनसे कहा कि मेरे विचार से वे इस बात से सहमत होंगे कि मेरे लिए प्राण-दंड को स्थगित रखना असंभव है, और निर्णय को कुछ समय के लिए रोक कर किसी प्रकार की रियायत मिलने की संभावना है, लोगों को ऐसा सोचने का मौका देना न तो ईमानदारी ही है, और न खरापन ही। इसलिए तमाम मुसीबतों के बावजूद पहला रास्ता ही ठीक है। गांधीजी ने थोड़ी देर तक सोचा और कहा—"क्या आपको एक नौजवान की जिन्दगी के लिए की जाने वाली मेरी प्रार्थना में आपत्ति है ?" मैंने कहा, "मुझे कोई आपत्ति नहीं है यदि वे इसमें इतना और जोड़ दें कि मेरे दृष्टिकोण से मेरे लिए इसके सिवा और कोई रास्ता दिखलाई नहीं पड़ता।" उन्होंने एक क्षण के लिए सोचा और अंत में मेरे विचार से सहमत हो गए, और बात को स्वीकार कर वे करांची गए। वहां जिस बात का डर था, वही हुआ ; उनके पहुँचने से पूर्व फांसी का समाचार प्रकाशित हो चुका था, लोगों की भीड़ में भयंकर उत्तेजना फैल चुकी थी और बाद में मुझे पता चला कि उनके साथ भी बड़ा भद्दा सलूक किया गया। परंतु जब उन्हें अधिवेशन में बोलने का अवसर मिला तो वे उसी समझ से बोले, जैसाकि हमारे बीच समझौता हुआ था।

जिन दो घटनाओं का उल्लेख मैंने किया है, वे उनके व्यक्तिगत पक्ष पर प्रकाश डालने के लिए काफी हैं और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उनकी मित्रता को इतना कीमती मैं क्यों समझता था। किसीके विश्वास की रक्षा करने के विचार से मुझे ऐसा कोई व्यक्ति याद नहीं आता, जिसे अपने विश्वास में लेने के लिए मैं इतना तैयार रहूँ, जितना गांधीजी को।

अपने स्तर से नापने पर एक ऐसी जिन्दगी का एकाएक खत्म हो जाना निःसंदेह उस देश के लिए असीम संकट का कारण हो सकता है, जिसे उन्होंने इतना प्यार किया था। परंतु जो उनके कार्यों को अच्छी तरह जानते हैं, और जो यह भी जानते हैं कि वे जिन्दगी में और क्या करते, वे ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि उनकी मृत्यु से एक-दूसरे को और अधिक अच्छी तरह समझने का मौका मिले—मृत्यु, जिसने एक ऐसी जिन्दगी को समेट लिया, जो सदा सेवा के लिए समर्पित थी और जो खुशी-खुशी उसी रास्ते पर कुर्बान हो गई।

: ६ :

श्रेष्ठतम अमर पुरुष

एस० आई० हसिंग

युद्धोत्तरकालीन इंगलैण्ड में कुछ कमियां यदि युद्ध-काल से ज्यादा नहीं तो कम तो किसी भी हालत में नहीं हैं। अन्न में चावल एक ऐसा धान्य था, जिसके बिना भी यूरोप में लोग रहना सीख गये थे, इसलिए बहुत वर्षों से चावल बाजार से ओझल ही हो गया था। मैं और मेरा परिवार भी इसपर रहने का आदी था, इसलिए हम लोग इस अभाव को बहुत महसूस करते थे, परन्तु कुछ सुविधाप्राप्त देशवासियों की कृपा से ३० जनवरी, १९४८ के दिन हम एक असली चीनी भोजन पाने वाले थे। आक्सफोर्ड के शांत घर में मेरे मित्र और मेरा परिवार मेज के चारों ओर बैठे थे। लेकिन उस दिन का भोजन हमें बेस्वाद लग रहा था। भोजन शुरू करने से कुछ ही मिनट पहले हमने बिना बे-तार के तार से गांधीजी की हत्या की बात सुनी।

व्यक्तिगत रूप से हममें से किसीको भी महात्मा गांधी को जानने का गौरव प्राप्त नहीं हुआ था और न हम विश्व-राजनीति में कोई रुचि रखते थे। न केवल मैं बल्कि मेरे सभी बच्चे आक्सफोर्ड में केवल साहित्य-अध्ययन तक ही अपने को सीमित रखते थे। "इस खबर के बारे में आपकी क्या राय है कि हिटलर अभी-अभी मर गया है?" मेरे एक मित्र ने मेरे एक बच्चे से, जो अंग्रेजी साहित्य पर भाषण दे रहा था, पूछा। उत्तर बड़ा नम्र परन्तु दृढ़ था—"ऐसे विषयों में मेरी अज्ञानता के लिए क्षमा करें। शायद हमारा एक भाई आपसे इस विषय में अधिक दिलचस्पी के साथ बात करने की रुचि रखता हो।" हमें बातचीत का विषय बदल देना पड़ा।

परंतु महात्मा गांधी की मृत्यु से हमें बड़ा धक्का लगा। ऐसा जान पड़ा, मानो हमारे निकट का, कोई बड़ा प्रिय व्यक्ति कत्ल कर दिया गया हो। बहुत दिनों तक उदासीनता की वह भावना दिमाग में बनी रही। उनकी हत्या के बाद दुनिया हमें बहुत गरीब-सी मालूम होने लगी। केवल हिन्दुस्तान के लिए नहीं, वरन् समस्त मानव-जाति के लिए यह एक ऐसी क्षति थी, जिसे कभी पूरा नहीं किया जा सकता था।

चीन के लिए भारतीयों के दो नाम ऐसे है, जो प्रत्येक की जबान पर हमेशा रहते है—बुद्ध और गांधी। वे एक दूसरे से हजारों वर्ष के अंतर से पैदा हुए है। परन्तु उनकी महानता हमेशा जीवित रही है और समय के व्यवधान की परवाह किये बिना यह महानता सदा अमर रहेगी। हम लोगों ने पिछले सौ वर्षों में बेशुमार मुसीबतें झेलीं है, इसलिए हम यह अच्छी तरह जानते है कि भारतवर्ष, उसकी जनता और उसके नेताओ के लिए गाधीजी की मृत्यु के क्या माने हैं। एक राष्ट्रीय वीर, एक राजनैतिक पंडित अथवा एक विद्वान के लिए जो आदर हमारे मन में होता है, वह बहुत सीमित होता है; परन्तु महात्मा गांधी की आध्यात्मिक महानता के प्रति हमारे मन में जो श्रद्धा है वह असीम है, अमर है। हमारे लिए उनका स्थान उन संत और महात्माओं के बीच है, जिनकी स्मृति हमारे मानस में सदा अमर है।

क्या कनफ्यूशस ने यह नही कहा था, "यदि एक बार कोई व्यक्ति अपनेको ठीक रास्ते पर लाने की व्यवस्था कर ले, तो फिर एक राजनीतिज्ञ होने में उसे कोई कठिनाई नही होती; परंतु यदि वह अपनेको ठीक नही कर सकता तो फिर वह दूसरों को ठीक करने की बात कैसे सोच सकता है?" इसी तरह महात्मा गांधी ने अपने से कहा था, "सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने मुझे राजनीति के मैदान में खीचा है।" और, "धर्म से शून्य राजनीति एक मृत्यु-जाल है, क्योंकि उससे आत्मा का नाश होता है।"

मानवता की उस आत्मा की तुलना मेनशियस की शिक्षाओं से की जा सकती है, जिसने गांधीजी को ग्राम-उद्योगों के पुनरुद्धार के लिए उत्साहित किया, विशेषकर ऐसे समय में जब सैनिक विजय ही राष्ट्रीय नेताओं का एकमात्र उद्देश्य था। आज से दो हजार वर्ष पहले चीन के एक राजा ने अपने राज्य को विशाल साम्राज्य का रूप देने के लिए युद्ध करना चाहा था। इसपर मेनशियस ने उससे कहा था कि वह एक ऐसे व्यक्ति के समान है जो मछलियां पकड़ने के लिए पेड़ पर चढ़ना चाहता है। मेनशियस के अनुसार एक राजा दुनिया को एक ही तरह से समृद्ध कर सकता है— घर के पास की ५ एकड़ भूमि में वह शहतूत के पेड़ लगाये, जिससे कि ५० वर्ष की उम्र के लोग रेशम पहन सकें।" और, "मुर्गी-पालन, बतख-पालन के काम शुरू करें, ताकि ७० वर्ष की उम्र के लोगों को खाने के लिए गोश्त मिल सके।"

हमारे ताओवादी पंथ के संस्थापक लाओ-जे ने जोकि कनफ्यूशस के अग्र-समकालीन थे, हमें यह सिखाया था, "दुनिया की सब चीजों में सिपाही बुराई

के सबसे बड़े हथियार हैं, जिन्हें सब घृणा करते हैं।" और यह भी कहा था, "एक जीत का उत्सव मृत्यु-संस्कार के समान मनाया जाना चाहिए।" उनका यह उपदेश भी था, "कुछ न करने से सब कुछ हो जाता है। जो विश्व-विजय करता है वह भी कुछ न करके ही ऐसा करता है।" आज की दुनिया में राष्ट्रों के प्रधान यह सुनना पसन्द नही करेंगे, क्योंकि वे सदा ऐसे सिद्धान्तों के विपरीत कार्य करते है। लेकिन महात्मा गांधी एक ऐसी हस्ती थे जिन्होंने अहिसा और असहयोग का उपदेश दिया और उसके अनुमार आचरण किया।

यही कारण है कि हम चीनी लोग उन्हें सदा मानव-इतिहास के श्रेष्ठतम अमर पुरुषों की श्रेणी में रखेंगे।

: १० :

उनके बुनियादी सिद्धान्त

आल्डस हक्सले

गांधीजी की अर्थी एक सैनिक गाड़ी द्वारा चिता-स्थल तक ले जाई गई। उनकी शव-यात्रा के साथ टैंक और हथियारों से सज्जित सैनिक मोटरें थीं, सैनिक और सिपाही जत्थे थे। उनकी अर्थी के ऊपर भारतीय वायु सेना के लड़ाकू जहाज चक्कर काट रहे थे। आत्मशक्ति और अहिंसा के इस देवदूत के सम्मान में हिंसा और बल के समस्त साधनों का प्रदर्शन किया गया था। भाग्य का यह एक अटल विद्रूप था, क्योंकि राष्ट्र की व्याख्या के आधार पर वह प्रभुत्वसंपन्न एक ऐसा संघ है, जिसे दूसरे प्रभुत्वसंपन्न संघों के विरुद्ध युद्ध करने का अधिकार है। ऐसी दशा में किसी व्यक्ति के प्रति राष्ट्रीय सम्मान के अर्थ, चाहे वह व्यक्ति स्वयं गांधी ही क्यों न हो, निश्चय रूप से सैनिक और प्रतिरोधी शक्तियों का प्रदर्शन ही होगा।

आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व उन्होंने 'हिन्द स्वराज्य' में अपने देशवासियों से एक प्रश्न किया था कि आखिर "स्वराज्य और गृह-शासन" से क्या मतलब है? क्या वे उसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था चाहते हैं जो उस समय प्रचलित थी? यानी सत्ता का अंग्रेजों के स्थान पर हिन्दुस्तानी शासकों और राजनीतिज्ञों के हाथ में चला जाना? अगर ऐसा है तो उनकी इच्छा शेर से मुक्ति पाकर, अपने स्वभाव में शेर की तमाम खूंख्वार प्रवृत्तियों को सुरक्षित रख लेने की है। अथवा

वे 'स्वराज्य' के वही अर्थ करने को तैयार हैं, जो स्वयं गांधीजी के थे, अर्थात्—भारतीय सभ्यता की उन समस्त शक्तियों का प्राप्त करना, जिन्होंने उन्हें अपने पर शासन करना सिखाया था और सत्याग्रह के जरिये जिन्होंने भावना द्वारा सामूहिक कार्यों को स्वीकार किया था ?

एक ऐसे विश्व में जिसका संगठन ही युद्ध के लिए किया गया हो, हिन्दुस्तान के लिए दूसरा रास्ता चुन सकना बड़ा कठिन था, बिल्कुल असम्भव था। उसके लिए भी एक ही रास्ता था कि दूसरे राष्ट्रों के समान वह भी एक राष्ट्र बन जाय। स्वराज्य के पहले एक विदेशी अत्याचार के विरुद्ध अहिंसक संघर्ष को चलाने वाले स्त्री-पुरुषों ने एकाएक अपनेको एक सर्वप्रभुत्वसंपन्न सत्ता के नियंत्रण में पाया, जोकि अब युद्ध और प्रतिरोध के तमाम साधनों से पूर्ण थी। भूतपूर्व बन्दी और भूतपूर्व शांतिवादी एक रात में जेलरों और सेनापतियों में बदल गए। उन्हें यह परिवर्तन चाहे अच्छा लगा हो या नहीं।

ऐतिहासिक पूर्व-दृष्टान्तों से इस आशावाद की पुष्टि नहीं होती। स्पेन के उपनिवेशों ने जब एक आजाद राष्ट्र की तरह अपनी स्वाधीनता प्राप्त की, तो क्या हुआ ? उनके नये शासकों ने सेनाएं इकट्ठी कीं और एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ाई के मोर्चे पर डट गये। यूरोप में मेजिनी की राष्ट्रीयता का संदेश आदर्शवादी और मानवीय था। परन्तु अत्याचार से पीड़ित लोगों ने जब अपनी आजादी हासिल की तो वे अपने तरीके से बड़ी जल्दी आक्रमणकारी और साम्राज्यवादी बन गये। इससे भिन्न और कुछ नहीं हो सकता था। क्योंकि जिस प्रसंग के ढांचे में एक व्यक्ति विचार करता है, वही ढांचा उसके निर्णयों की प्रकृति का द्योतक होता है। वे निर्णय सैद्धान्तिक भी हो सकते हैं और व्यावहारिक भी। भूमिति-शास्त्र के स्वयं-सिद्ध प्रमाणों से आरंभ करने पर कोई भी व्यक्ति इस नतीजे पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि एक त्रिभुज के तीनों कोणों का जोड़ हमेशा दो समकोण (१८०°) होता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय मान्यताओं से आरंभ करने पर कोई व्यक्ति शस्त्रीकरण, युद्ध और राजनैतिक एवं आर्थिक शक्तियों के केन्द्रीयकरण के निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता।

भावना और विचार के बुनियादी रूपों को जल्दी बदला नहीं जा सकता। राष्ट्रीय प्रसंग के ढांचे के स्थान पर एक ऐसी शब्दावली तैयार करने के काम को पूरा करने में अभी बहुत वर्ष लगेंगे, जिसमें लोग राष्ट्र-निरपेक्ष ढंग से राजनैतिक चिंतन कर सकें, लेकिन इसी बीच में शिल्प-शास्त्र का बड़ी तेजी से विकास हो

रहा है। ऐसी व्यवस्था में राष्ट्रीय तौर पर सोचने के जड़ीभूत स्वभाव से उत्पन्न हुए मानसिक शैथिल्य पर विजय पाने में दो पीढ़ियां, शायद दो शताब्दियां, लगेंगी। युद्ध-कौशल के क्षेत्र में उन वैज्ञानिक खोजों के प्रयोग अभिनंदनीय हैं। केवल दो वर्ष के समय में हम इतना बड़ा काम कर सके हैं। यह काम इतने कम समय में पूरा हो सकेगा, यह कह सकना बिल्कुल असंगत-सा प्रतीत होता है।

गांधीजी ने अपनेको राष्ट्रीय आज़ादी के युद्ध में व्यस्त पाया; परन्तु उन्हें इस काबिल होने की बराबर उम्मीद थी कि वे जिस राष्ट्रीयता के नाम पर लड़ रहे हैं उसे वे रूपान्तरित कर सकेंगे—सबसे पहले हिंसा के स्थान पर सत्याग्रह को स्थान देकर, और दूसरे सामाजिक और आर्थिक जीवन में विकेन्द्रीकरण को स्थान देकर। परन्तु आजतक उनकी आशा को मूर्त्तरूप नहीं दिया जा सका। यह नया राष्ट्र जहांतक हिंसक साधन और प्रतिरोधी साधनों का संबंध है, दूसरे राष्ट्रों के समान ही है, और साथ-ही-साथ इसके आर्थिक विकास की योजनाओं का उद्देश्य भी एक ऐसा औद्योगिक राज्य बनाना है, जो सरकारी या पूंजीवादी नियंत्रण द्वारा संचालित बड़े-बड़े कल-कारखानों से परिपूर्ण हो, जहां दिनोदिन सत्ता का केन्द्रीयकरण बढ़ता जाय, जीवन का स्तर ऊंचा होता चले, और इसके साथ ही उन्माद की घटनाओं और मानसिक एवं उदर-संबंधी रोगों की वृद्धि होती चले। गांधीजी विदेशी शेर के पंजे से अपने देश को मुक्त करने में सफल हुए, परंतु राष्ट्रीयता के रूप में वे उस खूंख्वार प्रकृति को सुधारने के प्रयत्न में असफल रहे। क्या इसलिए हमें निराश होना चाहिए? मै ऐसा नहीं सोचता। असलियत बड़ी कष्टदायक होती है और आखिर में इसको रोका भी नहीं जा सकता। देर या सबेर से लोग यह महसूस करेंगे कि इस स्वप्न-चेता के पैर जमीन में बड़ी मजबूती से गड़े थे, और यह आदर्शवादी सबसे अधिक व्यवहारवादी व्यक्ति था, क्योंकि गांधीजी के सामाजिक और आर्थिक विचार मानव स्वभाव की यथार्थवादी मान्यताओं एवं विश्व में उसकी स्थिति के स्वभाव पर निर्भर है। एक ओर, वे यह जानते थे कि बढ़ते हुए संगठनों की सामूहिक विजय और विकासशील शिल्प-विज्ञान इस बुनियादी सच्चाई को नहीं बदल सकते कि मनुष्य एक छोटे कद का जानवर है, और बहुत-सी चीजों में उसकी योग्यता भी बहुत सीमित है। दूसरी ओर वे यह भी जानते थे कि शारीरिक और मानसिक सीमाएं, आध्यात्मिक प्रगति के लिए की गई असीम क्षमता के व्यावहारिक रूप के अनुरूप हैं। अर्थात् दोनों विकास या दोनों प्रकार की प्रगति साथ-साथ चल सकती है। गांधीजी के अधिकांश

समकालीन लोगों की भूल यह थी कि वे यह मानते थे कि शिल्प-विज्ञान और संगठन तुच्छ मानव प्राणी को एक श्रेष्ठ मानव बना सकते हैं, और इस प्रकार आत्मिक अनुभूति की असीमताओं के स्थान पर एक दूसरी चीज दुनिया को दी जा सकती है, जिसके अस्तित्व से इन्कार करना शास्त्रानुकूल माना जाता था। इस जमीन और पानी पर चलने वाले प्राणी के लिए, जो देव और दानव की सीमा पर खड़ा है, किस प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाएं सबसे अधिक उपयोगी होंगी ? इस सवाल का गांधीजी ने बड़ा सीधा और समझदारी से भरा हुआ जवाब दिया था। मनुष्य को ऐसे संगठनों के बीच जीना और काम करना चाहिए, जो उसकी शारीरिक और मानसिक रचना के अनुरूप हों, ऐसे छोटे संघ, जहां वास्तविक स्व-शासन और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को निभाने का अवसर मिल सके। इन छोटी-छोटी स्वतंत्र इकाइयों को मिलाकर एक ऐसा संघ बनाया जा सकता है जिसमें बड़ी सत्ता के दुरुपयोग के लोभ का सवाल ही पैदा न हो। लोकतंत्री राज्य जितना बड़ा होता जायगा, जनता की वास्तविक हुकूमत उतनी ही अवास्तविक होती जायगी। और अपने भाग्य के निर्माण-संबंधी प्रश्नों पर लोगों और स्थानीय संगठनों की राय उतनी ही क्षीण होती जायगी। इसके सिवाय प्रेम और ममता तत्त्वतः व्यक्तिगत संबंध से पैदा होते है, इसलिए पाल के अर्थ में केवल छोटे संगठनों में ही उदारता अपने को आसानी से जाहिर कर सकती है। यह कहना अनावश्यक है कि किसी संगठन के छोटे होने मात्र से ही सदस्यों में आपस में उदारता और करुणा का भाव उत्पन्न हो जाता है, परन्तु इससे उदारता के विकास की संभावना तो होती ही है। बड़े-बड़े संगठनों में जहां कोई किसीको जानता भी नहीं, यह संभावना भी नही रहती और इसका यही कारण है कि इसके अधिकांश सदस्य एक दूसरे से व्यक्तिगत संबंध नहीं रख सकते। "जो प्यार नहीं करता, वह ईश्वर को नही जानता, क्योंकि ईश्वर ही प्रेम है।" करुणा एकदम आध्यात्मिकता का साध्य और साधन दोनों है। ऐसा सामाजिक संगठन जिसमें मानवीय कार्यों के अधिकांश क्षेत्र में करुणा की अभिव्यक्ति ही असंभव हो, स्पष्ट रूप से एक बुरा संगठन है।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ राजनैतिक विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है। व्यक्ति, परिवार, और छोटे-छोटे सहयोगी संगठनों के पास अपनी जमीन और औजार अपने लिए और पास के बाज़ार की पूर्त्ति के लिए होने चाहिएं। उत्पादन के इन आवश्यक औजारों में गांधीजी केवल हाथ-औजारों को ही

शामिल करना चाहते थे। दूसरे विकेन्द्रीकरणवादी विद्युत-चालित यंत्रों के प्रयोग का विरोध नहीं करते—मैं स्वयं इसी विचार का हूँ, बशर्ते कि इसका संचालन इस तरह से हो कि यह व्यक्ति और छोटे-छोटे संगठनों से मेल खाये। इन विद्युत-चालित मशीनों को बड़े पैमाने पर बनाने के लिए वास्तव में विशेष प्रकार के अच्छे कल-कारखानों की आवश्यकता होगी। प्रत्येक व्यक्ति और छोटे संगठनों को अधिक उत्पादक यंत्र मुहय्या हो सकें, इसके लिए शायद कुल उत्पादन का एक तिहाई इन कारखानों में पूरा करना पड़ेगा। विकेन्द्रीकरण से यांत्रिक चातुर्य का सामंजस्य हो, इस खयाल से यह कोई ज्यादा कीमत नहीं है। जरूरत से ज्यादा यांत्रिक कुशलता स्वतंत्रता का शत्रु है, क्योंकि इससे अधीनता को प्रोत्साहन मिलता है और आन्तरिक स्फूर्ति की हानि होती है। साथ ही बहुत कम यांत्रिक कुशलता भी स्वाधीनता की शत्रु है; क्योंकि इसका नतीजा हमेशा स्थायी गरीबी और क्रान्ति होता है। इन दो छोरों के बीच में एक सुखदाई मध्यम रास्ता है—यह एक ऐसा समझौता है जहां हम आधुनिकतम शैल्पिक सुविधाओं का आनन्द सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कीमत पर ही उठा सकते हैं और यह कीमत भी बहुत ज्यादा नहीं होगी।

यह बात स्मरण करते बड़ी खुशी होती है कि यदि पश्चिमी लोकतंत्र के देवदूत जेफरसन के मन की चलती तो अमरीका आज केवल ४८ राज्यों का नहीं, वरन् हजारों स्व-शासन संपन्न इकाइयों का एक संघ होता। अपनी लम्बी जिन्दगी के अन्तिम दिनों में जेफरसन ने अपने देशवासियों को इस सीमा तक अपनी सरकारों के विकेन्द्रीकरण करने के लिए समझाया था। जैसाकि केटो अपने प्रत्येक भाषण के अन्त में कहा करता था, "कारथागो डीलेन्डा ईस्ट (कारथेगों को पूरी तरह खत्म कर दो)," उसी प्रकार मै अपनी प्रत्येक राय को इस आदेश से खत्म करता हूं, "जिलों को ताल्लुकों में बांट दीजिये।" प्रोफेसर जॉन ड्यूई के शब्दों में उनका उद्देश्य "ताल्लुकों को छोटी-छोटी रिपब्लिक (गणतंत्र) बनाने का था, जिनके ऊपर एक वार्डन रहे। अपनी निगाह के नीचे सारे विषयों को वे लोग बड़े राज्यों के गण-राज्यों से अधिक अच्छी तरह चला सकते हैं। संक्षेप में सिविल और सैनिक सभी सरकारी मामलों में वे सीधे तौर से अपनी राय और निर्णय का प्रयोग कर सकते हैं। इसके सिवाय जब कोई व्यापक और अहम मसला निर्णय के लिए आये तो सभी ताल्लुकों या मुहल्लों को उसी दिन बैठक के लिए बुलाया जा सकता है, जिससे कि वहींपर लोगों की सामूहिक राय की अभिव्यक्ति हो सके।" इस योजना

को कार्यान्वित नहीं किया गया। लेकिन जेफरसन के राजनीति-दर्शन का यह तत्त्वपूर्ण अंग था। उसके राजनैतिक दर्शन का यह इसलिए महत्त्वपूर्ण भाग था, कि महात्मा गांधी के समान उसका दर्शन भी नीतिशास्त्र-संबंधी और धार्मिक था। उसकी राय से सभी मानव समान पैदा हुए हैं, क्योंकि वे सभी ईश्वर के पुत्र हैं। ईश्वर के पुत्र होने के नाते उनके कुछ कर्त्तव्य और कुछ अधिकार हैं—और इन अधिकार और कर्त्तव्यों का व्यवहार प्रभावपूर्ण ढंग से केवल स्वायत्त सत्ता-संपन्न जातंत्री धर्म राज्यों में ही हो सकता है, जोकि ताल्लुके से राज्य और राज्य से संघ में बढ़ते हुए चले जायं।

प्रो० ड्यूई ने लिखा है, "जो शब्द काम में आ चुके हैं उनके पीछे अन्य दिवस दूसरे शब्द और दूसरी रायें लाकर खड़ी करते हैं। सभी राजनैतिक व्यवस्थाओं के निर्णय की नैतिक कसौटी की जिन शर्तों में जेफरसन ने अपने विश्वास को प्रकट किया है और जिस शर्त के द्वारा गणतंत्री संस्थाओं की न्याय-संगति में उन्होंने विश्वास प्रकट किया है, वे शर्तें आज चलन में नहीं हैं। फिर भी यह संदिग्ध है कि क्या होने वाले उन आक्रमणों के विरुद्ध लोकतंत्र की सुरक्षा उस स्थिति पर निर्भर करती है जिसे जेफरसन ने अपने नैतिक आधार और उद्देश्य की दृष्टि से स्वीकार किया है, चाहे हमें लोकतंत्र द्वारा व्यवहृत नैतिक आदर्श को सूत्ररूप देने के लिए दूसरे शब्द खोजने पड़ें।

"साधारण मानव-स्वभाव में, आम तौर से उसकी संभाव्यताओं में और विशेष रूप से उसकी शक्ति में फिर से भरोसा कायम करना, और तर्क एवं सत्य का अनुकरण करना सर्वसत्तावाद के विरुद्ध भौतिक सफलता अथवा विशेष कानूनी और राजनैतिक स्वरूपों की गहरी पूजा के प्रदर्शन की अपेक्षा अधिक मजबूत घेरा-बन्दी है।"

गांधीजी ने जेफरसन के समान राजनीति को नैतिक एवं धार्मिक रूप में ही सोचा था और इसीलिए उनके प्रस्तावित-हल उस महान् अमरीकी द्वारा प्रस्तावित-हलों से इतना मेल खाते हैं। किन्हीं बातों में वे जेफरसन से भी आगे बढ़ गये थे—उदाहरण के लिए, आर्थिक और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण और मुहल्लों में "आरंभिक सैनिक शिक्षण" के स्थान पर सत्याग्रह के प्रयोग के समर्थन में—परन्तु इसका कारण यह था कि जेफरसन की अपेक्षा गांधीजी का आचार-शास्त्र अधिक तर्कपूर्ण और धर्म पूरा यथार्थवादी था। जेफरसन की योजना अमल में

नहीं लाई गई, और न गांधीजी की। और यह हमारे एवं हमारी संतानों के लिए बड़े दुर्भाग्य की बात है।

: ११ :

गांधीजी की देन

किंग्स्ले मार्टिन

सन् १९३१ में मैंने पहले-पहल महात्माजी को 'गोलमेज़-कान्फ्रेंस' के समय देखा था। उसी समय मेरे मन में यह प्रश्न उठा था कि वे कहांतक संत हैं और कहांतक एक कुशल राजनीतिज्ञ। बाद में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रश्न का उत्तर दिया ही नही जा सकता है, क्योंकि दोनों प्रश्न बड़े पेचीदा ढंग से मिल कर एक-रूप हो गये है। हिन्दुस्तान में संत राजनीतिज्ञ हो सकते हैं, जिस तरह से कि वे मध्यकालीन यूरोप में हो सकते थे। धर्म-ग्रन्थों का संत भाष्यकार व्यापक धर्म-प्रधान समाज में अपने लिए एक स्थान बना सकता है, जिसकी कि यंत्रवादी और नास्तिक यूरोप में कम संभावना है। गांधीजी हिन्दुस्तान के कोने-कोने में मिलने वाले दिगम्बर साधुओं से सर्वदा भिन्न है; क्योंकि उनकी धार्मिक प्रेरणा, वकील की शिक्षा, पाश्चात्य पुस्तकों के व्यापक अध्ययन, विश्व-ज्ञान एवं उनको कुशाग्र बुद्धि के कठोर परीक्षण के बाद भी जीवित रही है। अपनी तर्क-पद्धति के द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों का अनवरत परीक्षण और व्यवहार ही गांधीजी की ऐसी विशेषता है, जिसने मुझे सबसे अधिक वशीभूत किया है।

महात्माजी ने अपनी विचार-पद्धति अथवा किसी निर्णय पर पहुंचने के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को कभी गुप्त नहीं रखा। व्यक्तिगत बातचीत तक में वे हमेशा दलील करने को तैयार रहते थे और हँसते-हँसते अपनी अनियमितताओं तक को स्वीकार कर लेते थे। दूसरे पत्रों से भिन्न 'हरिजन' में वे सदा सत्य को खोजने के प्रयत्न के साथ-साथ अपने आन्तरिक संघर्ष को भी प्रकाश में लाते थे। मेरा खयाल है कि वे इस बात को अवश्य मान लेते कि उनका राजनैतिक स्थान हमेशा सन्तोषजनक नहीं होता था, विशेषकर १९४२ के कठिन समय में अपनी गिरफ्तारी से पूर्व, जबकि उन्हें अपने पुराने साथी श्री राजगोपालाचार्य से अलग होना पड़ा था, और जब उन्हें स्वयं यह भरोसा नहीं था कि संभाव्य

जापानी आक्रमण के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध में अपने अनुयायियों को वे कितनी दूर तक साथ ले जा सकते हैं। अपने ऐसे भोले-भाले अनुयायियों पर उनका क्रोधित होना भी ठीक था, जो यह समझते थे कि एक बार अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने मात्र से सब कुछ आसान हो जायगा। वे घुमा-फिरा कर हमेशा उनसे यह कहा करते थे कि उन्हें कोई समस्या आसान प्रतीत नही होती। सिद्धान्त बिल्कुल स्पष्ट था; परन्तु सामाजिक और राजनैतिक गुत्थियों के सुलझाने में इस सिद्धान्त का व्यवहार एक बड़ा दिमागी काम था।

आप यह भरोसा रखिये कि महात्माजी को धोखा नहीं दिया जा सकता था। आक्सफोर्ड के 'नैतिक शस्त्रीकरण' के प्रवर्तक दलों के भीतर की बात को, जब वे लोग महात्माजी से मिलने आये, समझते उन्हें देर नहीं लगी। अपने 'हरिजन' के अंक में उनकी बातों का उत्तर देते हुए गांधीजी ने लिखा था कि ईश्वरी संदेश को सुनने के लिए 'सुनने की योग्यता' भी चाहिए। यह कहना किसीके लिए कितना आसान है कि वह ईश्वर की बात सुन रहा है! अंग्रेजी साम्राज्यवादियों का उनसे यह कहने का क्या मतलब था कि हिन्दुस्तान को पश्चात्ताप करना चाहिए? "जबतक साहूकार या ऋणदाता कर्ज देता नही या अपने को पवित्र नहीं करता तबतक कर्जदार के यह कहने का क्या मतलब कि वह कर्ज अदा नहीं करेगा।" और इसपर उन्होंने एक बड़ी तेज चुटकी ली, जो टाल्स्टाय की याद दिलाने वाली और जो उनके वैराग्य को समझने के खयाल से बड़ी महत्वपूर्ण थी। "शांति और जीवन का ऊंचा स्तर दोनों बातें असंगत है।" यदि इन्सान अपने को दौलत से लाद लेता है तो बिना पुलिस के काम चलाना उसके लिए कठिन है। इसी नियम के आधीन साम्राज्य के लिए सेना और युद्ध अनिवार्य हैं।

गांधीजी के उपवास अंग्रेजों की समझ से परे थे। ये उपवास भारतीय परंपरा के अंग हैं। गांधीजी स्वयं कहा करते थे कि उपवास का विचार उनमें मां के दूध के साथ आया है। अपनी किसी संतान की बीमारी पर वे स्वयं उपवास का सहारा लेती थीं। गांधीजी के उपवासों की कीमत उनके धार्मिक असर में थी। ये उपवास किसीपर दबाव डालने के साधन नहीं थे। उपवास का प्रथम उद्देश्य आत्म-शुद्धि था। सरकार को परेशान करना अथवा जिनके खिलाफ उपवास किया जाता था, उनपर असर डालना बिल्कुल गौण था। उन्होंने यह भी कहा था कि वे दुश्मनों के खिलाफ उपवास कभी नहीं करते; "जिनका मुझपर प्रेम है, उन्हें काम की दिशा में बढ़ाना," ऐसी उनकी आशा थी। लेकिन वे कहते थे कि उन्हें स्वयं यह पता नहीं

कि ये उपवास किस तरह असर करते हैं। उन्हें अनुभव से सिर्फ यह पता था कि वे असर करते हैं। किसीका ऐसा कहना कि ये उपवास उस सत्य को स्पष्ट करने के खयाल से किये जाते थे, जिसके लिए वे जान की बाजी लगाने को तैयार होते थे, जिससे कि उन लोगों को फिर से अपनी स्थिति पर गौर करने और अपनी गलतियों पर विचार करने के लिए विवश किया जा सके--मेरा खयाल है कि ऐसा सोचना विषय को जरूरत से ज्यादा सरल बनाना होगा। बलिदान के विचार से आमरण अनशन का वही महत्त्व है, जो फांसी पर मरने का। और फिर भी, गांधीजी के अद्वितीय जीवन के द्वारा उठाई गई अन्य समस्याओं के समान, कभी-कभी उनके धार्मिक कार्य और अति प्रभावशाली संसारी दबाव के बीच भेद कर सकना बड़ा कठिन था। गांधीजी इस बात को नहीं मानते थे कि वे कभी दबाव डालने के ख़याल से ऐसा करते थे। श्री अम्बेडकर और हरिजनों को समझाने के खयाल से किये गए उनके उपवास का इतना तीव्र प्रभाव मेरे विचार से इसलिए हुआ था कि लोग यह जानते थे कि यदि गांधीजी की मृत्यु हो गई तो इसका परिणाम अपनी जिद्द पर अड़े रहने वाले व्यक्तियों के लिए बहुत बुरा होगा। लेकिन स्वयं गांधीजी ने अपनी सफलता की इस व्याख्या का विरोध किया था। उनका यह कहना था कि ऐसा करने में उनका मंशा विरोधियों पर दबाव डालना नहीं, "वरन् उन हजारों लोगों को ज्यादा काम करने के लिए प्रेरित करना था, जिन्होंने अस्पृश्यतानिवारण की प्रतिज्ञा की थी।"

बंगाल में होने वाले साम्प्रदायिक दंगे को खत्म करने वाला गांधीजी का उपवास उनकी अपूर्व विजय का सूचक है। ठीक उसी समय मै पूर्व में पहुँचा था, जबकि दिल्ली में मुसलमानों के खिलाफ चलने वाली हिंदुओं की हिंसा को खत्म करने के उद्देश्य से किया गया गांधीजी का उपवास खत्म हो चुका था। यह वह उपवास था, जो कि लगभग मृत्यु में समाप्त हुआ था, और महात्माजी ने इसे उस समय तोड़ा था जबकि अधिकार-संपन्न सभी लोगों की ओर से उन्हें भरोसा दिलाया गया था कि दिल्ली में मुसलमानों की जान-माल की रक्षा के लिए सभी कुछ किया जायगा। यह कहना बिल्कुल गलत है कि इससे पटेल एवं दूसरे अधिकारी पाकिस्तान को ५० करोड़ रुपये देने के लिए बाध्य किये गए थे। इस उपवास के बाद, मुसलमान दिल्ली की सड़कों पर, कम-से-कम दिन में, अपनी पीठ में सिक्खों की तलवार के घुसने के डर के बिना घूम सकते थे। उसी समय महरौली में होने वाले मुस्लिम मेले में मैं स्वयं मौजूद था जोकि बिना गांधीजी की इस शर्त के कभी नहीं हो सकता था

कि महरौली के मेले की रक्षा और व्यवस्था का भार सरकार ले। उपवास तोड़ने की शर्तों में एक शर्त उनकी यह भी थी। गांधीजी को अन्तिम बार जीवित अवस्था में मैंने महरौली में होने वाली प्रार्थना-सभा में देखा था, जिसमें कि लगभग चार हजार उत्सुक और परेशान मुसलमानों ने भाग लिया था।

गांधीजी एक राजनीतिज्ञ थे। अपने उपवासों में वे मरना नहीं चाहते थे, और राजनैतिक स्थिति पर भली प्रकार विचार करने के बाद ही वे इसके औचित्य का निर्णय करते थे। महात्माजी के सभी कामों को देखकर मुझे सचमुच बर्नार्ड-शा के, 'सेंट-जोन' नामक नाटक के एक अंश की याद आती है, जहां ड्यूनो नामक उसका एक साथी सेनापति उससे यह कहता है कि वह उसे 'बिल्कुल सनकी' समझता यदि वह स्वयं यह न देख लेता कि अपने कामों के पक्ष में दी गई उस (सेंट-जोन) की दलीलें बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण होती हैं, हालांकि उसने दूसरे लोगों से उसे यही कहते सुना था कि वह (सेंट-जोन) सेंट केथेराइन की वाणी का हुकुम मानती है। इसके उत्तर में सेंट जोन यह कहती, "दैवी आदेश पहले होता है, उसके पक्ष में तर्क बाद में खोजा जाता है।" बिल्कुल यही बात गांधीजी पर लागू होती है। यह धार्मिक व्यक्ति अपनी अन्तर्प्रेरणा पर भरोसा करता था, परन्तु वे केवल उन्हीं प्रेरणाओं पर अमल करते थे, जो उनकी तर्क की कसौटी पर खरी उतरती थीं। उदाहरण के लिए 'मौन-दिन' का उनका खयाल कितना अच्छा है! लंदन के लिए न सही, दिल्ली के दूसरे राजनीतिज्ञों के लिए भी यह साप्ताहिक 'मौन-दिन' कितना उपयोगी हो सकता है? पश्चिमी राजनीतिज्ञों की अपेक्षा हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञ हमेशा ऐसे लोगों की भीड़ से घिरे रहते है, जो यह समझते है कि उनतक हर समय उसकी पहुँच होनी ही चाहिए। ये लोग यह मानते है कि किसी नेता के घर में प्रवेश करने का उनका अधिकार है। यहां के लोग ऐसा समझते हैं कि उनकी शिकायतें सुनना; उनकी पत्नियों और परिवार से भेंट करना, और राज्य के मामलों पर उनसे चर्चा करना उसका कर्त्तव्य है। हिन्दुस्तानी नेताओं के ऊपर इन बातों का बहुत बड़ा बोझ रहता है। वह पहले से ही शासन-संबंधी मामलों, भाषणों एवं दलीय राजनीति से घिरे रहते है। इस मौन-दिन का यह अर्थ था कि कम-से-कम एक दिन गांधीजी इस अनधिकार प्रवेश के आक्रमण से बचे रहें। इस दिन वे खूब सोच सकते थे। गंभीर कार्यों के निर्णय के लिए वे अपने दिमाग को तैयार करते थे। इसी तरह चर्खे के समर्थन में दी जाने वाली उनकी दलील को बहुत-से लोगों ने गलत समझा था। ये लोग ऐसा समझते थे कि हिन्दुस्तान की औद्योगिक उन्नति में रुकावट डालने वाला यह एक

अव्यावहारिक सुझाव है। निःसंदेह कोटि-कोटि लोगों की ओर से उस यंत्र-युग के विरुद्ध महात्माजी का यह एक प्रतीक था, जिसकी चोट से दुनिया के बड़े देशों में केवल हिन्दुस्तान ही बचा था। इसे हमेशा बचाए रखने की गांधीजी की इच्छा थी। परन्तु गांधीजी हमेशा चर्खे को एक तात्कालिक व्यावहारिक महत्व भी देते थे। वे यह भली प्रकार जानते थे कि यदि हिन्दुस्तानी ग्रामीण विदेश से आए सूती माल को खरीदने के लिए विवश नहीं है तो राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उसे ज्यादा आज़ादी मिल सकेगी। दूसरी बात यह थी कि पश्चिमी देशों के राजनीतिज्ञों की अपेक्षा हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञ को थका डालने वाली यात्राओं में अपनी बहुत-सी शक्ति बरबाद करनी पड़ती है। ये लम्बे सफर हिन्दुस्तानी नेता की नस-नस को थका डालने वाले और उसकी पाचन-शक्ति को बिगाड़ने वाले होते हैं। हारों से लदे जब यह नेता स्टेशन पर उतरते है, तो उन्हें बड़ी दावतों में ले जाया जाता है और इसके बाद उनसे लम्बे व्याख्यान की आशा की जाती है। गांधीजी के एक मित्र ने, जो इस प्रकार की ज़िन्दगी बहुत भुगत चुके थे, एक बार मुझसे गांधीजी की इस स्वस्थ और व्यावहारिक बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की थी, जिसके कारण उन्होंने अपने-को केवल पांच सीधे-सादे पदार्थो तक ही सीमित रख छोड़ा था। लोग जानते थे कि महात्मा होने के कारण वे हलुआ अथवा ऐसे ही दूसरे स्वादपूर्ण भोजन नहीं करेंगे, इसलिए महात्माजी के इन दावतों में शरीक न होने से लोग नाराज़ नहीं होते थे, बल्कि इसके विपरीत इस साधुता के कारण वे अपनेको हमेशा अधिक चुस्त और योग्य रख सकते थे, जबकि उनके दूसरे साथी सुस्त और स्थूल होते जाते थे। मेरा खयाल है कि महात्माजी स्वयं अपने बहुत-से कार्यो के लिए दिये गए इन कारणों में से कुछ को स्वीकार कर लेते। मुझे यह संदेह है कि वे स्वयं भी राजनैतिक बुद्धि की सूक्ष्मता और धार्मिक प्रेरणा के इस पेचीदे संबंध को क्या सुलझा सकते थे?

उनकी हत्या से पूर्व सोमवार को गांधीजी से मेरी अंतिम बातचीत हुई थी। इस समय तक उनके उपवास की कमजोरी करीब-करीब दूर हो चुकी थी। उनका दिमाग अब उतना ही तेज़ था, जितना पहली भेंट के समय मैंने पाया था इस समय उनकी दलीलों में अधिकार का स्वर अधिक था, कानून का कम। हमेशा की तरह अपने सिद्धान्त की समुचित व्याख्या करने को वे तैयार थे। ब्रिटिश-नियंत्रण के खत्म होने के बाद हिन्दुस्तानी दिमाग की इस तरह की अभिव्यक्ति पर उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपनी निराशा और आत्मिक क्षोभ को प्रकट किया था। मैंने उनसे यह भी पूछा कि 'हरिजन' के अंकों में प्रकाशित अपनी असफलता की आत्म-

स्वीकृति क्या उनके अहिंसा-सिद्धान्त में किसी परिवर्तन की सूचक है ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि उनका यह सिद्धान्त कभी नहीं बदला। "बडे दु:ख के साथ मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अंग्रेजों को हटाने के उद्देश्य से प्रयोग में लाई जाने वाली 'सविनय-अवज्ञा' केवल कमजोर के हथियार के रूप में ही व्यवहार में आई, अहिंसा के शुद्ध रूप में नहीं, जो सत्य, प्रेम और बलिदान पर ही निर्भर करती है।" उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि यह फर्क दक्षिण-अफ्रीका के अपने सत्याग्रह के समय ही पहले-पहल उनके ध्यान में आया और तभी "निष्क्रिय-प्रतिरोध" का समर्थन करने वाले अपने विचार को उन्होंने छोड़ दिया था। उन्होंने निष्क्रियता पर कभी विश्वास नहीं किया, और न आज जिसे 'खुश करना' कहा जाता है, उसपर उनका कभी भरोसा रहा। मानव-मात्र के लिए उनकी पहली शिक्षा यह थी कि उसे सर्वप्रथम सत्य का पता लगाना चाहिए और इसके बाद अपने उद्देश्य की शुद्धि करनी चाहिए। इस तरह के प्रतिरोध द्वारा यदि कोई व्यक्ति अपनेको सत्याग्रह की पद्धति में सिद्ध-हस्त कर लेता है तो वह निश्चय ही सत्य और अहिंसा के सिद्धांत पर अटल रहेगा। कई बार उन्होंने दुनिया को यह कहकर आश्चर्य में डाल दिया कि जो पूर्ण अहिंसा के लिए तैयार नही हैं, उनके लिए बुराई के सामने कायरतापूर्वक सिर झुका देने की अपेक्षा हिंसक तरीके से उसका प्रतिरोध करना ज्यादा अच्छा है।

बाह्य रूप से अहिंसा सफल है या नहीं, यह प्रश्न इस बात पर निर्भर करता है कि विरोधी के भीतर कोई विवेक नाम की चीज है या नहीं। मैंने 'हरिजन' में यह पढ़ा था, "हमारी विजय बिना अपराध या गलती किये जेल में रहने पर निर्भर है।" अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में क्लेश या पीड़ा को जीवन का एक अंग बनाना पड़ा था। हिंसक प्रतिरोध के अभाव में "अपराधी अपराध करने से स्वयं तंग आ जाता है", इसपर जब बर्नाड-शा ने टीका करते हुए कहा, "भेड़ का शाकाहारी होना शेर पर कोई असर नहीं डालता", तो गांधीजी ने यह जवाब दिया था कि वे यह नही मानते कि "अंग्रेज बिल्कुल शेर हैं, इन्सान नही।" नाज़ी लोगों के समान मामलों में अहिंसा के प्रयोग की कठिनाई को स्वीकार करने के लिए वे तैयार थे, क्योंकि उन्हें दूसरे की पीड़ा में मज़ा लेने की शिक्षा दी गई थी—जिन्होंने ६० लाख मासूम यहूदियों को तलवार के घाट उतार दिया था। परन्तु उनका यह दावा बिल्कुल सच था कि अंग्रेजों के विरुद्ध दुर्बल की अहिसा का भी असर पड़ेगा, क्योंकि नि:शस्त्र प्रतिरोधकों पर लाठी बरसाना उन्हें अच्छा नहीं लगता। वास्तव में यह बात सभी अंग्रेज अधिकारी स्वीकार करते हैं कि यदि निष्क्रिय-प्रतिरोध की पद्धति हिन्दुस्तानियों

द्वारा लगातार आग्रहपूर्वक अमल में लाई जाती तो अंग्रेज लोग हिन्दुस्तान से बहुत पहले ही चले जाते, लेकिन, महात्माजी ने यह अनुभव किया कि यह सचमुच अहिंसा नहीं है। निष्क्रिय-प्रतिरोध एक ऐसा शस्त्र है, जिसका व्यवहार प्रभावपूर्ण ढंग से उन लोगों के द्वारा किया जा सकता है, जिनके पास हथियार नहीं हैं, लेकिन अहिंसा एक ऐसा आत्मिक प्रयत्न है, जो उन लोगों के द्वारा अधिक सफलतापूर्वक व्यवहार में लाया जा सकता है जो यदि चाहते तो जुल्म करने वाले को हथियार के बल से जुल्म करने से रोक सकते थे। संक्षेप में, अहिंसा में सर्वप्रथम उद्देश्य की शुद्धि और सत्य में पूर्ण विश्वास आवश्यक है ; विरोधी को वे सभी उचित रिआयतें देने के बाद भी, जो देनी चाहिए थीं, जहां विरोधी साफ गलती पर हो, वहां सिद्धान्त की बात पर दृढ़ रहना अहिसा की दूसरी शर्त है। विजय प्रेम द्वारा ही प्राप्त होनी चाहिए, चाहे अहिसा का प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने शत्रु का हृदय-परिवर्तन करने से पहले ही मर जाय। महात्माजी यह स्वीकार करते थे कि इस सिद्धान्त को आम तौर पर अंग्रेजों के खिलाफ निष्क्रिय-प्रतिरोध करने वाले लोगों तक ने भली प्रकार नहीं समझा था।

इसपर गांधीजी के दर्शन की एक महत्वपूर्ण कमी की ओर मैंने संकेत किया, जिसे मैं हमेशा से अनुभव करता रहा हूं। मैंने कहा कि अपने बचपन में मैंने ईसा की शिक्षाओं को पढा था और तब जैसा कुछ समझा था उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि ईसा के उपदेश से यह बहुत भिन्न नहीं है और इस कारण उसके महत्व को पूरी तरह स्वीकार करते हुए भी मुझे ऐसा लगता है कि परिपक्वता की पूर्ण दशा में शासन-सूत्र चलाने वाले लोगों के लिए इसके पास कोई उचित उत्तर नही है। मैं यह अच्छी तरह देख सकता हूं कि अहिंसा एक आक्रमणकारी शक्ति को पराजित कर सकती है, परन्तु जब उन्ही विजयी लोगों के सामने हुकूमत का सवाल आता है तो वे स्वयं ऐसी मशीन से काम लेते हैं जो स्वभावतः बल और जोर पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए काश्मीर के तात्कालिक मसले में महात्माजी अहिंसा का प्रयोग किस प्रकार करेंगे ? इसपर उन्होंने यह उत्तर दिया था कि सरकार के लिए अहिंसा का प्रयोग संभव है, और इस सम्बन्ध में टालसटाय द्वारा लिखित 'मूरखराज' की कहानी सुनाई। उन्होंने यह कहा कि शेख अब्दुल्ला काश्मीर में अहिंसा का प्रयोग कर सकते थे, यदि स्वयं उनका अहिसा में विश्वास होता। उन्होंने यह भी कहा, "मैं कबाइलियों के विरुद्ध सफलतापूर्वक अहिंसा का इस्तेमाल कर सकता हूँ। लेकिन शेख अब्दुल्ला का अहिंसा में भरोसा नहीं है।" इसपर मैंने पूछा, "क्या आप ऐसे

राजनैतिक मामलों में, जहां अहिंसा का प्रश्न ही नहीं उठता, व्यावहारिक सलाह नहीं देते ?" वे हँसे और कहा, "जरूर देता हूँ।" और इसके बाद काश्मीर के मसले को लेकर हमारी बातचीत ने ऊँचे यथार्थवादी और व्यावहारिक वाद-विवाद का रूप ले लिया।

महात्माजी की यह अपनी विशेषता थी। राजनैतिक मसलों पर बातचीत करते समय वे साधारण समझौते का रास्ता कभी नही अपनाते थे ; क्योंकि वे इस क्षेत्र में सिद्धांत को हमेशा अपने असली रूप में ही अपनाने के पक्षपाती थे। सिद्धान्त के प्रश्न पर वे उस समय तक ऊपरी तौर से खामोश रहते थे, जबतक कि उन्हें या तो अपने विरोधी की स्वेच्छा का भरोसा न हो जाय—जैसा कि केबिनेट-मिशन द्वारा उनके मन पर अपनी सच्चाई की छाप डाल देने के बाद हुआ था—या काश्मीर के मसले में, जहां उन्होंने समझौता न होने तक आदर्श सुझाव के सवाल को कुछ समय तक उठाना ही उचित नहीं समझा था। इसके बाद वे एकाएक, और प्रायः पश्चिमी-निवासी को आश्चर्य में डालते हुए, सिद्धान्तों को व्यावहारिक दृष्टि से समझौते के लिए रखते हुए दिखलाई देते और तब बातचीत पूरी तरह यथार्थवादी तर्क में बदल जाती, जहां थोड़ी देर के लिए ऐसा लगता, मानो सिद्धान्त को बिल्कुल भुला दिया गया हो। शायद इस बात को इस तरह से ठीक कहा जा सकता है कि दूसरे लोगों की अपेक्षा प्रत्येक समस्या के दोनों पक्षों पर विचार करने का वे आग्रह रखते थे। यदि व्यावहारिक दृष्टि से रास्ता बन्द होता तो वे अपने पाल को फिर से सँभाल लेते और इसका नतीजा यह होता कि आदर्श को खोजने का बहाना करते हुए भी उन्हें ऐसा लगता कि मानों उनका उद्देश्य उनकी निगाह से ओझल हो गया हो। ऐसी अवस्था में अपने उद्देश्य तक यदि वे सीधे नही पहुँच सकते थे, तो व्यावहारिक राजनीति के निचले स्तर को स्वीकार कर लेते थे और औचित्य के आधार पर बड़ी सफाई के साथ अपनी राय देते थे। इस तरह रास्ता बदलने से वे अपने व्यवहार को भूल नहीं जाते थे और इसलिए वे पुनः सच्चे रास्ते पर हमेशा बढ़ सकते थे।

महात्माजी की हत्या के नाटकीय दिनों के बाद दो बातें मेरे दिमाग में एकदम पैदा हुईं। पहली बात थी दूसरे भारतीय नेताओं की उनकी सलाह और मशविरा पर निर्भरता। उनकी प्रतिष्ठा इतनी महान् थी, उनका स्थान इतना ऊंचा था, कि विभिन्न विचार के राजनैतिक नेता उन्हें अपना गुरू समझते थे। वे उनपर शायद बहुत भरोसा करते थे। और उनमें से कुछ अब अपनेको बड़ा राजनीतिज्ञ मान सकते हैं,

क्योंकि उनका विश्वासपात्र मंत्री अब उनके बीच में नहीं है। 'राष्ट्रपिता' की हैसियत से उनकी स्थिति की अद्वितीय विशेषता यह थी कि सारे देश में उनकी एक विशेष खुफिया फैली हुई थी। राजा से लेकर रंक तक उनके पास आकर अपने व्यक्तिगत दुखों को उडेल देते थे। राजनीति में इस तरह का दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। सिविल सर्विस का एक छोटे-से-छोटा अधिकारी तक उनसे अपने मंत्री के दुर्व्यवहार की शिकायत कर सकता था और गांधीजी फौरन संबंधित मंत्री से जवाब तलब करते थे, और जो आलोचना के विरुद्ध इसलिए कोई विरोध नही कर सकता था कि वह आलोचना उसकी जानकारी के बिना हुई है अथवा गैर सरकारी ढंग पर हुई है। भारतीय राजनीति मे यह अद्भुत व्यक्तित्व और एक में मिलाने वाला प्रभाव आज ओझल हो गया है। इस क्षति का अंदाज लगाना कठिन है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता उन कारणों में से एक कारण थी, जिसके लिए महात्माजी ने अपने संपूर्ण जीवन को उत्सर्ग कर दिया था। छुआछूत, खद्दर और ग्राम-निर्माण के कार्य में वे अपनेको पहले ही खपा चुके थे। मै यह भी जानता हूँ कि वे असफलता की एक भावना को लेकर मरे। उनके बहुत कम अनुयायी अहिंसा को समझ सके, और उनमें से भी और कम उसके आचरण में दक्ष हो सके। अहिंसा के मंत्र से उन्होंने बहुतों को दीक्षित किया था, मगर अंग्रेजों के जाने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि ये लोग कमजोर का निष्क्रिय प्रतिरोध समझ सके, बलवान् की अहिसा नहीं। गांधीजी यह स्वीकार करते थे कि बिना हिसा के अंग्रेजों का हिन्दुस्तान छोड़ देना एक अपूर्व बात थी। अपने जीवन के अन्तिम सप्ताह में उन्होंने एडगर स्नो से कहा था कि अहिसा केवल व्यक्तिगत आचारशास्त्र का ही विषय नहीं है, वरन् वह एक ऊँचा राजनैतिक साधन भी है—और इस प्रकार दुनिया को उनकी एक देन है। उन्हें यह पता था कि क्रोध और हिंसा की ताकतें नये हिन्दुस्तान में बढ़ रही हैं। उनका कहना था कि अहिंसा को कभी हराया नहीं जा सकता, क्योंकि यह एक मानसिक अवस्था का नाम है, जो स्वयं ही एक जीत है और जो बाहरी सफलता न मिलने पर भी दूसरों के अंदर हमेशा अच्छे आध्यात्मिक परिणाम पैदा कर सकती है। परन्तु साम्प्रदायिक संघर्ष एक तात्कालिक चुनौती थी। दिल्ली के उपवास से ठीक होने के बाद उन्होंने पाकिस्तान जाकर अपने मित्रों से अपील करने की बात सोची थी। उन्हें यह भी पता था कि यह कार्य पूरा करने तक शायद वे जीवित न रहें। उपवास के दिनों में उनपर फेंका गया बम उग्र हिन्दुओं की कट्टरता की एक चेतावनी थी। अपनी हत्या के ठीक एक दिन पहले उन्होंने कहा था कि प्रार्थना-सभा के

बीच उन्हें मारना बहुत आसान है। यह बात सिद्ध हो गई। परन्तु उनकी मृत्यु ने एक उपाख्यान का श्रीगणेश किया है। और आज हिन्दुस्तानियों के दिमाग में गाधीजी स्वर्गीय देवताओं के समूह के बीच खड़े दिखलाई पड़ रहे हैं। उत्सर्ग की रात को गहरी भावना के साथ आकाशवाणी के द्वारा प्रसारित की गई अपनी मार्मिक वाणी में पंडित नेहरू ने सहिष्णुता और अच्छाई की तमाम ताकतों को इस अवसर पर संगठित होने की अपील की थी। किसी प्रकार, थोड़े समय तक महात्माजी की मृत्यु ने उनके उपवास के उपदेशों की पुष्टि की और इससे सांप्रदायिक शांति की आशा अधिक बलवती हुई। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में कुछ भी हो, गांधीजी की 'देन' कभी व्यर्थ नहीं होगी। वास्तव में यह भी एक खतरा है कि उनसे संबंध रखने वाले इस उपाख्यान को ही लोग विकृत कर दें; जब संत मरता है, तब कुछ लोग उसकी स्मृति का इसलिए गुणगान करने लगते हैं, ताकि दुनिया उसकी नसीहतों को आसानी से भूल सके। लेकिन इस दिशा में उन्हें पूरी सफलता नहीं मिलती। ईसाई धर्म के विषय में भी यही हुआ है। जहाँ एक ओर चर्च के आपसी झगड़ों एवं पोपों की घोषणाओं ने ईसा के उसूलों को बहुत विकृत कर दिया है, वहीं दूसरी ओर ईसा की नसीहतें चर्च-सुधार के विरोध के भीतर से सामने आकर उसके शिष्यों को उपदेश और नव-जीवन देती रही हैं। इसी प्रकार गांधीजी की जिन्दगी और मौत इस विश्वास के अमर साक्षी बने रहेंगे कि मानव इतने पर भी बर्बादी, हिसा और क्रूरता पर सत्य और प्रेम के द्वारा विजय पा सकता है।

: १२ :

एक महान् आत्मा की चुनौती

जॉन मिडिलटन मर्रे

मैं नहीं सोचता कि गांधीजी की शिक्षाओं का कोई गंभीर विद्यार्थी इस बात से इन्कार करेगा कि 'हिन्द स्वराज्य' एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। यह विचित्र स्पष्टवादिता और प्रभाव से भरी हुई एक छोटी पुस्तिका है जो प्रकाश और ज्ञान के गहरे अनुभवों का परिणाम प्रतीत होती है, ऐसा प्रकाश जो समान रूप से लगभग सभी महान् धार्मिक शिक्षकों के भाग्य में होता है और विशेष रूप से, पश्चिमी सभ्यता के उस जोरदार खंडन की समानता, उस बातचीत से की जा सकती है, जो रूसो के आत्म-ज्ञान का परिणाम थी। रूसो के नैसर्गिक मानव का स्थान, जिसे "सभ्यता"

भ्रष्ट नहीं कर सकी है, गांधीजी के दिमाग में हिन्दुस्तानी किसान ने लिया है, जोकि रूसो के नैसर्गिक-मानव की अपेक्षा स्वयं एक असलियत है। रूसो का नैसर्गिक-मानव केवल एक विचित्र कल्पना-मात्र है। वह एक आदर्श या मॉडेल का मानसिक प्रतीक है। परन्तु गांधीजी का आदर्श मानव ऐसा ठोस व्यक्ति है, जो आज तक सभ्यता से भ्रष्ट नही हुआ है और जिसका अपना पार्थिव अस्तित्व भी है। ऐसे लाखों लोग भारत के गांवों में निवास कर रहे हैं, जिनका सांप्रदायिक भाईचारे, कमखर्ची और आडम्बर-शून्य कर्तव्य-निष्ठा का जीवन है---ऐसा कर्त्तव्य जिसकी जड़ें अचल धार्मिक विश्वास में गहरी जमी है---इन लोगों के लिए बुद्धि-प्रधान हिन्दुस्तानियों द्वारा किया जाने वाला पश्चिमीकरण न तो कोई अर्थ रखता था और न वे उसके कभी नजदीक ही आए थे। 'हिन्द स्वराज्य' की गांधीजी की परिभाषा तत्त्वतः इस आत्म-शासनप्रिय महान् जाति द्वारा भ्रष्ट पश्चिमी सभ्यताप्रिय लोगों पर आध्यात्मिक पुर्नविजय प्राप्त करना थी। यह विजय पश्चिम का अनुकरण करने वाले लोगों द्वारा स्वयं अपने नये आध्यात्मिक जीवन से, अपने भ्रष्टाचार की आत्म-स्वीकृति से, एवं भारत की ग्रामीण सभ्यता में अपनेको नम्रतापूर्वक मिला देने से ही प्राप्त हो सकती है। गाधीजी का कहना था, "सभ्यता आचार की उस पद्धति का नाम है, जो व्यक्ति को उसके कर्त्तव्य-मार्ग का संकेत करती है।" इस मार्ग पर आज भी और विगत शताब्दियों से भारतीय किसान बराबर चलता आया है।

दूसरे शब्दों में गांधीजी ने भारतीय पूर्वजों के जीवन के भीतर छिपी व्यक्त चेतना बन जाने का विचार किया और ऐसे शिक्षित भारतीयों की दूसरी सतह को उसमें शुद्ध करने का निश्चय किया, जो अच्छे या बुरे उद्देश्य से पश्चिमी सभ्यता के मूल्यों के प्रभाव से अपनेको विकृत कर चुके थे। परम्परागत अर्थ-व्यवस्था और प्राचीन ग्रामीण जीवन-प्रणाली में उन्हें आत्म-शक्ति की प्रधानता दिखलाई दी और इसी शक्ति को आध्यात्मिक अनुशासन के रूप में वे प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर प्रयोग करना चाहते थे। साथ ही विदेशी व्यावसायिक सभ्यता से हिन्दुस्तान की मुक्ति का साधन भी इसी शक्ति को मानते थे। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि गांधीजी के दर्शन में इस आत्म-शक्ति का कोई गुप्त स्थान नही था।

हजारों-लाखों लोग अपने अस्तित्व के लिए इस अति क्रियाशील शक्ति के ऊपर निर्भर हैं। इस शक्ति के सामने लाखों परिवारों के छोटे-मोटे संघर्ष अपने-आप समाप्त हो जाते हैं। इतिहास इस तथ्य पर न तो ध्यान देता है और न दे सकता है। इतिहास असल में प्रेम और आत्म-शक्ति के आसानी से काम करने के मार्ग में

आने वाली प्रत्येक बाधा का अनुलेखन करता है। इतिहास प्रकृति के रास्ते की बाधाओं का लेखा रखता है। आत्म-शक्ति के स्वाभाविक होने के कारण वह इतिहास में कोई स्थान नही पाती।

यह एक गंभीर विचार-पूर्ण कथन है, यद्यपि 'प्रकृति' की परिभाषा के विषय में आम कठिनाइयां उठाई जा सकती है, तथापि प्रसंग से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि गांधीजी के लिए 'नैसर्गिक' समाज एक गहरी धार्मिक पर परस्पर निर्भर है, जिसने शताब्दियों से आग्रहपूर्ण दैनिक जीवन को मूर्त्त रूप दिया है। उस स्वरूप का दर्शन गान्धीजी को भारत में विशेष रूप से हुआ। भारतीय सभ्यता पश्चिमी व्यावसायिक या औद्योगिक अस्थिर सभ्यता के विपरीत सदा टिकाऊ रही है।

कभी-कभी, गांधीजी अपने महान् देश के पुनर्दर्शन के नशे में डूबकर 'हिन्द स्वराज्य' के पृष्ठों को इन विचित्र विचारों से भर देते थे। वे आलोचक पाठक को यह कहकर नहीं समझायंगे, जैसेकि––

"इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम यंत्र का आविष्कार करना जानते नहीं थे; परन्तु हमारे पूर्वजों को पता था कि यदि उन्होंने अपना दिमाग इस दिशा में लगाया तो हम इसके गुलाम बन जायंगे और इस प्रकार हम अपनी नैतिक रचना को खो बैठेंगे। इसलिए बहुत विचार-मंथन के बाद उन्होंने यह निश्चय किया कि हमें वही करना चाहिए, जो हम अपने हाथ-पांव से कर सकते हैं।"

यह विचार सचमुच बड़ा काल्पनिक है कि हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष के ऋषियों ने बहुत विचार और चिंतन के पश्चात्, इरादतन और जानबूझकर उस शिल्पकर्म को छोड़ दिया था, जिसे बाद में पश्चिमी यूरोप के लोगों ने खोज निकाला और शोषण का एक साधन बनाया। परन्तु यदि इस कथन की ध्वनि को लें, अक्षरों को नहीं, तो इससे एक सच्चाई प्रकट होती है और वह यह कि हिन्दुस्तान की अति रूढ़िवादी सभ्यता अपनी अनेक भूलों और दोषों के बावजूद एक धार्मिक विवेक पर आश्रित है, जिसने विचारपूर्वक भौतिक वस्तुओं के मुकाबिले आध्यात्मिक तथ्यों को पसंद किया है। इस विषय में भारतीय और पश्चिमी सभ्यता के बीच का भेद बड़ा तीव्र है और ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा का हिंसा की कीमत पर भी लोगों के दिलों में यह बात बिठाना गांधीजी के लिए बिल्कुल न्यायसंगत है। यद्यपि इतिहास की किसी भी अवस्था में भारतवर्ष उस शिल्प-आविष्कार के करने के, अथवा उसे इन्कार करने के योग्य नहीं रहा है, जिसके कि आविष्कार का पूरा श्रेय आज पश्चिम को है। भारतवर्ष ने एक धार्मिक और पारलौकिक मार्ग चुना और इस कारण

शिल्प-विज्ञान के क्षेत्र में बढ़ने के वह अयोग्य रहा। निःसंदेह इस तथ्य के पीछे हिन्दुस्तान और ईसाईयत की सामान्य प्रकृति का गहरा भेद छिपा है, जिसके विवाद में जाना हम यहां पसंद नहीं करते।

'हिन्द स्वराज्य' से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि गांधीजी द्वारा पश्चिमी सभ्यता की अमान्यता बिल्कुल मौलिक है, और यह सोचना पूर्णतया गलत है कि अमली कला और विज्ञान के प्रति उनका विरोध किसी छलपूर्ण मनःस्थिति का सूचक है। वे इस विषय में सदा बहुत गंभीर रहे हैं, क्योंकि यह उनके धार्मिक दर्शन का एक अति अनिवार्य भाग था। उनकी दृष्टि में पश्चिमी सभ्यता आध्यात्मिक सत्य की अमान्यता का और भौतिक वस्तुओं पर चित्त केन्द्रित करने का नतीजा है; जो बड़ा भयंकर है। जब वे दृढ़तापूर्वक यह घोषणा करते है कि "मशीन पाप का प्रतीक है", तो 'पाप' शब्द को अधिक-से-अधिक सख्ती के अर्थ में लेने का उनका मतलब था।

इसलिए, १९वीं शती के यूरोपीय स्वतंत्रता के आदर्श पर चलाये गये राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में गांधीजी का इस गहराई तक पड़ जाना, एक प्रकार का असत्याभास या आत्मविरोध ही है। उस आन्दोलन का नेतृत्व करना उनके लिए न्याय-संगत था, क्योंकि उनके विचार से ब्रिटिश नियंत्रण के हटे बिना भारत अपने स्वाभाविक परम्परागत जीवन में आ नहीं सकता था। आरम्भ में पापपूर्ण पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को बढ़ाने वाली और फैलाने वाली एजेंसी के रूप में ही अंग्रेजों का यहां से भागना आवश्यक था। परन्तु यह मत उन बहुत-से कांग्रेसियों के विचार से सिद्धान्ततः भिन्न था जो पश्चिमी सभ्यता की संपूर्ण परिपाटी को सुरक्षित रखते हुए भी स्वयं अपने घर के स्वामी होना चाहते थे। ये दोनों उद्देश्य अर्थ विपरीत थे और उनका मेल अनिश्चित था। इसी कारण गांधीजी की स्थिति निराली थी। तत्त्वतः वे एक धार्मिक सुधारक और हिन्दुत्व को एक नया रूप देने वाले होते हुए भी क्रांतिकारी हर्गिज नही थे। इसके विपरीत वे एक ऐसी नवीन आध्यात्मिक पूर्णता के शिक्षक थे जो अपने परिचित मार्ग से अलग हो गई थी। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से उनकी स्थिति की असीम शक्ति इस सच्चाई में छिपी थी कि वे भारतीय किसान की नजर में पूरे संत थे। भारतवर्ष की जनता पूरी तरह से पश्चिमी-रंग में डूबी कांग्रेस के पीछे नहीं, उनके पीछे थी। यद्यपि कांग्रेस के भीतर उनके बहुत-से बुद्धिमान् एवं भक्त समर्थकों के विषय में यह सोचना बड़ा अन्यायपूर्ण होगा कि गांधीजी के नेतृत्व में उनका व्यवहार बड़ा उद्धृत या अड़ियल था; क्योंकि वे लोग भी उनके आध्यात्मिक महत्व और हिन्दुस्तानी जनता के प्रति उनके प्रभाव

को स्वीकार करते थे, फिर भी बहुसंख्यक कांग्रेसियों और उनके बीच के उद्देश्य और मूल्यों के मौलिक भेद पर जोर देना आवश्यक है।

अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि गांधीजी के उद्देश्य और मूल्य व्यावहारिक थे अथवा केवल काल्पनिक। एक उदाहरण, जिसको ट्वानबी ने अपनी पुस्तक 'स्टडी ऑव हिस्ट्री' (इतिहास का अध्ययन) में "प्राचीनतावाद" की संज्ञा दी है---अतीत की ओर मुड़ने का वह असंभव प्रयत्न, जिसका कि प्रभाव ट्वानबी के शब्दों में और अधिक क्रांतिकारी होता है। मुझे संदेह है कि कोई भारत-वासी पूर्ण विश्वास के साथ इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। निश्चय ही मेरे लिए भी इस विषय मे कुछ कहना बड़ा उपहासजनक होगा। फिर भी गांधीजी की अन्तिम स्थिति की नाप-तौल करने के विचार से यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि कोई भी उसपर विचार किये बिना नहीं रह सकता।

गान्धीजी देश को जिस रास्ते पर ले जाना चाहते थे, सबसे पहले उसके बारे में हमें स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। अपनी धार्मिक और आर्थिक स्थिति की वजह से पश्चिमी सभ्यता का त्याग करना उनके लिए अति आवश्यक था। ऐसा कहकर उनके विचारों की हँसी उड़ाना होगा कि यदि उनके हाथ में सत्ता आ जाती तो वे हिन्दुस्तान से रेलें खत्म करने और सूती मिलों को बन्द करने का निश्चय किये बैठे थे। यदि उनके सिद्धान्त का शाब्दिक अर्थ करें तो उससे साफ यही ध्वनि निकलती है। परन्तु सर्व प्रथम, उनके सिद्धान्त से यह प्रकट होता है कि उनके उद्देश्य की सीमा में तो सत्ता प्राप्त करना भी नहीं आता। हिटलर या मुसोलनी के विपरीत तानाशाही ताकत हासिल करना उनके स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था; परन्तु उतना ही बेमेल उनके लिए नेहरूजी की वैधानिक राजनैतिक सत्ता भी थी। गांधीजी ने केवल विवेकपूर्ण मानव की शक्ति को पाने का प्रयत्न किया और पाई भी---संत, धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षक जो अपने उदाहरण और शिक्षा से लोगों को वही करना सिखाता है, जो उचित है। वे भौतिक सुखों की ओर दौड़ने को बिल्कुल गलत समझते थे। मितव्ययता और आत्म-संयम को वे ठीक समझते थे और इसलिए उद्योगीकरण द्वारा हिन्दुस्तान के जीवन-स्तर को उठाने की समस्या के विचार को उन्होंने बिल्कुल अस्वीकार कर दिया था। वे समान भाव से पूंजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद के विरोधी थे, क्योंकि साध्य की आध्यात्मिक पुष्टि का उन्हें ऐसे सभी आर्थिक और राजनैतिक संगठनों में अभाव दिखलाई पड़ता था, जिनका उद्देश्य केवल उत्पादन की वृद्धि और भौतिक वस्तुओं का उपभोग मात्र था।

ऐसा नहीं कि हिन्दुस्तान की जनता की भीषण गरीबी की उन्हें चिन्ता नहीं थी। वे यह मानते थे कि जल्दी-से-जल्दी उसके सुधार के लिए कोई व्यावहारिक कदम उठाना चाहिए। परन्तु यह बात बहुत महत्त्व की है कि गांधीजी की दृष्टि में इन्सान की जिन्दगी की वही अवस्था उचित और श्रेष्ठ है, जिसे पश्चिमी स्तर की नजर में घोर और भयंकर गरीबी का नाम दिया जाता है। इस प्रकार गांधीजी का व्यावहारिक उद्देश्य हिन्दुस्तान के किसान को विनाशकारी और असह्य गरीबी के चंगुल से निकाल कर एक सुन्दर, सुखदाई और पवित्र गरीबी की ओर ले जाना था। उनका यह विश्वास था कि प्राचीन काल में किसान की यही अवस्था थी, लेकिन उस उच्च पूर्व संतुलन को ब्रिटिश विजय ने और लंकाशायर के सूती माल ने नष्ट कर दिया था। इसलिए गांवों में कताई और बुनाई के पुनरुद्धार पर उन्होंने अधिक जोर दिया और इसे ही वे ग्राम के सर्वसाधारण की आर्थिक व्यवस्था के सुधार की प्रस्तावना मानते थे।

मुझे ऐसा लगता है कि एक पेशेवर अर्थशास्त्री के लिए, जोकि पूर्णतया विरोध का गुलाम नहीं हुआ है, चर्खा-आन्दोलन की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से इन्कार करना कठिन है। विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से भी भारतवर्ष की सबसे आवश्यक समस्या किसान का साल में अधिक समय तक बेकार रहना है। जलवायु-संबंधी अवस्था और थोड़ी कृषि के कारण, जोकि औसतन तीन एकड़ तक होती है, उसे वर्ष में चार महीने तक बेकार रहना पड़ता है। इसलिए थोड़ी पूंजी से चलने वाले किसी उद्योग-धंधे की आज सबसे अधिक जरूरत है। चर्खे से सूत की कताई इस आवश्यकता की पूर्त्ति करती है। यद्यपि पैसे के विचार से मशीन द्वारा तैयार किये गए सूत से इसके सूत की कीमत ज्यादा पड़ती है, फिर भी कम काम पाने वाले किसान के लिए बेकार समय में अपने लिए कपड़े बना लेने के खयाल से इस तरीके के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाई जा सकती है। और इसी प्रकार 'इन्सानी घंटों' से तैयार हुई खद्दर और मशीन द्वारा तैयार कपड़े की लागत मूल्य की तुलना करना असंगत है। गाँवों में लाखों मनुष्यों के घंटे योंही बरबाद जा रहे हैं। अतः सवाल यह है कि आज उस समय को कम-से-कम उत्पादक तो बनाया जाय।

इस दृष्टि से एक बाहरी आदमी के लिए चर्खे का आन्दोलन पूरी तरह से न्यायसंगत है और इसलिए यह उस प्राथमिकता का अधिकारी है जो गांधीजी ने उसे दी थी। परन्तु हमें इस प्रश्न का उत्तर देना है कि क्या यह एक अल्पसामयिक साधन है, अथवा इसे समाज का स्थायी आधार माना जा सकता है? यद्यपि 'हिन्द

स्वराज्य' के लेखों से यह प्रकट होता है कि गांधीजी ने हिन्दुस्तान के लिए हाथ के श्रम पर आधारित अर्थ-व्यवस्था की ओर पुनः लौटने को एक आध्यात्मिक और नैतिक भलाई माना है, और इसीलिए मशीन और पाश्चात्य विज्ञान के वहिष्कार की बात वे सोच रहे थे, फिर भी यह कहना संदेहयुक्त है कि उन्होंने इस प्रश्न पर पूरी तरह विचार किया या नहीं। उन्होंने सिलाई की मशीन को अपने मशीन-अभियोग आन्दोलन में अपवाद रूप माना था, शायद इसीलिए, क्योंकि वह हाथ या पांव से संचालित होती है और शायद इसलिए भी कि इसका बनना अब अच्छी व्यवस्था के भीतर राष्ट्रीय कारखानों में भी संभव हो सकेगा। इस उदाहरण से हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि गांधीजी शायद ऐसी मशीनों को स्वीकार कर लेते जोकि ग्राम अर्थ-व्यवस्था की विनाशक नहीं, बल्कि उसे मजबूत करने वाली साबित होतीं। अर्थात् उनका चालन विद्युत शक्ति से नहीं होना चाहिए और न उनसे मौजूदा अर्द्ध-बेकारी को और बढ़ावा मिलना चाहिए। इस बात को सिद्धान्त में फैलाना उस समय तक बड़ी कठिन आर्थिक धारणा होगी जबतक कि कोई पूर्ण आत्म-निर्भर ग्राम-समुदाय को स्पष्ट भारतीय सभ्यता की सिद्धान्त रूप से एक अभिन्न और महत्त्वपूर्ण इकाई नहीं मान लेता। ऐसी जाति ही इस सिद्धान्त को संभवतः मूर्त्त रूप दे सकती है, जो जीवित धार्मिक परम्पराओं में निहित नैतिक मूल्य को ही अपना निर्णायक मानती हो। भौतिक जीवन-स्तर को एक सीमा तक ही उठाने की इजाजत मिलनी चाहिए और तभी इससे कुछ अंश में एक मानवीय आनन्द प्राप्त हो सकता है। और तभी सर्वसामान्य में व्यापक रूप से उस उल्लास की प्रतिष्ठा हो सकती है, जिससे कि पाश्चात्य सभ्यता हमेशा के लिए अपना मुह मोड़ चुकी है। इस व्यवस्था में भारत जैसे बड़े-से-बड़े देश तक को चाहे वह एक महाद्वीप के समान ही क्यों न हो, 'एक महान् शक्ति' बनने और उसी तरह की किसी ताकत में उसे आगे नहीं बढ़ने दिया जायगा। हां, आत्मिक शक्ति में वह किसी हद तक बढ़ सकता है।

गांधीजी की भारतीय अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा पूरी तरह से शांतिवादी है। इस प्रकार गांधीजी का शांतिवाद पश्चिमी सभ्यता में विकसित होने वाले शांतिवाद से सर्वथा भिन्न है, विशेष रूप से व्यक्तिगत अर्थ-व्यवस्था के पोषक के रूप में। गांधीजी का शांतिवाद, भौतिक वस्तुओं के प्रति मोह नहीं रखता और इसलिए वह पश्चिमी शांतिवाद की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और सम्मानपूर्ण है। पश्चिमी शांतिवाद भौतिक जीवन-स्तर को कायम रखने और ऊपर उठाने के पक्ष में है और जो भौतिक उद्देश्यों के मुकाबले में आध्यात्मिक उद्देश्यों के परिणाम

से दूर भागने की इच्छा रखता है।

इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि गांधीजी का विचार पश्चिमी सभ्यता के संबंध से अपरिचित है। उनके जीवन पर थॉरो और टाल्स्टाय का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित है और इसे उन्होंने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है। परंतु ये संत पश्चिमी विचार की प्रधान धारा के प्रति कुछ सनकी होते हुए भी अनवरत युगव्यापी भारत की धार्मिक परंपराओं से जुड़े हैं। अमरीका और रूस के अरण्य से उठने वाली चीखें गांधीजी के भीतर जाकर व्यापक मानव-आत्मा की पुकार में बदल गई हैं। यह बात किसी प्रकार भी अविचारणीय या असंभव नहीं है कि अपनी बहादुराना और प्रतीकात्मक मृत्यु के बाद गांधीजी आध्यात्मिक रूप से पुनर्जीवित भारत की केन्द्रीय विभूति और आत्मिक प्रतीक बनेंगे। उन्होंने आध्यात्मिक सन्तोष की भावना से पूरित शांतिपूर्ण ढंग से व्यावसायिक सभ्यता के भौतिक मूल्यों के विरुद्ध अपनी आध्यात्मिक जीवन-प्रणाली को रखा। पश्चिम के एक निवासी के लिए इस संभावना की कल्पना कर सकना बड़ा कठिन है, हालांकि उसके नाममात्र के ईसाईयत के खयाल से यह विचार बिल्कुल पराया नहीं है, परन्तु दुर्भाग्यवश पश्चिम का धर्म बिल्कुल नाममात्र का रह गया है। बहुत दिनों से भौतिक उन्नति और भौतिक संकट पर से नियंत्रण उठ-सा गया है और इसलिए आज यह एक का समर्थन और दूसरे की निन्दा करने लगा है। यंत्र सभ्यता क्या सचमुच किसी धर्म के अनुरूप हो सकती है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे पूछने के लिए ईसाई सदस्यों तक में एक उत्साह की आवश्यकता है और उसी प्रकार इसका उत्तर दे सकने के लिए एक दैवी विवेक की आवश्यकता है। यह एक ऐसा प्रश्न है जो वर्तमान समय के पूंजीवाद और साम्यवाद तथा लोकतंत्रवाद और साम्यवाद के बीच की सभी प्रत्यक्ष और भयपूर्ण अर्थ-विपरीतताओं को स्पष्टतः काट देता है। ये विरोधी अनुमान शैल्पिक सभ्यता में हमेशा मौजूद रहते हैं, जिसके दोनों छोरों पर यह मान लिया गया है कि शिल्प एक अच्छी और आवश्यक वस्तु है, जोकि लोगों को भौतिक लाभों का उपहार देने की क्षमता रखती है, जो लाभ स्वयं-प्रमाण की तरह से व्यापक मानव-समाज के लिए सबसे अधिक कल्याणकारी हैं। इस प्रकार पश्चिमी राजनीतिज्ञों के लिए यह स्वतः-सिद्ध है कि साम्यवाद के आक्रमण को सफलतापूर्वक पश्चिमी जगत के भौतिक स्तर को उस सीमा तक उठाकर ही रोका जा सकता है, जिस सीमा तक साम्यवाद के लिए पहुँचना व्यावहारिक दृष्टि से असंभव हो। भौतिक उन्नति हो सके यह बात

संभव है। परन्तु यदि यह उन्नति हो भी गई तो क्या पश्चिमी मानवता इस जंगल से बाहर जा सकेगी या उसमें और उलझेगी ? तब क्या शांति और सन्तोष की दृष्टि से यह पश्चिमी समाज अधिक योग्य हो सकेगा ?

इस विषय में गांधीजी ने सीधा और स्पष्ट उत्तर दिया था। सैद्धान्तिक रूप से बुनियादी असन्तोष का शांति के साथ कोई मेल नही बैठता—कभी-कभी इसे "दैवी असन्तोष" के नाम से पुकारा जाता है और उसे शिल्प-विज्ञान के द्वारा अनुमान और प्रेरणा प्राप्त होती है, क्योंकि शांति एक मन:स्थिति, एक जीवन-प्रणाली है। व्यक्तिगत रूप से मानव के धार्मिक चुनाव पर अवलंबित आध्यात्मिक वस्तुओं के मुकाबिले में भौतिक वस्तुओं के त्याग का ही रूप है—ऐसा त्याग जिसका कि आचरण उस व्यापक मानव-समुदाय द्वारा एक जीवित पारलौकिक और सर्वव्यापी धार्मिक परंपरा के गुण के रूप में होना चाहिए। मैं यह नही जानता कि गांधीजी की बात ठीक थी या ग़लत। इससे भी कम कल्पना मैं इस बात की कर सकता हूँ कि भारत उनका अनुकरण कर सकेगा या नहीं, परंतु मुझे इसमें कोई संदेह नही कि जिस चुनौती को उन्होंने पश्चिम के सामने रखा, वह नि:संदेह एक महान् आत्मा की चुनौती थी जिसके भीतर भारत का आध्यात्मिक और धार्मिक विवेक एक नये अधिकार के साथ मुखरित हुआ था।

: १३ :

गांधीजी के काम और नसीहतें

हरमन ओल्ड

गांधीजी के चरित-लेखकों के लिए कल्पना को तथ्य से और जनश्रुति को सत्य से अलग करना बड़ा कठिन होगा। अपने जीवन-काल ही में गांधीजी के साथ एक पौराणिक हस्ती की कहानी जुड़ गई थी, वे एक प्रतिमा बन गए थे जिसके नाम की शपथ ली जा सकती है। एक आश्चर्यजनक शक्ति और ईश्वरी गुणों के प्रतीक का स्थान उन्हें मिल गया था। स्वयं मैंने कई बार उचित तर्क को पकड़ने के लिए अथवा नसीहत का संकेत करने के लिए, उनके नाम का स्मरण किया है—विशेषकर १९१४-१८ के युद्ध के समय जबकि अपनेको मैं एक शांतिवादी कहता था। मेरा शांतिवाद बाह्य तौर पर ईसा की शिक्षा या टाल्स्टाय द्वारा की

गई व्याख्या के अनुरूप प्रेरित हुआ था। 'बाह्य' शब्द का प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि तबसे मैं यह मानने लगा हूं कि महान् व्यक्ति अपने उपदेशों को देते नहीं हैं, लेकिन चेतना में छिपे खयालों और भावना को केवल उभाड़ते हैं, जोकि शिष्यों के दिमाग में दबे पड़े रहते है। बात ऐसी है या नहीं, परन्तु यह बात बिल्कुल सच है कि जब प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ तो मैं स्वयं सत्याग्रह और अहिंसा के विचार का पोषक था और उस समय मै गांधीजी को इस विश्वास का पोषक और पथ-प्रदर्शक मानता था, क्योंकि उनके उपदेश और कार्य मेरे विश्वास के अनुरूप थे, इसलिए मैंने उन्हें पूरी तरह से बिना संदेह या प्रश्न के स्वीकार कर लिया था।

तीस वर्ष के इस बीते हुए युग के दौरान में मेरे दिमाग और आचरण में कुछ अनिवार्य परिवर्तन हुए है। मेरा विचार है, मैं अब कम कट्टर और ज्यादा सहिष्णु बन गया हूं। किसी बुराई को आम मान लेने का मै कम आदी हो गया हूं और उन लोगों की सच्चाई को स्वीकार करने में ज्यादा तैयार हो गया हूं, जिन्हें पहले मै गलत समझता था। पहले जब अंग्रेजी पत्र समय-समय पर गांधीजी के कार्यों और भाषणों पर प्रकाश डालते थे तो मै कभी-कभी उनके कामों की आलोचना करता था और उनके उपदेश को शंका की दृष्टि से देखता था। उनके काम मुझे कुछ-कुछ चमत्कारपूर्ण और नसीहतें बड़ी कठोर प्रतीत होती थीं। अब मैंने यह बात आसानी से मान ली है कि परिस्थितियों के अपूर्ण ज्ञान के आधार पर निर्णय करना यदि असंभव नही तो कठिन अवश्य था, और विशेषकर एक अंग्रेज के लिए, जो कभी हिन्दुस्तान में न रहा हो और जो एक सामान्य अंग्रेज से एक हिन्दुस्तानी के विषय में थोड़ा ही अधिक परिचित हो, हिन्दुस्तान के मसलों पर गांधीजी के योग का अंदाज लगाना उसके लिए बड़ा कठिन है। मै सचमुच उस बात का फैसला नहीं करना चाहता, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि गांधीजी के संदेश या पुकार के प्रति उस समय मेरा कम झुकाव था।

मैं गांधीजी के सच्चे स्वरूप को उस समय समझ सका जबकि सन् १९४५ में मैं हिन्दुस्तान गया और कुछ महीनों तक सभी स्थिति के लोगों से मिला और जगह-जगह सभाओं और भाषणों में शरीक हुआ। यह कहना तो बेकार है कि वे एक अजीब हिन्दुस्तानी थे—गांधीजी के समान महापुरुष किसी देश और किसी समय के लिए विचित्र नहीं होते—वे अद्वितीय होते हैं। फिर भी वे पक्के हिन्दुस्तानी थे और उन्हें हिन्दुस्तान ही पैदा कर सकता था। यह बात कहना बिल्कुल

असंगत होगा कि उनकी विशेष ताकत और असर यूरोप में भी वैसे ही फैलते, जैसे कि हिन्दुस्तान में, जहां अपने युगवर्ती प्राचीन इतिहास और परंपरा के बावजूद आज भी अधिकांश निवासी अशिक्षित हैं और जहां का जीवन तत्त्वतः सादा है। यद्यपि गांधीजी का अपना चरित्र बड़ा पेचीदा और सूक्ष्म था, परन्तु अपने लोगों के लिए दिया गया उनका उपदेश बड़ा सहल और सीधा होता था और वे इसे बिना किसी अस्पष्टता के प्रकट करते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि पश्चिमी सभ्यता की प्रगति बहुत अंश तक भ्रष्टता और संशय की ओर हुई है और यह बात कहना व्यावहारिक नहीं है कि गांधीजी का सीधे-सादे शब्दों में दिया गया संदेश उन देशों को अपने साथ बहा ले जा सकता था, जिनमें अधिकांश निवासी यूरोपीय हैं। सचमुच मैं प्रायः हिन्दुस्तान की शिक्षित नौजवान पीढ़ी से मिला, विशेषकर ऐसे लोगों से जो उद्योग-धंधों में लगे हैं और जहां राजनैतिक सिद्धान्तों पर अधिक वाद-विवाद चलता है, वहां भी महात्माजी की शिक्षा के बारे में मैंने वही संशय पाया जैसा कि यूरोप के शिक्षित समाज के बीच पाने की मैं आशा करता था। 'महात्मा' शब्द के बोलते समय ये नौजवान प्रायः अपने ओठ सिकोड़ कर एक अजीब तिरस्कार-मिश्रित हँसी के साथ बात करते थे।

परन्तु आम लोगों को मैंने गांधीजी का नाम बड़ी श्रद्धा और आदर के साथ लेते सुना है। हिन्दुस्तानियों में श्रद्धा की भावना अंग्रेजों से कहीं अधिक है। एक अंग्रेज किसी व्यक्ति के प्रति साधारणतया श्रद्धा का भाव अपने मन में पैदा करना पसन्द नहीं करता, वह उस भाव को केवल ईश्वर और संतों के लिए ही सुरक्षित रखता है जबकि एक हिन्दुस्तानी हमेशा ऐसे व्यक्ति की तलाश में रहता है, जिसे वह अपनी श्रद्धा का पात्र बना सके। हिन्दुस्तानी किसी संदिग्ध संतपन के प्रतीक के ऊपर श्रद्धा की बौछार करने में संकोच नही करेगा। यही क्यों, मैं तो अनुशासन तक को प्रोत्साहन न देना ही पसन्द करता हूं। ऐसे वातावरण में जहां ये बातें संभव है, गांधीजी के लिए अपने लाखों देशवासियों के हृदय में पूजा की ज्योति जगा सकना कितना स्वाभाविक था। वे उनकी आकांक्षाओं के प्रतीक थे। हिन्दुस्तान की आवाज उन लाखों मूक हिन्दुस्तानियों की आवाज थी, जोकि यह मानने लगे थे कि अंग्रेजी हुकूमत से आजादी पाने का अर्थ सचमुच आजादी है।

मैं जब बंबई में था तो मुझे जनता की इस उमड़ती भावना का नजारा देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे एक हिन्दुस्तानी मित्र, जो अपनेको गांधीजी का अनुयायी मानते थे, एक दिन मेरे पास आकर यह उत्तेजनापूर्ण खबर सुनाने

लगे कि गांधीजी बहुत जल्दी एक दिन के लिए बंबई आने वाले हैं। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मैं ऐसे व्यक्ति के सामने आऊं, जिन्हें वे इतनी श्रद्धा करते थे और साथ ही यह वादा किया कि वे उनके साथ मेरी भेंट का भी इंतजाम कर देंगे। मेरे मित्र भी बड़े संत स्वभाव के व्यक्ति थे। इनसे मेरा काफी स्नेह था। अतः मैं ऐसे मौके के प्रति कम उत्साह दिखा कर उन्हें घबराना नहीं चाहता था; परन्तु फिर भी लाचारी में मुझे कहना पड़ा कि मेरे लिए यह आखिरी चीज होगी कि मैं अपनी उपस्थिति एक ऐसे व्यक्ति पर लादू जो हमेशा विभिन्न लोगों से घिरा रहता है, और निस्संदेह जिनपर बहुत-से लोग मुझसे अधिक दावा रखते हैं। मैं दूर से ही उनकी प्रशंसा करने में सन्तोष मान लूंगा। लेकिन मेरे मित्र अपने मनमें तय कर चुके थे, और कुछ दिन के बाद मैंने सुना कि महात्माजी मुझसे मिल सकेंगे, यदि मै पेटिटहाल में जाकर प्रार्थना-सभा में शामिल हो सकू, जहां वे ठहरे हुए थे। उस विशाल भवन के सामने पहुंचने पर मैंने उस इलाके में फैले हुए उत्सुक वातावरण का अनुभव किया। पेटिट-हाल की ओर जाने वाली मोटरों के सिवा मैंने बहुत कम लोगों को उस सड़क पर चलते हुए देखा, जिसके दोनों ओर सावधान स्काउट खड़े थे। उस बड़े हाल में मुझे कुछ ऐसे लोग दिखलाई दिये, जो सिर्फ हिन्दुस्तान में ही मिल सकते हैं——बड़ी आंखें, चिकने चेहरे, स्वप्नदर्शी प्राणी, सफेद लम्बे कपड़े पहने, जोकि उनकी काली सूरतों पर काफी फबते थे। इन लोगों ने मुझे बताया कि महात्माजी शीघ्र बाहर आ रहे हैं, परन्तु उन्होंने मेरा नाम अंदर भेज दिया।

मै जैसे ही उनकी बैठक से मिले कमरे में पहुंचा, मुझे बड़ा धक्का लगा; क्योंकि वहां मेरे मित्र जूते उतारने के लिए किसीसे कानाफूसी कर रहे थे। अब-तक मैं बहुत बार मसजिद में घुसते समय जूते उतार लेता था, लेकिन यह मुझे अजीब नहीं लगता था; क्योंकि मसजिद खुदा का घर होता है। परन्तु मेरे जैसे ही एक दूसरे इन्सान के सामने जो चाहे जितनी श्रद्धा का ही पात्र क्यों न हो, जूते उतारने के सवाल पर मेरे मन में विद्रोह-सा उठा। सौभाग्य से इसी समय कुछ स्त्री-पुरुषों के साथ आते हुए महात्माजी दिखलाई दिये और इस तरह मै फैसले के निर्णय से बच गया। संपूर्ण वातावरण श्रद्धा की स्पष्ट भावना से भर गया था। आवाजें खामोश हो गई थीं। सभी की आंखें गांधीजी की ओर उठीं। उनके साथ उनकी पत्नी और एक लड़की थी और इन दोनों के कंधों का सहारा लिये हुए वे चल रहे थे। उनसे मेरा परिचय कराने से पूर्व मेरे मित्र उनके सामने लेट गये और उन

के चरणों को छुआ—मुझे यह काम बड़ा अरुचिकर लगा। जब गांधीजी ने मेरा नाम सुना तो उन्होंने मेरे नमस्कार का नमस्कार से उत्तर दिया, जैसा कि उनकी आदत पड़ गई थी। और तब उन्होंने मुस्कराते हुए मुझसे यूरोपीय ढंग से हाथ मिलाया, लेकिन कहा कुछ नहीं। इस समय तक हम लोग एक जुलूस की शक्ल में दरवाजे की ओर बढ़ रहे थे, गांधीजी अभी भी उस नौजवान लड़की का सहारा लिये हुए थे और उनके पीछे सफेद साड़ियां पहने स्त्रियों की एक कतार और प्रतीक्षा करने वाले पुरुष चले आ रहे थे।

ज्योंही हम नीचे पहुंचे, दोनों ओर खड़े स्काउटों ने अभिवादन किया। इस समय तक हमारी तादाद काफी बढ़ गई थी और अब मैंने अपनेको ५०-६० व्यक्तियों के जुलूस के आगे पाया। महात्माजी ने मुझे अपने निकट रहने का संकेत किया और मेरी तरफ मुड़ते हुए अपने दोनों ओठों को बन्द कर अपनी अंगुली से उन्हें थपथपाया। श्रीमती गांधी ने कहा, "इसका मतलब यह है कि आज मौन है।" और मेरे मित्र ने जो उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, आदरपूर्वक कहा, "यद्यपि गांधीजी आज नही बोल सकते, पर आप उनसे बात कर सकेंगे।" मै यह मानने को तैयार हूं कि इस स्थिति ने मुझे थोड़ी देर के लिए परेशानी में डाल दिया। यदि मै गांधीजी के या किसीके साथ अकेला होता तो मै बात करने के लिए शायद इस आशा से लालायित भी हो उठता कि उनकी आंखों में मै अपनी बातचीत की प्रतिक्रिया पढ़ सकूगा; लेकिन एक सार्वजनिक स्थान पर चलते हुए, जहां पुलिस-मैन भीड़ को दूर रखने की कोशिश कर रहे हों, जहां स्काउट सलामी की हालत में खड़े हों, मैंने अपनेको बात करने के लिए बिल्कुल अयोग्य अनुभव किया। मैंने तय किया कि मेरे समय का गांधीजी को निकट से देखने में अच्छा उपयोग होगा। गांधीजी का इन दिनों बड़ा अच्छा स्वास्थ्य था। दो महिलाओं का सहारा लिए हुए भी वे बिलकुल सीधे चल रहे थे। उनका शरीर कसा हुआ और पुष्ट था और उनकी लम्बी पतली टांगें उनके शरीर को तेज कदमों पर चलने के लिए पर्याप्त मजबूत थी। वे धोती और शाल लपेटे थे। पैरों में जूते नहीं थे। उनका खुला हुआ शरीर पालिश लगे तांबे की तरह चमक रहा था और उनका चमकदार सिर घुटा हुआ था। यद्यपि वे बोल नहीं रहे थे, फिर भी उनकी छोटी पैनी आंखें बराबर लोगों को मुग्ध करने, खुश करने, शांत रहने, चेतावनी देने—परन्तु जैसा मुझे लगा मुग्ध करने में—मशगूल थी।

हम उस भवन के लॉन के नजदीक पहुंचे, जहां प्रार्थना-सभा होने

वाली थी। इस समय तक काफी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। और वहां स्काउट और पुलिस के गारद को नजदीक आकर लाइन बनानी पड़ी। घर के पीछे एक मंच तैयार किया गया था, जिसके सामने एक हरा मैदान समुद्र तक फैला था। मंच पर कुछ सोफे सफेद कपड़े से ढके रखे थे और एक वर्गाकार गद्दी पर गांधीजी पलथी मारे बैठे थे। उनके पीछे मसनदों का एक ढेर था, हालांकि जिनका सहारा वे नहीं ले रहे थे। वे वहां सरस्वती की एक पुरानी प्रतिमा के समान बैठे थे। उनकी आखें बन्द और शांत थी——जो मंच के ऊपर से नीचे घास पर बैठे सैकड़ों-हजारों स्त्री-पुरुषों को आलोकित कर रही थीं।

एक भजन-गान से प्रार्थना शुरू हुई। इस गाने में पीड़ा भरी थी, जो हिन्दुस्तान के पवित्र गीतों की अपनी विशेषता है। सर्वप्रथम कुछ गीत या भजन गाए गए और बाद में एक नेता ने 'राम धुनि' चलाई, जिसे सभी उपस्थित लोगों ने दुहराया। लाउड स्पीकर वहां थे, पर उनका इस्तेमाल नहीं किया जा रहा था। मंच के पास एक दरी बिछी थी जिसपर बैठने के लिए मुझे आमंत्रित किया गया, लेकिन मैं बराबर मंच की उस स्थिर प्रतिमा को खड़ा-खड़ा ही देखता रहा, जिसके बैठने के ढंग से मैं बड़ा प्रभावित हो रहा था। उनका दबा हुआ नीचे का होठ निश्चय का सूचक था। मेरे चारों ओर एक भाव-विह्वल भीड़ जमा थी। संवाददाता, फोटोग्राफर और यहांतक कि चलचित्र वाले फोटोग्राफर भी चारों ओर खड़े थे। मिठाई और फूलों को बेचने वाले भी वहां मौजूद थे। खूंख्वार आंखोंवाली एक स्त्री एक बर्तन लिये जा रही थी, जिसमें कुछ खाने की चीजें मिली थीं। उसमें से एक मुट्ठी भरकर प्रसाद उसने मुझे दिया। मेरे पास खड़े एक पत्रकार ने मुझसे उसे न खाने को कहा। इसलिए बड़ी चालाकी से मैंने वह चिकना पदार्थ अपनी अँगुलियों के बीच से गिर जाने दिया। प्रार्थना खत्म हुई। हस्ताक्षर लेने वालों की भीड़ ने महात्माजी को घेर लिया। जिन्हें उनके हस्ताक्षर पा सकने का सौभाग्य मिला, उन्होंने पांच-पांच रुपये हरिजन फंड में दिये। संवाददाताओं ने मुझे भी घेर लिया और मझसे भेंट देने के लिए अनुरोध किया। महात्मा गांधी के बारे में मेरी क्या राय है? उन्हें निराश लौटना पड़ा। लेकिन मैंने उनसे और दूसरे लोगों से ऐसी-ऐसी छोटी-छोटी कहानियां गान्धीजी के विषय में सुनी, जोकि इस श्रद्धा को प्रकट करने के लिए पर्याप्त थीं, जिसके कि भागीदार मेरे वे संत मित्र और वहां इकट्ठी हुई जनता थी। एक उत्सुक नौजवान ने वही खड़े होकर घोषणा की कि मानो खोज का यह काम उसी ने किया हो कि गांधीजी एक लोकतंत्रवादी, एक कुलीनवादी, धनिकों के आदमी

थे——प्रजातंत्रवादी जैसाकि उनके 'हस्ताक्षर' करने से प्रकट होता है, कुलीनवादी, क्योंकि वे सचमुच कुलीन थे; और धनिकों के इसलिए कि उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए लखपतियों का उपयोग किया है।

इस घटना के प्रकाश में, जो स्वयं मेरी रुचि के अधिक अनुकूल नहीं थी, मैंने गांधीजी के बारे में एक स्पष्ट जानकारी हासिल की। उनके बारे में कुछ बातों को, कुछ तरीकों को, उनके उद्देश्यों को मैंने हमेशा ज्यों-का-त्यों माना है। हिन्दुस्तान के लिए उनका प्रेम, अंग्रेजी हुकूमत से भारत की आजादी की अनिवार्यता के प्रति उनका विश्वास, अहिंसा की नीति में उनकी अडिग आस्था, सविनय-अवज्ञा के लिए उनका सच्चा समर्थन——कोई भी व्यक्ति इनमें से एक या सभी मान्यताओं की बुद्धिमानी पर संदेह कर सकता है। परन्तु मुझे इस उत्साह के प्रति गांधीजी की सच्चाई पर कभी संदेह नहीं हुआ। मेरे मन में उनके इन तरीकों के प्रति संदेह पैदा हुआ था जिनकी सहायता से वे अपने उद्देश्यों को आगे बढ़ाना चाहते थे। सविनय-अवज्ञा कार्य की एक पद्धति थी, क्योंकि १९१४-१८ के युद्ध में मै लड़ाई का एक विरोधी था और इसलिए अनिवार्य सैनिक भर्ती संबंधी कानूनों को पालन करने से मैंने इन्कार कर दिया था परंतु ऐसा करने में मैंने अपने सिवा और किसी को शामिल नहीं किया था और मेरी इस अवज्ञा का नतीजा भी केवल मुझे ही भोगना पड़ा था जबकि गान्धीजी ने केवल खुद इन्कार नहीं किया था, लेकिन हजारों लोगों की इन्कार के वे कारण थे। जब प्रतिरोध न करने वाले हजारों स्त्री-पुरुषों पर जिन्हें कष्ट सहन करते हुए भी अंग्रेजी हुकूमत को परेशान करने की प्रेरणा गांधीजी से मिली थी, लाठी चलाने के समाचार मैंने पढ़े, तो इन सीधे-सादे लोगों के साहस के प्रति मेरी प्रशंसा की कोई सीमा न रही, परन्तु मुझे इस बात के कारण बनने के पाप से गांधीजी को मुक्त करना कठिन लगा।

इस प्रकार अहिंसा के सिद्धान्त की उनकी व्याख्या मुझे दोषपूर्ण लगी। सरकार के व्यवहार के विरुद्ध यदि आवश्यक हो, तो 'आमरण अनशन' की बात अथवा झगड़ालू जातियों में शर्म पैदा करना बड़े साहस और दृढ़ता का काम है, परन्तु तत्त्वतः यह हिंसात्मक काम है——एक ऐसी धमकी, जिसे परिणाम के आधार पर न्यायसंगत नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसका उस अपराध से कोई संबंध नहीं रहता, जिसके विरुद्ध इसे अमल में लाया जाता है। यह एक ऐसा कार्य है जो न्याययुक्त और अन्याययुक्त दोनों उद्देश्यों में समान प्रभाव रखता है।

लेकिन गांधीजी को सचमुच इन उपायों में विश्वास था, और जहांतक किसी

को पता है, उनके व्यवहार से उन्हें कोई पछतावा नहीं होता था। उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण बात उन उपायों को ज्यादा प्रभावशाली बनाना था और हिन्दुस्तान निवास के मेरे थोड़े दिनों में, विशेषकर जब स्वयं मैंने अपनी आंखों से देखा, कि वे किस तरह उसका अनुसरण करते हैं, तो मैं यह मानने लगा कि महात्माजी किस कुशलता और समझ के साथ अपने लोगों पर प्रभाव पड़ने की योग्यता के अनुरूप काम करते थे और उस दिशा की ओर लोगों को ले जाने में उस रास्ते का जिसे वे उचित समझते थे, ईमानदारी के साथ पालन करते थे। अपनेको संत कहे जाने के खिलाफ उनका विरोध इसलिए था कि क्योंकि उन्हें संत अपने इसी असीम प्रभाव के कारण माना जाता था। इस उप-महाद्वीप के लाखों लोगों की सादा जिन्दगी से अपनेको मिलाते हुए वे स्वयं बहुत सादगी से रहते थे। उनका त्याग या संन्यास उनके संतपन का एक गुण था, जिसके साथ उनके धार्मिक विश्वासों का मेल था और आवश्यकता पड़ने पर आमरण उपवास की उनकी तैयारी निर्धारित बलिदान की एक शक्ल थी, जिससे लोगों के हृदय में उनके प्रति एक श्रद्धा-मिश्रित प्रेम पैदा होता था।

: १४ :

अंतिम दिन

विण्सेन्ट शियन

किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा डा. राधाकृष्णन् यह बात अधिक अच्छी तरह जानते हैं कि महात्मा गांधी के अद्भुत दृष्टि विषयक कार्यों को देखकर पश्चिमी दिमाग में महात्माजी के प्रति विचारों के चढ़ाव-उतार की प्रतिक्रिया किस तरह की होगी। इस प्रकार जिन ऐतिहासिक और आध्यात्मिक बातों ने गांधीजी का निर्माण किया है, उन बातों से अधिकांश पश्चिमी लोग अपरिचित हैं। इस कारण उनकी असलियत का सार-तत्त्व बहुत अंश तक गलत समझा जाता है, या उसके गलत समझे जाने की संभावना है और युगव्यापी भारतीय चेतना की विशेषताओं से मुक्त इस विषय के अनुभव का क्षेत्र इतना व्यापक है कि ज्ञान के क्षेत्र के समान ही, बोध और प्रयोगात्मक रूप में ज्ञात-अज्ञात पश्चिम-निवासी की बड़ी असुविधाजनक स्थिति है। गांधीजी हमारी (पश्चिम) सीमा से आगे बढ़ गए और हमारे मूल्यों को पार कर गए। मुझे यह भी लगता है—और इसके निर्णय

के भी योग्य अधिकारी प्रो. राधाकृष्णन् ही हैं—कि उन्होंने हिन्दुस्तानी वर्गों और मूल्यों के प्रति भी वैसा ही किया। इस प्रकार वे क्या थे, क्या किया और हमें क्या सिखाया, इसपर विचार करने के लिए हम सबको अपने सामान्य घेरे से, अपने छोटे-बड़े जेलों से, एक ऐसी ऊंचाई तक ऊपर उठना होगा, जहां पहुंचकर विश्व में निस्स्वार्थ पवित्रता के विषय में एक शक्ति के रूप में सोचने का मौका मिले—ऐसा नही कि उसे जीवन से बाहर खीचा गया है, बल्कि गहराई और व्यापकता से वह जीवन पर प्रभाव डालने वाली है।

सन् १९४७ के अंत में मुझे कोई पूर्व चेतना हिन्दुस्तान में खींच लाई। मैं यहां पहले भी बहुत आराम के साथ रह चुका था और यह भी तय था कि एक दिन मैं हिन्दुस्तान में पुनः यह सीखने जाऊंगा कि वहां आखिर है क्या? पहले कराची पहुंचकर मैं वहां कुछ दिन ठहरा और जब मुझे मालूम हुआ कि गांधीजी शीघ्र ही मुसलमानों की रक्षा के विचार से दिल्ली में आमरण उपवास शुरू करने वाले हैं तो मैंने दिल्ली पहुंचने की जल्दी की। यह उपवास १३ जनवरी १९४७ के दिन शुरू हुआ। मैं नई दिल्ली १४ जनवरी को पहुंचकर उपवास की प्रगति को देखने लगा। गांधीजी की इस उम्र में उपवास की बात बड़ी चिन्ता-जनक थी; लेकिन यह भी निश्चित मालूम पड़ता था कि उपवास को तुड़वाने के सब संभव उपाय किये जायंगे। उपवास के प्रारम्भ में उन्होंने कोई शर्त नहीं रखी थी—हमेशा की तरह यह एक प्रार्थना और प्रायश्चित की शक्ल में आरंभ हुआ था। शर्तें आने वाले शनिवार (१८ जनवरी) के दिन बताई गईं। इस दिन प्रत्येक संगठन और श्रेणी के ३० हिन्दू नेता गांधीजी से आकर मिले। इसमें कुछ अन्य संगठनों के नेता भी शामिल थे। इन लोगों ने गांधीजी से यह पूछा कि उनकी कौन बात उनके अच्छे इरादे के प्रति गांधीजी को भरोसा दिला सकेगी। उस समय गांधीजी ने सात शर्तों का नाम लिया, जिसमें दिल्ली में रहने वाले मुसलमानों की जिन्दगी की रक्षा और पूजाकर सकने की बात भी शामिल थी। इन सभी शर्तों को पूरा करने की इन ३० नेताओं ने शपथ खाई और इस प्रकार रविवार को दोपहर के दिन गांधीजी ने अपना उपवास तोड़ दिया।

मैं इस बीच बराबर पढ़ता रहा और प्रतीक्षा करता रहा। मैं किसी भी प्रकार के निर्णयात्मक अनुभव के लिए पहले से ही तैयार था। मेरी चेतना में अन्य बहुत-से लोगों के समान वर्षों से गांधीजी विद्युत शक्ति के सदृश मौजूद थे। मुझे ऐसा लगता है कि अपने आध्यात्म बल के आन्दोलन में उन्होंने १५ अगस्त के दिन

प्रवेश किया था, जबकि प्रथम बार हिन्दुस्तानियों के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित की गई थी और उन्होंने वह दिन मौन प्रार्थना, चिन्तन और चर्खा कातने में बिताया था। मेरे दिमाग में पहले प्रश्न यह था कि आखिर यह आन्दोलन कितने दिन तक चलेगा। कलकत्ते में मैं उन दिनों था और तब इसकी सफलता की मुझे काफी आशा थी। उनके जीवन के संपूर्ण नाटक के विकास के प्रत्येक अणु और प्रत्येक तर्क में यह बात निहित थी। इस विचार को वहां पहुंचने के बाद मैंने न तो न्यूयार्क में और न दिल्ली में अपने दोस्तों से छिपाया। ये बातें मैं इसलिए कह रहा हूं कि किस तरह उनसे मेरी पहली बातचीत में ही मुझे ऐसा लगा कि वह आखिरी है—यह आत्मानुभूति मेरे लिए बड़ी गहरी थी। मैं बिड़ला-भवन की प्रार्थना में उपवास समाप्त होने के बाद गया, लेकिन गांधीजी से मिलने और उन्हें देखने की उस समय तक कोशिश नहीं की जबतक कि श्री नेहरूजी ने मुझसे यह न कहा कि गांधीजी अब बात करने के बिल्कुल काबिल हैं।

जब मैं बिड़ला-भवन के उद्यान-कक्ष में गया तो मुझे अन्दर से ऐसा लगा कि गांधीजी के साथ बात करने का यह मेरा आखिरी मौका है। वर्षों से मैं वर्धा जाना चाहता था, लेकिन अबतक इसका कोई अवसर नहीं आया था और यहां गांधीजी बहुत व्यस्त थे। साथ-ही-साथ १५ अगस्त के दिन होने वाली घटनाओं से वे बहुत दुःखी थे। इस समय तमाम तामसी वृत्तियां इकट्ठी हो रही थीं। ऐसी दशा में अस्थायी बातों के विषय में पूछने की मेरी बिल्कुल इच्छा न थी, फिर वे बातें चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हों। मैं हिन्दुस्तान या किसी दूसरे मुल्क के बारे में समय या स्थान के बारे में बात नहीं करना चाहता था। इस दुनिया की पच्चीस वर्षों की चिन्ता मुझे पुराने सवाल पूछने के लिए यहां लाई थी : सत्य क्या है? कर्म क्या है? कर्म का फल क्या हाता है? क्या कोई युद्ध सच्चाई के लिए होता है? एक अच्छी लड़ाई का भयंकर परिणाम कैसे निकल सकता है?

जिस ढांचे में ये प्रश्न असाधारण तरीके से ठीक उतरते थे, वह पुस्तक एक दिन अचानक मेरे हाथ कुछ दिन पहले एक पुस्तक की दुकान पर पड़ गई थी। यह पुस्तक गांधी-गीता—(दी वे ऑव सेल्फ़-लैसनेस) थी गांधीजी की इस पुस्तक का अनुवाद 'अनासक्ति योग' के नाम से महादेव देसाई ने गुजराती में किया था। इस पुस्तक में इन्हीं विषयों की चर्चा की गई थी। गांधीजी को यह पता लग गया था कि मैं बहुत ही गम्भीर हूं और उनके उत्तर मेरे लिए किसी दूसरे के उत्तरों से अधिक मूल्य रखते हैं। बहुत दिनों बाद तक बातचीत के दौरान में मैंने

उन्हें यह नहीं बताया कि यही प्रश्न हिटलर के विरुद्ध हमारे युद्ध और उसके नतीजे से संबंध रखते हैं। वास्तव में उनके दिमाग में उस समय कोई दूसरा संघर्ष चल रहा होगा, फिर भी उन्होंने उसे कुरुक्षेत्र के युद्ध तक ही सीमित रखा था। इस बातचीत में वे किसी बातचीत की अपेक्षा जिसका पूर्ण अहिंसा में मै कोई उल्लेख पा सकूं, साधन और साध्य की एकता और त्याग के आग्रह पर ज्यादा दूर तक चले गए थे। अब मैं यह महसूस करता हूं कि वे मेरी आवश्यकता को समझ सके थे और इसलिए मेरी मदद करना चाहते थे। एक बार उन्होंने 'ईशोपनिषद्' की एक कापी मंगवाई, लेकिन वह संस्कृत में आई। उन्होंने मुझसे कहा, "यदि आपको अंग्रेजी की कोई प्रति न मिले तो अगले दिन मैं मंगवा दूगा।" इसके बाद उन्होंने ईशोपनिषद् का प्रथम श्लोक पढ़कर सुनाया और उसकी अपने शब्दों में व्याख्या की "दुनिया को छोड़ दो और पुन: ईश्वर को देन के रूप में उसे प्राप्त करो।" इसमें दार्शनिक दिलचस्पी की भी कुछ बातें थीं। उन्होंने 'माया' शब्द का 'भ्रम' अनुवाद करने की इजाजत नही देनी चाही। हमने 'दृश्य रूप' पर समझौता किया। अणु-शक्ति, विद्युत-चुम्बक—विस्तार एवं आनुसंगिक सभी दृश्य और इस ब्रह्माण्ड की संभावित लय आदि विषयों तक को उन्होंने बड़ी शांति के साथ देखा। तब मुझे इतना नही मालूम था जितना अब है कि ये सभी विषय कितनी स्पष्टता के साथ उपनिषद् में वर्णित है। उस बातचीत के दौरान में, जिसका कि मैंने नहीं के बराबर संकेत किया है, उन्होंने मुझसे कहा कि मैं बिड़ला-भवन में रोज उनके पास आ सकता हूं और शाम की प्रार्थना के बाद वे मुझसे रोज मिला करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मै चाहूं तो स्वयं उस भवन में आकर ठहर सकता हूं। अंत में यह भी कहा कि वे कुछ दिन में वर्धा जा रहे हैं, जहां मै उनके साथ चल सकता हूं और वहां भी अपने प्रश्नों को जारी रख सकता हूं।

मेरे दूसरे दिन के प्रश्न सत्य और अहिंसा के संघर्ष की संभावना से संबंधित थे, जिसे उन्होंने मानने से इन्कार कर दिया था। इसके बाद मै बाहर जा रहा था, इसलिए दूसरे दिन भी उन्होंने मुझसे उसी विषय पर चर्चा जारी रखने को कहा। इसपर मैंने महात्माजी से पं० नेहरू के साथ अपने अमृतसर जाने की बात कही। उन्होंने अपने दोनों हाथों को जोड़कर कहा, "जाइये! जाइये!" ये थे उनके आखिरी शब्द जो मैंने उनके मुंह से निकलते सुने थे, क्योंकि अमृतसर से दो दिन के बाद लौटने पर ३० जनवरी आ गई थी। मैंने उस दिन के लिए सत्य-अहिंसा के विवाद को वहीं खत्म करने की बात तय की थी, (विषय विशेषकर दूध पीने की

शपथ से संबंध रखता था)। और कोई नया विषय उस दिन लेने का विचार था—'दी किंगडम ऑव गॉड इज़ विदिन यू' (ईश्वरी राज्य तुम्हारे भीतर ही है) इस रचना ने कुछ दिन पहले गांधीजी को बहुत प्रभावित किया था। मैंने उनसे पूछा कि 'सर-मन ऑन दी माऊन्ट' (गिरि-प्रवचन) उनको कैसा लगा ? एक लम्बी जिन्दगी के आखिर में इससे बहुत प्रभावित होकर सामाजिक संबंध के क्षेत्र में टाल्स्टाय ने इसे अपना मार्ग-दर्शक बनाया था। उस दिन प्रार्थना-सभा में पहुंचने में उन्हें बारह मिनट की देर हो गई थी। मुझे बाद में मालूम हुआ कि उस दिन दोपहर के बाद का समय उन्होंने भारत का नया संविधान पढ़ने में लगाया। अन्य गंभीर विषय भी साथ-साथ चलते रहे। सूर्यास्त के बाद ठीक ५-१२ पर वे प्रार्थना-स्थान के लिए चले। बगीचे के एक छोर पर स्थित प्रार्थना-स्थल की सीढ़ियों के ऊपर वे जैसे ही पहुंचे, वैसे ही मैंने तीन धीमे विस्फोट सुने। मैं कुछ ही गज की दूरी पर था; लेकिन गांधीजी और मेरे बीच कुछ लोग खड़े थे, इसलिए मै उन्हें देख नही पा रहा था। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन विस्फोटों की आवाज ने कितना घबड़ाने वाला असर पैदा कर दिया था, क्योंकि मुझे यह आशंका पहले ही थी कि एक-न-एक दिन यह होने ही वाला है। यह हो सकता है कि थोड़ी देर के लिए मेरी चेतना खो गई हो। ऐसा लगा कि कोई असाधारण बात हो गई है क्योंकि मैंने लोगों को उन्हें ले जाते हुए अथवा कोई दूसरी महत्वपूर्ण बात नहीं देखी। इस बात का वर्णन मै केवल एक ही तरह से कर सकता हूं—यानी यह सब भूचाल के समान हो गया, जिसमें देखा कम जाता है, अनुभव ज्यादा होता है। उस बगीचे में मैं डेढ़ घंटे तक रहा। इसके बाद मेरे एक मित्र और साथी आकर मुझे ले गये, लेकिन इसके सिवाय मुझे उस समय की कोई बात याद नहीं कि मेरे दिमाग में कुछ अजीब-सा तूफान चल रहा था।

इसके बाद मैं यमुना-तट पर गीता सुनने के लिए रोज जाने लगा और फिर १२ फरवरी को बिड़ला-भवन में उनके फूलों के सामने होने वाली प्रार्थना में गया। बाद में इलाहाबाद-संगम को जाने वाली स्पेशल ट्रेन तक भी मैं गया था। इसके बाद मेरा यह काम हो गया था—जैसाकि आज भी है—कि मैं उनकी बातों को समझने की कोशिश करूं, जोकि उन्होंने समय-समय पर मुझसे कही थीं। बाह्य परिस्थितियों के सामंजस्य का क्या अर्थ हो सकता है और उनके द्वारा दिये गए छोटे-छोटे सबकों के विस्तार के क्या मानी हो सकते हैं ?

इस बात का प्रमाण मैं तब दे सकूंगा, जब मैं यह सब व्यवस्थित कर लूंगा,

और तब यहां बतलाने की अपेक्षा उस समय यह ज्यादा व्यापक और विस्तृत होगी। एक बात बिल्कुल तय है और पहले कुछ क्षणों में बिल्कुल सत्य थी कि गांधीजी कभी भी किसी भी अवस्था में किसी बात से डरे नहीं। मुझे विश्वास है कि जीवन में वे भयभीत कभी नही हुए। प्रायः उन्हें दुर्जेय कहा जाता है, पर मैं अभेद्य कहना अधिक पसंद करूंगा। कोई ऐसा कोना या रास्ता नहीं था, जहां से उनपर हमला किया जा सके, धावा बोला जा सके या गहरी चोट पहुंचाई जा सके—जीत लेना तो दूर की बात थी। (शरीर की चर्चा यहां असंगत है—उन्होंने मुझसे कहा था कि वास्तव में यह एक "बन्दीगृह" है।) अपनी पहली बातचीत के दौरान में जब हम एक नीली दरी के ऊपर टहलते हुए बात करते जा रहे थे, उन्होंने मुझसे एक बात को स्पष्ट रूप से समझने के लिए कहा था।

उन्होंने कहा, "मैं बीमार हूं। मै अच्छे-से-अच्छे डाक्टर को बुलाता हूं। मुझे बुखार है। वे सल्फा-द्रव्य का इंजेक्शन देकर मेरे जीवन की रक्षा करते हैं। इससे कोई बात साबित नहीं होती। ऐसा हो सकता है कि मेरी जिन्दगी का न रहना ही इन्सानियत के हक़ में ज्यादा अच्छा हो। अब बात स्पष्ट हुई? अगर अब भी बिल्कुल स्पष्ट नहीं तो मैं फिर बता दूं।"

मैंने कहा, "मुझे विश्वास है कि मैं समझ गया हूं।" इसके बाद हम गीता की चर्चा करने लगे और उन्होंने फिर उस विषय को नहीं दुहराया। लेकिन मेरे लिए हर तरह से वे जो कुछ कहना चाहते थे, स्पष्ट था।

यह अभेद्य निर्भीकता स्वयं गीता, उपनिषद् एवं अन्य प्रभावों पर अवलंबित है ('गिरि-प्रवचन' का भी प्रभाव इसमें शामिल है) और शायद यह उनके आचरण में आरंभ से ही हो, फिर भी उनके उपदेश के अनुसार इसका विकास जीवन-व्यापी अनवरत प्रयत्न से हुआ था। उनकी प्रकाशित रचनाओं में बहुत दूर तक इस गुण का बढ़ता हुआ प्रभाव मुझे दिखलाई पड़ता है। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में है; और साध्य साधन को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। उन्होंने यह भी बड़े विश्वास के साथ कहा था कि यदि एक बार सभी विद्वान गीता-संबंधी उनकी व्याख्या को गलत करार दे दें तो भी वे उसमें सदा विश्वास रखेंगे। इन वक्तव्यों की पूर्ण पवित्रता, निर्भीकता और आत्म-त्याग ने पहली ही चर्चा में मुझे इतना हिला दिया था कि उस अंधेरे उद्यान में बड़ी मुश्किल से मैं अपना रास्ता खोज सका। उस समय न तो मैंने ईसा पर, न बुद्ध पर कोई विचार किया था। मुझे यह भी लगता है कि स्वयं गांधीजी ने भी उस समय उसपर

विचार नहीं किया था। उस समय वे अपने व्यक्तित्व की गहराई से बोल रहे थे। अपने जीवन में मैंने ऐसा कोई व्यक्ति नहीं देखा, जिसके विषय में यह कहा जा सके। मेरे द्वारा रखे हुए विषयों पर विचार करते समय वे समस्त बाह्य अस्तित्व के बोध से परे हो गए थे—ऐसे विषय जो अन्ततोगत्वा उनके निजी जीवन की आकांक्षाओं का निचोड़ थे।

उनके द्वारा की गई गीता की व्याख्या यद्यपि महादेव देसाई ने जीवित रखी और उसे विस्तार भी दिया, फिर भी मेरा ख्याल है कि विद्वानों द्वारा उसका अधिक समर्थन नहीं हुआ है। श्री अरविन्द घोष भी यह बात स्वीकार नहीं करते थे कि कुरुक्षेत्र व्यक्ति के हृदय के भीतर है। गीता पर लिखे गए निबन्धों में उन्होंने उसे एक पार्थिव युद्ध ही माना है जो स्वयं बहुत भयंकर था। यही बात कोई साधारण पाठक भी मानेगा, लेकिन गांधीजी के विचार उनकी आत्मा की तह से प्रकट हुए थे और उनके लिए वे विचार बिल्कुल सच थे और इसलिए एक लम्बी जिन्दगी के बाद, जो आदि से अंत तक बलिदान और आत्म-त्याग की कहानी रही है, जब उन्होंने मेरे सामने वे विचार रखे, तो मैं उसे सत्य के रूप में उसी तरह मानने को विवश था, जिस तरह आज। यदि आत्मा साक्षात्कार की दिशा में आगे बढ़ती है (जैसा कि मुझे स्वीकार करना चाहिए कि गांधीजी के साथ हुआ है) तो यह बात सत्य हो जाती है कि कुरुक्षेत्र इन्सान के हृदय के भीतर ही बन जाता है और कर्मयोगी तब उसे विशुद्ध अहिंसा में बदल देता है। साधारण व्यक्ति के विषय में यह लागू भले न हो, लेकिन महात्मा गांधी की मृत्यु में, शिक्षा में और जीवन में कर्मयोगी का सत्य बराबर निहित था।

ईशोपनिषद् के विषय में उनके दृष्टिकोण को अध्ययन करने के लिए मुझे पर्याप्त सामग्री मिली है। उनकी व्याख्या का असर मेरे विचार से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—पहला असर विधि या धर्म-संबंधी है, और दूसरा, बुद्धि-संबंधी। जहांतक मुझे मालूम हुआ है, उनके जीवन में 'गिरि-प्रवचन' का उसी समय प्रवेश हुआ जिस समय गीता का, परन्तु 'गिरि-प्रवचन' का किंग जेम्स का सुन्दर भाषायुक्त स्वरूप उनके पास पहुंचा, जबकि जो गीता उन्हें इस समय उपलब्ध हुई, वह सर एडविन का छन्दोबद्ध अंग्रेजी अनुवाद मात्र था (इस समय गांधीजी की उम्र बीस वर्ष की थी)। ऐसी अवस्था में यह आश्चर्य की बात नही है कि गांधीजी के पूरे हिन्दू होने के उपरान्त भी यह ईसाई धर्म-पुस्तक उनको बहुत अधिक प्रभावित कर सकी। गीता अपने पूरे प्रभाव में उनके सामने सन् १९२४ में ५४ वर्ष की

उम्र में आई, अर्थात् जबकि दिल्ली में उन्होंने तीन सप्ताह का उपवास किया था। इसी समय स्वर्गीय मालवीयजी ने गीता का पारायण उनके सामने गाकर किया। शेष जीवन में उन्होंने मूल संस्कृत में ही गीता का पारायण किया, उसपर चिंतन किया और कंठाग्र किया। और उसके छन्दों की लय में उन्होंने उत्तरोत्तर अधिकाधिक सौन्दर्य पाया। गीता के द्वितीय अध्याय के अंतिम १९ श्लोकों का पाठ उनकी प्रार्थना-सभा में हमेशा होता था और उनकी चेतना में गीता का यह अंश 'गिरि-प्रवचन' से बड़ी बारीकी के साथ मिल गया था। यह मेल इतना गहरा था कि गीता-संबंधी गांधीजी की व्याख्या इससे एकदम प्रभावित हो गई थी, फिर भी २७ जनवरी की अपनी बातचीत में, जबकि उन्हें ऐसा लगा था कि मुझे एक ऐसे सत्य की आवश्यकता है, जो उनकी पहुंच के भीतर हो, जो कुछ मुझे दिया वह था गीता से भी परे और शायद ऊपर—ईशोपनिषद्। निस्संदेह इसकी जानकारी उन्हें अपने तमाम जीवण में थी, फिर भी उन्होंने मुझसे कहा था कि सर्वप्रथम उन्होंने सन् १९४६ में इसे 'प्राप्त' किया, जबकि त्रावणकोर के कुछ ईसाई श्रोताओं को समझाने के लिए उन्होंने किसी अधिकृत रचना को प्रस्तुत करना चाहा था।

मेरी राय में उनके विकास में धर्म-निरपेक्ष और बुद्धि प्रधान प्रभावों का इन महान् धार्मिक रचनाओं की अपेक्षा गौण स्थान है और शायद अपने धार्मिक संस्कारों के अभाव के कारण ही 'गिरि-प्रवचन' और 'गीता' उनकी आत्मा पर इतना निर्णयात्मक प्रभाव छोड़ सके। वे इतने ही ईसाई थे, जितने बौद्ध; और एक हिन्दू और विशेषकर वैष्णव होने के नाते चाहते हुए भी वे गीता की धार्मिक मान्यता की उपेक्षा नही कर सकते थे। परन्तु फिर भी महाभारत और रामायण को ईश्वरी रचना मानने के लिए वे तैयार नहीं थे, ऐसा उन्होंने मुझसे कहा भी था। उनको वह "महत्वपूर्ण कथाएं" ही कहते थे। इस प्रकार दो धार्मिक पुस्तकें उनके निकट बिल्कुल नवीन और ताजे रूप में आई। उनके ऊपर इन पुस्तकों को न तो थोपा गया था, और न 'प्रमाणित सत्य' की तरह पेश किया गया था; इसके विपरीत, बिल्कुल स्वाभाविक रूप से अपनी अन्तरप्रेरणा की सहायता से उन्होंने इनकी खोज की।

प्रधानतया रस्किन का और तत्पश्चात् टाल्सटाय का उनके ऊपर धर्म-निरपेक्ष और बुद्धिवादी असर पड़ा था—और वे ही उन्हें सहयोगात्मक श्रम और चर्खे की ओर ले गए थे। अपनी आत्मा-कथा में उन्होंने रस्किन-संबंधी अपनी खोज

की विस्तृत व्याख्या की है, लेकिन सचमुच यह बड़े दुःख की बात है कि मैं उनसे स्वयं 'दी किंगडम ऑव गॉड इज़ विदिन यू' (ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर ही है) के विषय में उनके विचार न पूछ सका। मै विश्वास नहीं कर सकता कि अब इतना आगे बढ़ने पर यह उन्हें इतना प्रभावपूर्ण लग सकता, जितना कि यौवन में। यह सत्य है कि यदि कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि प्रत्येक मानव के अन्तर में है तो इस विषय में टाल्सटाय का उत्कृष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण बिल्कुल सत्य है; लेकिन टाल्सटाय की संपूर्ण तर्क-विधि सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के स्तर तक ही सीमित रही है और इसलिए यह समझना वास्तव में बहुत कठिन है कि व्यक्ति बिना दबाव या बाह्य-प्रतिबन्धों के कैसे चल सकता है। लेकिन इस विषय पर आज चर्चा नहीं करनी थी और न रविवार वाले विषय पर कि ईसा नजारथ का एक कलाकार था। यह उनका एक ख़याल था जो सन् १९२४ की मुलाकात के समय स्पष्ट हुआ था, और इसी विषय पर आगे चर्चा करने की मेरी इच्छा इस मान्यता पर निर्भर थी कि मुहम्मद और ईसा में उन्होंने जिस रचनात्मक सूझ का संकेत किया था वह बहुत अंश तक उनकी सूझ से मिलती-जुलती थी—यह सूझ भाग्य के साथ मेल के विशेष विचार से उत्पन्न हुई थी। उदाहरण के लिए मैंने उनसे यह पूछने का विचार किया था कि ईसामसीह यह जानते हुए भी कि यरूशलम जाने का मतलब उनकी मृत्यु है, वहां क्यों गए। मैं महात्माजी से दो बातों का अन्तर जानना चाहता था—भाग्य के साथ मेल अर्थात् महत्वपूर्ण बलिदान, मृत्यु द्वारा शिक्षा देना—और आत्महत्या। कलाकार ईसा के विषय में उनसे पूछने के दूसरे शब्दों में यह मानी थे कि मैं स्वयं इस प्रकार शहादत की ओर बढ़ती हुई उनकी अडिग गति के विषय में कुछ मालूम कर सकता।

मैं "कर सकता" का प्रयोग कर रहा हूं, क्योंकि इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है असलियत यह है कि हो सकता है अपनी असाधारण निर्मलता, मानसिक उच्चता, व्यापक स्थिर-बुद्धि, अथक व्यावहारिक कार्यशीलता एवं सामान्य ज्ञान के आग्रह के बावजूद, महात्माजी भाग्य के साथ अपने योग से पूर्णतया परिचित न हों। आखिर, वे सूझ-संपन्न व्यक्ति थे। इतिहास के महानतम व्यक्तियों में से एक थे और सूझ की प्राथमिक विशेषता यह है कि वह रचनात्मक शक्ति के अचेतन तल से उठती हुई प्रकट होती है। ऐसी दशा में यह संभव प्रतीत होता है कि उन्होंने जिस समय डांडी नमक-यात्रा आरम्भ की उस समय तक वे स्वयं उन ध्वन्यात्मक प्रतीकों के उन गुणों की विशेषताओं से परिचित नहीं

थे, जोकि विभिन्न भाषाओं, स्थान और काल से परे उसे प्राप्त हैं, यद्यपि उन्होंने यह भली प्रकार अनुभव किया था कि तमाम हिन्दुस्तानी भाषाएं इसके प्रभाव से ओत-प्रोत हैं और इस प्रकार हिन्दुस्तानी लोगों की जागृति में इनका बहुत अहम स्थान है। श्रीमती नायडू ने, जो कि नमक-यात्रा के समय और जेल में भी गांधीजी के साथ थीं, मुझे बताया था कि उस समय तक प्रतीक के रूप में वे स्वयं इसके प्रभाव से परिचित न थीं; और न गांधीजी ने यह बात उन्हें समझाई थी। यह एक बात थी जो संपन्न पहले हुई और उसकी सिद्धि बाद में प्राप्त हुई।

किसी तरह, इस विषय पर और सवाल-जवाब नहीं होने वाले थे। मेरा प्रयत्न यह था कि उनके साथ होने वाली बातचीत के समय ही इसका अर्थ मैं उसीमें से खोज लूं। किसी विषय के मूल्य-दान में इस प्रकार प्राप्त ज्ञान की बुनियाद बड़ी कमज़ोर मानी जा सकती है, फिर भी जिन परिस्थितियों के बीच उन बातों का श्रीगणेश हुआ, उनकी न तो व्याख्या ही की जा सकती है और न भौतिक स्तर पर उनका विश्वास ही किया जा सकता है। उन्हें आम विचार के अंश के रूप में ही पेश किया जा सकता है।

: १५ :

महात्माजी के तीन आदर्श

थाकिन नू

असहिष्णुता, लोभ और घृणा के अंधकार से आवृत्त इस विश्व में दो बड़ें संकटों के बावजूद महात्मा गांधी का जीवन और शिक्षा आज भी अद्वितीय प्रकाश-स्तंभ के समान चमक रहे हे। पच्चीस वर्षों के समय में दो विश्व-युद्धों द्वारा उत्पन्न विनाश और संहार राष्ट्रों के दिमाग में शायद संयम का भाव लाने में काफी समर्थ हो, ऐसा लोग सोच सकते हैं और इसलिए पवित्रता, आत्म-त्याग और अहिंसा के उन आदर्शों के पालन की ओर वे झुक सकते हैं, जिनका गांधीजी ने अपने जीवन में स्वयं पालन किया था। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के अंत से ऐसा प्रतीत होता है कि उस स्वार्थ, असहिष्णुता, और अनैक्य के पुनरागमन के लिए मानो इसने रास्ता साफ होने का संकेत दे दिया है, जिसके कारण स्वयं द्वितीय महायुद्ध हुआ था। महात्माजी ने अपने देश में उनके उच्च आदर्शवाद,और उपदेश

के व्यवहार ने आजादी की लड़ाई को एक आध्यात्मिक स्तर तक उठा दिया था और इस प्रकार आजादी के उसके दावे को सभी दृष्टियों से अजेय बना दिया था। इस व्यापक विश्व में, उनकी नसीहतों ने 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले कानून और पड़ोसी की वस्तु के प्रति मोह के विरुद्ध एक चुनौती पेश की, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मानव के कार्यों के पीछे यही प्रवृत्ति काम करती है। इस प्रकार एक पागल के हाथ से होने वाली उनकी मृत्यु ने केवल हिन्दुस्तान को ही नहीं, वरन् सारे विश्व को स्तंभित कर दिया। ऐसा लगा मानो, प्रेम और शांति के जिस भवन को उन्होंने बड़ी सावधानी से बनाकर खड़ा किया था, वह ढह जायगा, और जिस सामंजस्य को उन्होंने प्रोत्साहित किया था वह ओझल हो जायगा। परंतु उनके आशीर्वाद की ताकत हत्यारे के हाथ की मौत से ज्यादा मजबूत सावित हुई और महात्माजी की नसीहतें आज भी दुनिया के लाखों लोगों के जीवन और भावना को प्रेरणा दे रही है। लाखों आने वाली संतानें समय-समय पर उनसे प्रेरणा और उत्साह प्राप्त करेंगी।

महात्मा गांधी की सत्य के लिए भावना-प्रधान खोज और उद्देश्य के प्रति उनकी पूरी सचाई ने मुझे बचपन से ही उत्साहित किया है। मेरी यह तीव्र इच्छा थी कि मैं एक शिष्य के रूप में उनके आश्रम में कम-से-कम एक वर्ष तक रहूं, और इस प्रकार उनकी नसीहतों को ज्यादा पूर्णता के साथ अपने में पचा लेना चाहता था, जोकि प्रकाशित लेखों को पढ़कर कभी संभव नहीं हो सकता था। लेकिन परिस्थितियां कुछ और ही चाहती थीं। फिर भी उन्हें एक बार देखने के लिए मैं दृढ़प्रतिज्ञ था, और जवाहरलालजी द्वारा हिन्दुस्तान को देखने के कृपापूर्ण निमंत्रण ने मुझे वह सुअवसर दिया, जिसके लिए मैं वर्षों से इच्छा कर रहा था। मैंने महात्माजी को बर्मी किसान का टोप भेंट में दिया था, जिसे उन्होंने उदारतापूर्वक स्वीकार भी कर लिया था। बाद में मैंने कुछ समय उनकी इच्छा-नुसार वैसा ही दूसरा टोप खोजने में खर्च किया। अंत में जब वह मिला तो मैंने अपने मित्र ऊ. हॉन के संरक्षण में हवाई जहाज से उसे भारत भेजा; लेकिन खेद कि जिस समय एक अकिंचन शिष्य की यह भेंट लेकर हवाई जहाज दिल्ली के रास्ते में था, हत्यारे की गोलियों ने उनके दुर्बल शरीर को छेद दिया और मानव-जाति को अपने एक महानतम पुत्र से वंचित कर दिया। उस टोप को उनके ठंडे चरणों पर रखा गया और अपनी जनता की सेवा में प्रेम, पवित्रता और बलिदान की उनकी शिक्षाओं को मरते समय तक आचरण में लाते रहने के निश्चय का मेरे

लिए वह प्रतीक बन गया।

एक बौद्ध और सत्य का विनम्र शोधक होने के नाते महात्माजी के तीन आदर्शों का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। पहला था ब्रह्मचर्य का आदर्श, जिसका उन्होंने केवल उपदेश ही नहीं दिया वरन् अपने जीवन के अधिकतर भाग में उसका दृढ़ता के साथ पालन किया। अपनी पत्नी की स्वीकृति से अपने वैवाहिक जीवन को वासना से मुक्त करके यौन-संबंध को उन्होंने बिल्कुल खत्म कर दिया था और इस प्रकार जीवन में मैथुन पक्ष का उनके लिए कोई अर्थ नहीं रह गया था। मानसिक पवित्रता से दैहिक पवित्रता पैदा हुई थी। वे एक महात्मा थे, जिन्होंने अपनी वासना को बिल्कुल जीत लिया था।

दूसरा ऐसा आदर्श था, जिसका पालन बहुत लोग कर सकते हैं, यानी निर्धनता का आदर्श। साधुओं और संन्यासियों के लिए स्वीकृत संपत्ति से परे उनकी कोई निजी संपत्ति नहीं थी—अर्थात् सिर के ऊपर एक छत और अति साधारण कपड़े जो उनकी केवल धूप और सर्दी से रक्षा कर सकें। पिछले वर्षों में उनका खाना भी बहुत साधारण हो गया था—खजूर और बकरी का दूध। धन और आराम का उनके लिए कोई मूल्य नहीं रह गया था और इसलिए जीवन की नितान्त अनिवार्य आवश्यकता से परे जो कुछ ज्यादा था, उसे उन्होंने धीरे-धीरे छोड़ दिया था।

तीसरा आदर्श—जिसका मैं विशेष प्रशंसक था—अहिंसा का आदर्श था। महात्माजी के विचार से हिंसा का किसी प्रकार भी समर्थन नहीं किया जा सकता था। उनकी मान्यता थी कि हिंसा को अहिसा से, घृणा को प्रेम से और अहंकार को विनम्रता से जीतना चाहिए। यह सिद्धान्त दुनिया के लिए नया नहीं है। बुद्ध, ईसा एवं दूसरे धर्म-प्रवर्त्तकों द्वारा इसका उपदेश दिया जा चुका है। महात्माजी ने इस सिद्धान्त को ऐसी दुनिया में फिर से जीवित किया, जो इसे बिल्कुल भूल चुकी थी; जहां जंगल का कानून प्रचलित था; जहां ताकतवर जातियों ने बलपूर्वक कमजोर जातियों को अपने अधीन कर लिया था; जहां साम्राज्यवाद और पूंजीवाद टैंक और संगीनों के पीछे शरण लेकर मानवता को भयभीत कर रहे हैं। ऐसे राष्ट्र की व्यावहारिक समस्याओं के हल में इस सिद्धान्त को अमल में लाकर गांधीजी ने अपनी मौलिकता का सबूत दिया था—ऐसा राष्ट्र जो गुलाम होने के साथ-साथ बर्बर जातिवाद और आर्थिक पराधीनता का सदियों से शिकार था। हिन्दुस्तान बगावत कर सकता था और हिंसा का जवाब हिंसा से दे सकता

था, लेकिन इस तरह जीत अनिश्चित थी, पर प्रश्न सफलता और असफलता का उतना नहीं था। प्रश्न था कि इस प्रकार सशस्त्र क्रांति खून-खराबी, गरीबी और पीड़ा की जड़ें हमेशा के लिए जमा देती और इससे जातीय घृणा की जड़ें भविष्य के भीतर तक प्रविष्ट हो जातीं।

इन तीन सिद्धान्तों के उपदेश और अपने दैनिक जीवन में इनके अनवरत आचरण की सहायता से महात्माजी ने असंगठित हिन्दुस्तान के जनसामान्य को एक शक्तिशाली संगठन में बदल दिया। सफलतापूर्वक साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ाई लड़कर अपने देश के लिए स्वतंत्र देशों के बीच एक उचित स्थान प्राप्त किया। एक ऐसे राष्ट्र ने, जो अपने शानदार अतीत और दार्शनिकों की शिक्षा को भुला चुका था, जिसकी जिन्दगी पर स्वार्थ, अहं और फूट की लहरें छा गई थी, फिर एक बार वाणी प्राप्त की ओर अपनी ताकत का अनुभव कर भारतवर्ष को अपनी नींद की बेताबी से जगा दिया। इस सदी के पहले बीस वर्षों में हिन्दुस्तानी जनता की चेतना के अन्दर जो महान् परिवर्तन हुआ, उससे महात्माजी के आदर्श-की सामर्थ्य का अंदाज लगता है।

अपने जीवन के आरंभिक दिनों में महात्माजी ने सत्याग्रह अथवा अहिंसक अवज्ञा के शस्त्र का प्रयोग दक्षिण-अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों की समस्या के हल करने में किया। उन्होंने बैरिस्टर की बड़ी आमदनी को छोड़ दिया और हिन्दुस्तानियों का, अनुचित कानूनों के खिलाफ अहिंसक प्रतिरोध के मोर्चे पर नेतृत्व किया। कुछ हद तक इसमें सफलता मिली। पूर्ण सफलता अप्राप्य थी, क्योंकि सभी ने उस सिद्धान्त का सच्चाई के साथ पालन नहीं किया था और न लोग उस सीमा तक उन मुसीबतों को सहने के लिए तैयार थे, जिनको उन्होंने स्वेच्छा-पूर्वक सहन किया था। परन्तु इन्हें यह मालूम था कि उनका यह रास्ता अंत में जातीय गुलामी के बंधन को तोड़ने में अवश्य सफल होगा। दक्षिण-अफ्रीका के अपने आरंभिक दिनों में उन्होंने अहिंसक प्रतिरोध के आन्दोलन के साथ 'घृणा के अभाव' वाले सिद्धान्त को भी मिला दिया था। बोअर-युद्ध के समय उन्होंने रेड-क्रास-दल खड़ा किया और उसका संचालन किया। जोहन्सबर्ग में जब प्लेग का प्रकोप हुआ तो उन्होंने वहां एक प्लेग अस्पताल कायम किया। नेटाल के १९०८ के विद्रोह के समय स्ट्रेचर पर घायलों को ले जाने वाली एक टोली खड़ी की।

सन् १९१४ में वे हिन्दुस्तान आये। सन् १९१८ के अत्याचारी रौलट-एक्ट के बाद देश में अपने सत्याग्रह के व्यवहार के लिए एक व्यापक क्षेत्र उन्होंने पाया।

लेकिन, अफसोस कि उनके सभी अनुयायी उनकी अहिंसा को पूर्ण रूप देने के योग्य नहीं थे, और इसलिए अंत में पंजाब और दूसरी जगहों पर यह आन्दोलन असफलता में समाप्त हो गया।

बीज बोये जा चुके थे और इस प्रकार अहिंसा और असहयोग का विचार चारों ओर फैला। १९३० का देशव्यापी सविनय अवज्ञा-आन्दोलन नमक-कानून के सामूहिक प्रतिरोध से आरंभ हुआ और यदि इसने अंग्रेजों को भारत से हटने के लिए विवश नहीं किया तो भी इसने हिन्दुस्तान में साम्राज्यवादी शक्ति की नींव को हिला दिया और उनके यहां रहने के दिनों को सीमित कर दिया। यदि सभी हिन्दुस्तानियों ने पूरी तरह से अमल किया होता, तो अहिसक अवज्ञा का आन्दोलन असफल नहीं हो सकता था। मानव-स्वभाव की दुर्बलता के कारण यह आन्दोलन असफल हुआ, किसी उपाय की कमियों के कारण नहीं। अत में, यह वह बीज था, जिसे कि हिन्दुस्तानी नेता नें अपने लोगों के दिमाग में बोया था ; और जिसके कारण हिन्दुस्तान की आजादी की मांग को टाला नहीं जा सकता था।

महान् कार्यों के साथ महात्माजी का नाम सदा जुड़ा रहेगा। इनमें से एक हरिजन-उद्धार का काम है। हिन्दुस्तान एक छोर पर शासक-जाति के विरुद्ध लड़ाई लड़ रहा था, और दूसरे छोर पर अपने भीतर एक ऐसी रूढ़िवादी जाति प्रथा को छिपाये था, जिसके अनुसार 'दलित' वर्ग को उच्च लोगों की परछाईं छूने तक का अधिकार नहीं था। उनके मंदिरों और कुओं तक उनकी पहुँच वर्जित थी। यह बात महात्माजी की मानवता और विश्व-प्रेम के विरुद्ध थी। इसलिए उन्होंने अपनी प्रबल मानसिक शक्ति और संत-प्रभाव को हरिजन-उद्धार के काम में लगाया। हिन्दू धर्म को इस दोष से मुक्त करना उनके जीवन का कार्य बन गया था। उनकी मृत्यु होने तक यह आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ था, हालांकि उन्होंने कांग्रेस को इस बात के लिए विवश किया था कि वह अस्पृश्यता-निवारण को अपने कार्यक्रम का आवश्यक अंग माने। महात्माजी सभी इन्सानों को समान और बंधुतुल्य मानते थे——चाहे वे हिन्दू हों, चाहे मुसलमान, चाहे यहूदी। इस प्रकार उन्होंने जिस सुधार का बीजारोपण किया, वह समय आने पर अवश्य फल देगा और हरिजन-कार्य को सफलता मिलेगी।

महात्मा गांधी आज इस दुनिया में नहीं है, परन्तु जिन महान् आदर्शों की पौध को उन्होंने स्त्री-पुरुषों के मस्तिष्क में रोपा है, आचरण की पूर्ण पवित्रता, मित्र और शत्रु के प्रति प्रेम-व्यवहार ; निर्धनता एवं पुरुष-पुरुष के बीच और स्त्री-स्त्री के बीच वर्गभेद की पूर्ण समाप्ति——वह पौध सदा अमर रहेगी और मानवता को विश्व-प्रेम और विश्व-शांति के निकट ले जायगी।

: १६ :

उनका ज्योतिर्मय प्रकाश

सिबिल थार्नडायक

यह बात देखने में अजीब-सी मालूम पड़ती है कि किसी के धार्मिक मत का प्रचार किसी बाहर के दूसरे व्यक्ति द्वारा हो, ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसका मत बिल्कुल भिन्न हो। यह मेरा निजी अनुभव है और जिस व्यक्ति ने मेरे अपने चर्च-संबंधी विचारों को---चर्च ऑव इंग्लैण्ड---के सुलझाने में मुझे सहायता की,वह व्यक्ति थे गांधीजी। मेरा खयाल है कि मुझे यह बात इस तरह से कहनी चाहिए कि ईसाइयत को और अधिक स्पष्ट रूप से देखने में, किसी विशेष चर्च या ईसाईयत की किसी शाखा की अपेक्षा, उन्होंने मेरी अधिक सहायता की, और निश्चय ही यह बात उनके व्यापक विचार की सूचक है। उन्होंने अपने लेखों, राजनैतिक कार्यों एवं जीवन के प्रति अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण द्वारा 'धर्म' में आस्था की साक्षी दी है--ईश्वर में विश्वास की साक्षी दी है। जैसे-जैसे एक व्यक्ति 'नये टेस्टामेंट' बाइबिल को बार-बार पढ़ता है, उसे पता चलता है कि वे ईसा के उपदेशों के कितने नजदीक थे। प्रत्येक व्यक्ति को यह मालूम था कि गांधीजी प्रत्येक कठिन क्षण में एक सच्चे ईसाई का रुख अख्तियार करेंगे और इस प्रकार सच्चे अर्थ में वे हम ईसाइयों के मार्ग-दर्शक बन गये थे। बचपन से मेरे लिए यह एक समस्या थी कि किस तरह एक पंथ, एक मत विशेष को यह निश्चय हो सकता है कि उसके मौजूदा रूप में पूर्ण सत्य छिपा है, क्योंकि कभी-कभी हमें यह देखने को मिला है कि दूसरे लोगों के पंथ ने किस तरह हमारी जिन्दगी के रास्ते में एक 'मार्ग-संकेत' का काम किया है। गांधीजी ने मेरे लिए यह बात और स्पष्ट कर दी।

उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी स्मृति में होने वाली वेस्टमिन्स्टर एबे गिरजाघर की प्रार्थना कितनी अद्भुत थी, यह बात अनुभव करने से मैं अपनेको रोक नहीं सकता। उस दिन विभिन्न पंथों के ईसाई वहां इकट्ठे थे---हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान और बहुत-से दूसरे धर्मों के लोग भी वहां मौजूद थे। मैं केवल उनकी बात कह रही हूँ, जिन्हें मैं जानती थी। हम सब एक ही उद्देश्य के लिए वहां इकट्ठे हुए थे---ईश्वर को यह धन्यवाद देने के लिए कि उसने हमें एक संत-जीवन को जानने की सुविधा प्रदान की। इसीके बाद मेरे एक हिन्दुस्तानी मित्र ने मुझसे कहा कि

कितना अच्छा होता, यदि हम लोग कभी-कभी हो सके तो वर्ष में एक बार ऐसी प्रार्थना में शामिल होकर उन बातों पर विचार कर सकते, जिनपर हम सब सहमत हैं और थोड़ी देर के लिए अपने मतभेदों को भूल जाते, जैसाकि गांधीजी ने किया था। दूसरे लोगों के साथ एक ईश्वर के प्रति पितृ-भाव उत्पन्न करने में, मानवमात्र के प्रति भाईचारे की भावना बढ़ाने और अन्य ऐसी ही बातों की एकता का अनुभव कराने में उन्होंने कितनी सहायता की; और हमें यह भी बताया कि मतभेदों के प्रति झगड़ते हुए भी हमें इस तथ्य को ग्रहण करना चाहिए। गांधीजी ने मेरे चर्च के और भी बहुत-से सिद्धांतों को समझने में मेरी सहायता की। उदाहरण के लिए कुमारी मेरी की शिक्षा, चिन्तन, दोष की आत्म-स्वीकृति आदि विषयों को मैं पुराने रूढ़िवादी चर्च के तरीके से उतना नहीं समझ सकी, जितना उनके दृष्टिकोण की सहायता से।

आत्मा और पदार्थ के एकीकरण के विषय में उनकी शिक्षा, चिन्तन, और प्रार्थना के शांत क्षणों के प्रति उनका आग्रह, उनकी विनम्रता आदि ऐसी सहायताएँ हैं, जिन्हें हमने इस संत से प्राप्त किया है और जिनमें व्यक्तिगत रूप से एक न होने पर भी, हम उनसे अच्छी तरह परिचित हैं। उनके लेख और उनकी बातें हमारे लिए इतनी ममता और सच्चाई से भरी हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को पढ़ते समय ऐसा लगता है, मानों वे उससे बातें कर रहे हों। हर व्यक्ति यह आसानी से जान सकता था कि कठिन समस्या सामने आने पर वे किस तरह की सलाह देंगे।

हममें से बहुतों के लिए वे ईसा की व्याख्या के मूर्त्त रूप थे, और उनकी जिन्दगी के तरीके के प्रति जो कृतज्ञता हम अनुभव करते हैं, मुझे विश्वास है कि वह व्यक्तिगत रूप से हम सबको उस ईश्वरीय ज्ञान के प्रयत्न की दिशा में आगे बढ़ने में सहायता देगी, जो हमारे काम में, हमारी राजनीति में एवं हमारे व्यक्तिगत सबंधों में सदा लक्षित होता है।

उनकी मृत्यु गुज़र जाना नहीं है, बल्कि आगे बढ़ जाना है। वे उसी रास्ते पर आगे बढ़ ही रहे हैं, जिसपर चलकर संतों ने हमारी जीवन-यात्रा को अधिक व्यवस्थित और एक अच्छी दिशा की ओर जाने के योग्य बनाया था। जो उनके मित्र थे, आज भी अपनी अच्छाइयों में उनकी झलक देखते हैं, और हम पापियों और झगड़ालुओं को अपने उदाहरण और अपने ज्योतिर्मय प्रकाश से वे आज भी सहायता दे रहे हैं।

: १७ :

गांधीजी की संसार को देन

रॉय वाकर

वस्तुओं को देखने का शायद हमारा विचित्र तरीका है। जब हम किसी हिन्दुस्तानी और अंग्रेज को साथ-साथ देखते हैं तो सबसे पहले उनके शरीर और रंग का भेद हमारे सामने आता है और सबसे अंत में मानसिक और भावना-संबंधी प्रतिक्रिया में निहित तात्त्विक एकता, जिसकी कि पुष्टि एक अति अनुभवी द्रष्टा, लार्ड पेथिक लारेन्स ने की है, ठीक यही अवस्था भारतीय और पश्चिमी संस्कृति के विषय में है। हमारे नज़दीक पहले उनका भेद आता है, और अक्सर हम उस गहराई तक जाने की कोशिश नहीं करते, जहां अन्तर्दृष्टि और आकांक्षा का गठबंधन पाया जाता है। फिर भी संस्कृति की भाषा से तुलना की जा सकती है। मानव-इतिहास के एक निश्चित युग में कुछ लोगों या कुछ जातियों के लिए यह आदान-प्रदान का एक सहज साधन रही है और भाषा की विचार पर प्रतिक्रिया होती है, जिससे कि उसकी अधिक स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति हो सके। इसलिए यह व्यापक रूप से सत्य है कि दुनिया की तमाम भाषाएँ महत्वपूर्ण सत्यों की अभिव्यक्ति के साधन उपलब्ध करती हैं। हमारे युग की सबसे बड़ी आवश्यकता एक ऐसे भाषा-शास्त्री की है, जिसे कि सांस्कृतिक दृष्टि से बहुभाषी कहा जा सके ; जो केवल पांडित्य-पूर्ण न हो, वरन् जिनके अन्दर पूर्व और पश्चिम को एक दूसरे के सामने दुभाषिये के समान रखने की सूक्ष्म दृष्टि हो।

योंही कालान्तर से परम्पराओं के पारस्परिक संघर्ष में भिन्नत्व खत्म हो रहा है। इसी बात को हम इस तरह रख सकते हैं कि बगीचे के सभी फूलों में एक अपना सौंदर्य है, लेकिन माली खोज करके सभी फूलों की एक ऐसी कलम तैयार करे, जिससे वास्तव में एक सुंदर फूल तैयार हो सके। अधिक स्पष्ट रूप करने के लिए कह सकते है कि विभिन्न फूलों को खत्म करने के लिए एक नया फूल तैयार करें। बड़ा खतरा हठधर्मी से भरी सांस्कृतिक प्रांतीयता में है, जिसका गौरव रूढ़िवादी रस्मों और विश्वासों तक ही सीमित है और जिसे मानने वाले समझते हैं कि उनकी विशेष सभ्यता ही "सबसे अच्छी" है और वह भी केवल उनके लिए नहीं, वरन प्रत्येक व्यक्ति के लिए। पश्चिम में तो यह आम दोष है। महात्मा गान्धी के विश्व-

संदेश का खुले दिल से स्वागत करने के बजाय उसका विरोध करने की भावना वहां बहुत तीव्र है। "संदेश प्रचार की बात हिन्दुस्तान में अधिक सफल हो सकती है", लोग कहेंगे, "लेकिन इसे फैलते हुए वे यहां नहीं देख रहे हैं।" अथवा "अंग्रेजों पर अहिंसा का प्रयोग इसलिए सफल हुआ, क्योंकि हम लोग अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु और न्यायप्रिय जाति हैं। यही प्रयोग नाजियों के विरुद्ध अथवा सामूहिक विनाश के अणु बम सरीखे हथियारों के खिलाफ काम में नहीं लाया जा सकता है।"

इसपर भी गांधीजी इतने पूर्व के नहीं हैं, जितने विश्व के। उनका दर्शन और ढंग-ढांचा निश्चित रूप से मानवमात्र के उपयुक्त है ; क्योंकि सांस्कृतिक, सामाजिक और शैल्पिक भिन्नताएँ जहां जीवन में निर्णयात्मक महत्व रखती हैं, वहीं उनकी अपेक्षा उनके कार्य का धरातल अधिक गहरा होता है। गांधीवादी शांतिवाद को केवल उनके हिन्दुस्तानी होने के कारण असंगत मानना ठीक वैसी ही बात है, जैसी कि मार्क्सवाद का केवल मार्क्स के जर्मन होने के नाते विरोध करना। पांच प्रश्न बिल्कुल साफ हैं, परन्तु उन्हें बहुत कम पूछा गया है। यह प्रश्न निर्णय करेंगे कि गांधीवादी उदाहरण का विश्व-महत्व है अथवा नहीं :

१. गांधीजी की मान्यताओं का क्या आधार है ?
२. वे मान्यताएँ क्या थीं ?
३. हिन्दुस्तान के बाहर दुनिया के बारे में गांधीजी को क्या कहना था ?
४. उचित राय की कसौटी क्या है ?
५. व्यक्तिगत चेतना की क्या प्रतिक्रिया होती है ?

मैं यह बताने की कोशिश करूँगा कि इन प्रश्नों के उत्तर किस दिशा में खोजे जा सकते हैं।

गांधीजी एक हिन्दू थे, लेकिन उनकी स्थिति के लिए यह जरूरी था। "हालांकि धर्म बहुत-से हैं; परन्तु सत्य धर्म एक ही है।" "मेरा हिन्दू धर्म पंथवादी नहीं है। जहांतक मैं जा सकता हूँ, इसके भीतर इस्लाम के, ईसाई धर्म के, बौद्ध धर्म के और यहूदी धर्म के सभी श्रेष्ठ तत्त्व उपस्थित हैं।" इसलिए यह कहना कि महात्मा-जी के जीवन पर 'नये टेस्टामेंट' 'बाइबिल' और अन्य धार्मिक पुस्तकों का गौण प्रभाव पड़ा है, गलत है। साहित्यिक दृष्टि से तीन अन्य रचनात्मक प्रभाव उनके जीवन पर पड़े हैं : टाल्स्टाय का ईसाई शांतिवाद, जिसकी व्याख्या उन्होंने "दी किंगडम आफ गाड विदिन यू" (तुम्हारे भीतर ईश्वरीय राज्य) में की है ; रस्किन द्वारा लिखित 'अन-टू दि लास्ट' में उल्लिखित काल्पनिक साम्यवाद का; और सविनय

अवज्ञा पर लिखे गये थॉरो के निबंधों में वर्णित रहस्यवादी अराजकतावाद, जिसने गांधीजी को केवल नाम ही नहीं दिया, वरन् सीधी चोट करने वाला यह प्रभावशाली अहिंसक तरीका भी दिया। यह एक ऐसा तथ्य है, जिसका महत्व दुनिया के मौजूदा संकट से और बढ़ जाता है। इस महान् भारतीय पर तीन आधुनिक प्रभाव डालने वालों में एक रूसी, एक अंग्रेज और एक अमरीकी था। इसके अलावा गांधीजी का विकास हिन्दुस्तान में नहीं, लंदन और अफ्रीका में हुआ था। लंदन में ही प्रथम बार उन्होंने अपने मित्र सर एडविन एरनाल्ड द्वारा अनुवादित गीता अंग्रेजी छंदों में पढ़ी और वहीं माता को दिये गए वचन के कारण शाकाहारी होने की अपनी प्रतिज्ञा को अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त छोड़ने का विचार रखने वाला विचार छोड़ एक नया सिद्धान्त—व्यक्ति सिद्धांत और चुनाव से शाकाहारी बनता है—स्वीकार किया और यह रूपान्तर उनमें हेनरी साल्ट द्वारा लिखित 'प्ली फार वेजीटेरियनिज़्म' (शाकाहार के पक्ष में) एवं अन्य शाकाहारी पुस्तकों को पढ़ने और लंदन की शाकाहारी सोसायटी के संसर्ग के कारण हुआ। इस शाकाहारी सोसायटी की कार्यकारिणी में वे स्वयं रहे थे और इसके साप्ताहिक पत्र में ही उनकी प्रथम प्रकाशित रचना सन् १८९१ में निकली थी। दक्षिण-अफ्रीका में भारतीयों के अधिकार के लिए चलने वाले लंबे संघर्ष के समय में ही, जोकि कुछ समय के लिए प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के पूर्व ही रुका था—उनके विचार परिपक्व हुए थे और उस छोटी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' के बाद, जो कि सन् १९०९ में प्रकाशित हुई थी, और जिसे उन्होंने दक्षिण-अफ्रीका की वापसी यात्रा के समय लिखा था, तत्त्वतः और कोई नई बात नहीं हुई। गाधीजी के अधिकांश संघर्ष यूरोपीय, विशेषकर अंग्रेजी विरोधियों के खिलाफ थे। केवल इसी बात से वे पश्चिमी जगत के लिए बहुत संगत प्रतीत होते हैं, क्योंकि इससे संघर्ष के हल में अहिंसक उपायों के प्रति पश्चिमी राजनीतिज्ञों एवं लोगों की प्रतिक्रिया का पता लग जाता है।

यहां गांधीजी के दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन नहीं करना है, लेकिन उनकी यह मान्यता कि "धर्म एक ही है", बड़ी बुनियादी बात है। "मैं राजनीति में उसी सीमा तक प्रवेश करता हूँ, जहांतक वह मेरी धार्मिक प्रवृत्ति के विकास में सहायक है", ऐसा गांधीजी ने स्वयं कहा है और आध्यात्मिक तत्त्व के कारण ही उनके राजनैतिक निर्णय न्यायपूर्ण हैं—केवल विषय की उपयोगिता के कारण नहीं। उनका यह आध्यात्मिक तत्त्व विश्व-व्यापी उपयोगिता रखता है। किसी निर्णय विशेष के आत्मिक महत्व को समझने के लिए संघर्ष की परिस्थितियों का अध्ययन

करना आवश्यक होगा। यदि एक बार देख लिया गया, तो सारभूत मानवीय दृष्टि-कोण को पहचानकर उसे पलटा भी जा सकता है। 'एक दक्ष राजनीतिज्ञ' के रूप में गांधीजी की आलोचना, जिसमें तत्त्वतः व्यापक मानवीय समस्याओं के हित की संगति का अभाव हो, और जो संत और पार्टी-नेता का मिश्रण-मात्र हो, बिल्कुल गलत है। निस्संदेह गांधीजी के बहुत-से निर्णय—असहयोग आन्दोलन को रोकने से लेकर जो कि धीरे-धीरे सविनय अवज्ञा की ओर बढ़ रहा था, बंगाल के गांवों में काम करने के लिए उस समय चले जाने तक जबकि दिल्ली में केबिनेट मिशन के साथ हिन्दुस्तान के भाग्य का फैसला हो रहा था—ऐसे निर्णय हैं, जिन्हें केवल राजनैतिक औचित्य के विचार से नही समझा जा सकता है। गांधीजी विलियम ब्लैक के मत को स्वीकार कर सकते थे—"धर्म राजनीति है और राजनीति एक भाईचारा।"

हिन्दुस्तान से बाहर की दुनिया के लिए और खास तौर से पश्चिम के संबंध में कही गई गांधीजी की बातों को पढ़कर बिल्कुल संदेह नहीं रहता कि उनकी मान्यताएँ और विश्वास दूसरी सभ्यताओं के लिए लेशमात्र भी असंगत थीं। यह समझना बहुत जरूरी है कि उनका स्वदेशी का सिद्धान्त, अथवा एकदम उपस्थित वातावरण पर निर्भर रहना और उसके भीतर काम करना ऐसा अनुशासन था, जिसने उन्हें उनके सार्वजनिक जीवन के अधिकांश भाग में केवल हिन्दुस्तान के विषयों तक ही राय और कार्य करने के लिए सीमित कर रखा था; परन्तु ऐसा करते हुए भी उन्होंने व्यापक विश्व को हमेशा अपने सामने रखा। अपनी मृत्यु से चन्द महीनों पहले उन्होंने 'हरिजन' में जो कुछ लिखा था, वह प्रारम्भिक २० वर्षों में लिखे गये 'यंग इंडिया' के लेखों से बिल्कुल भिन्न नहीं था। "एशियन कान्फ्रेंस के मौके पर मैंने कहा था कि मुझे आशा है कि भारत की अहिसा की सुगंध समस्त संसार में फैल जायगी। मुझे प्रायः आश्चर्य होता है कि क्या यह आशा साकार हो सकेगी?" सन् १९३१ में अपने इंगलैण्ड-भ्रमण के समय आंशिक कार्य-पद्धति (Dole System) के प्रश्न पर अंग्रेजी बेरोजगारों को उन्होंने असहयोग की सलाह दी थी और हिन्दुस्तान लौटते समय स्वीज़रलैण्ड में पेरी सेरीसोल से कहा था कि "यूरोप निवासी अहिंसक कार्य के योग्य हैं, लेकिन जिस तरह के नेतृत्व की समय को आज आवश्यकता है, उसकी यहां कमी है।" बाद में मध्य यूरोप के यहूदियों को नाजी जुल्म के विरुद्ध उन्होंने सामूहिक अहिसा की सलाह दी थी। सन् १९३९ में उन्होंने जेकोस्लाविया को जर्मन आक्रमण के विरुद्ध अपनी आजादी की रक्षा अहिंसक उपायों से करने की

सलाह दी थी और बाद में उसी वर्ष पेत्रेवस्की की अपील पर उन्होंने पोलैण्ड के सामने वही सुझाव रखे थे। सन् १९४० में युद्धरत इंगलैण्ड से एक अपील की थी, जिसमें उससे यह कहा गया था कि न्याय के लिए वह शस्त्रयुद्ध के स्थान पर अहिंसक संघर्ष को अपनावे। सानफ्रांसिस्को में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के हेतु इकट्ठी होनेवाली बड़ी ताकतों से जो अपील उन्होंने की थी, उसका सार और अणु बम का उनका एकमात्र उत्तर अहिंसा था। निस्संदेह गांधीजी अपने विश्वासों को एशिया की सीमा तक ही सीमित नहीं मानते थे।

पर क्या उनका यह विचार ठीक था ? थोड़े दिन पहले 'टाइम्स' के 'लिटरेरी सप्लीमेंट' ने श्री राधाकृष्णन् द्वारा की गई अहिंसा की समीक्षा पर टीका करते हुए लिखा था, "इस बात में हम निश्चित ही पूर्व से कुछ सीख सकते हैं. . . ."आल्डस हक्सले ने अपने 'साइंस, लिबर्टी एण्ड पीस' (विज्ञान, स्वतंत्रता और शांति) नामक निबंधों में गांधीजी के प्रति धारण किये गए अपने मौन का सुधार किया है और इसमें उन लोगों को भी जवाब दिया है,"जो यह सोचते हैं कि गांधीजी के कार्यों का औद्योगिक पश्चिम की ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक स्थिति के सामने उल्लेख करना असंगत है।" और साथ ही उन्होंने यह भी घोषणा की है, "आगे आने वाले दिनों में यह बहुत संभव है कि पश्चिम में यही सत्याग्रह अपनी जड़ें जमा ले।" डा. गोपीनाथ धावन ने 'दी पोलीटिकल फिलास्फी ऑव महात्मा गांधी' (१९४६) (महात्मा गांधी का राजनैतिक दर्शन) नामक पुस्तक में यह मत व्यक्त किया है, "राजनैतिक व्यवहार और राजनैतिक विचार के क्षेत्र में हिन्दुस्तान की यह सर्वदा मौलिक देन है।" "व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा सामुदायिक संबंधों में आजकल संघर्ष और हिंसा का पुराना रोग हो गया है और आज तो सभ्य जीवन के अस्तित्व को ही इस बात से खतरा उत्पन्न हो गया है। सत्याग्रह के द्वारा गांधीजी ने दुनिया को अन्तर्राष्ट्रीय आक्रमण और शोषण के क्षेत्र में रचनात्मक प्रकार से लड़ने की एक पद्धति दी है।" एक ऐसे मनुष्य के जीवन और उद्देश्यों को समझने के लिए, जो हर नाप से भी इस युग की दुनिया के महापुरुषों में से एक था, और जो मेरी कसौटी के हिसाब से तो महान्तम था, मूल्यांकन और चर्चा, ये दो महत्वपूर्ण पद्धतियां हैं, परन्तु जिस भयंकर और शानदार तरीके से उनकी मृत्यु हुई है, उससे तो उनके शब्द हमारे दिलों में अधिक सच्चाई और गहराई के साथ प्रवेश कर गए हैं और उनकी व्यावहारिक ताकत भी बढ़ गई है। "भावात्मक सत्य का उस समय तक कोई मूल्य नहीं है जबतक कि इसका प्रचार करनेवाले व्यक्तियों के भीतर

यह स्वयं स्थान न कर ले और वे स्वयं इसके लिए अपने प्राण तक देने को तैयार न हो जायँ।" अबतक पश्चिम में केवल चन्द प्रतिभाशाली योग्य व्यक्तियों के निजी जीवन में ही नहीं, वरन् हमारे युग के ऐतिहासिक संघर्षों में, अहिंसा का यह सत्य किस सीमा तक सफलतापूर्वक लोगों के हृदयों में स्थान पा सका है? मेरे विचार से इसमें कोई संदेह नहीं कि इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण हमें नारवे के लोगों के उस शानदार प्रतिरोध में मिलता है, जोकि उन्होंने क्विसलिग-सत्ता और जर्मनी की अधिकार करने वाली सेनाओं के विरुद्ध सन् १९४०–४५ में किया था। निस्संदेह यह प्रतिरोध सर्वप्रथम एक छोटे सैनिक संघर्ष से शुरू हुआ था और बाद में बाहरी ताकतों द्वारा संगठित तोड़-फोड़ और आतंकवाद भी इसके साथ मिल गए थे। फिर भी, गांधीजी के मूल्यांकन संबंधी मेरे लेखों में ही नहीं, वरन् पार्लियामेंट के एक अशांतिवादी सदस्य श्री विलियम वारबे ने अपने विशाल ग्रंथ में यह स्वीकार किया है कि यह प्रतिरोध प्रधानतया अहिंसक था और इसे काफी सफलता भी मिली थी।

मेरे पांच प्रश्नों में से अंतिम प्रश्न था, नैतिकता का क्या असर होता है? एक प्रकार से सब प्रश्नों से यह अधिक महत्वपूर्ण है। गांधीजी हमेशा हमारी टीकाओं, भाष्यों और समर्थनों से घिरे रहे हैं और साथ ही हमारी प्रशंसाओं से ढके रहे हैं। हमारा उद्देश्य अच्छा है, लेकिन फिर भी हम आपके और व्यक्ति के बीच आ ही जाते हैं और यह बात अच्छी नही है। सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप स्वयं उसकी खोज करें, जो गांधीजी ने लिखा है। गांधीजी पर सी. एफ. एन्ड्रूज अथवा अन्य व्यक्तियों के द्वारा प्रकट किये गए विचार उपलब्ध हैं। उन पुस्तकों के कुछ पृष्ठ पढ़ते ही आप यह जान जायंगे कि जिस व्यक्ति के मस्तिष्क और व्यक्तित्व की आप खोज करने निकले है, उसके अन्दर सीधे और सहज तरीके से हमारे भीतर उपस्थित मानवता से बात करने का एक दैवी गुण था और वह गुण केवल साहित्यिक नहीं था। अपने इसी अपूर्व गुण के कारण वे दुनिया की सर्वमान्य हस्ती बने। पश्चिम में अहिंसा की शक्ति को थपथपाने की बहुत चर्चा हुई है, जिसमें अधिकांश चर्चा रूढ़ि और अन्ध-विश्वासों से भरी है। बहुत कम राजनीतिज्ञों और धार्मिक नेताओं ने यह समझने की चिन्ता की है कि गांधीजी की असली ताकत मानव-स्वभाव के श्रेष्ठतम अंश से अपील कर सकने की क्षमता में निहित थी। सामान्य लोगों का यह अटूट विश्वास था कि गांधीजी ने युद्ध का हमेशा के लिए त्याग कर दिया है और अहिंसा उनका सर्वकालीन धर्म है। इसी अटूट विश्वास के कारण वे अपने

कार्यों में लोगों का समर्थन प्राप्त कर सके थे। आज एक ओर अणु बम और कीटाणु बम सभी को महाविनाश से भयभीत कर रहे हैं और दूसरी ओर रक्षात्मक युद्ध का आखिरी निशान तक हमेशा के लिए ओझल हो गया है—ऐसे तेजी से गुजरने वाले जमाने में दुनिया पूर्व और पश्चिम में ऐसे आध्यात्मिक और राजनैतिक नेताओं की प्रतीक्षा कर रही है जो गांधीजी से अहिंसा की उस अनिवार्य शर्त को सीखने की कोशिश करें, जिसपर मानव-जाति के अक्षुण्ण हित और भलाई के शब्द खुदे हैं।

: १८ :

वह पुरुष !

एलबर्ट आइन्सटीन

गांधीजी अपनी जनता के ऐसे नेता थे, जिसे किसी बाह्य सत्ता की सहायता प्राप्त नहीं थी। वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जिसकी सफलता न चालाकी पर आधारित थी और न किसी शिल्पिक उपायों के ज्ञान पर, बल्कि मात्र उनके व्यक्तित्व की दूसरों को कायल कर देने की शक्ति पर ही आधारित थी। वे एक ऐसे विजयी योद्धा थे, जिसने बल-प्रयोग का सदा उपहास किया। वे बुद्धिमान, नम्र, दृढ़-संकल्पी और अडिग निश्चय के व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी सारी ताकत अपने देशवासियों को उठाने और उनकी दशा सुधारने में लगा दी। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिसने यूरोप की पाशविकता का सामना सामान्य मानवी यत्न के साथ किया और इस प्रकार सदा के लिए सबसे ऊँचे उठ गए।

आने वाली पीढ़ियां शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि गांधीजी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा।

: १९ :

अहिंसा के दूत

माउण्टबेटन

महात्मा गांधी की मृत्यु सभ्य संसार के हर कोने में करोड़ों व्यक्तियों के लिए एक व्यक्तिगत सदमे की तरह ही थी। सिर्फ उन लोगों को ही नहीं, जो उनके जीवन

भर उनके साथ काम करते रहे, या मेरे जैसे लोगों को, जो उन्हें अपेक्षाकृत कम समय से जानते थे, बल्कि उन लोगों को भी जो उनसे कभी नहीं मिले, जिन्होंने कभी उनके दर्शन नहीं किये थे और जिन्होंने उनकी प्रकाशित पुस्तकों का एक शब्द भी नहीं पढ़ा था, ऐसा लगा, मानो उनका कोई मित्र बिछुड़ गया हो।

जिस संबोधन के साथ वह मुझे पत्र लिखा करते थे, वह था, "प्रिय मित्र", और मैं भी इसी संबोधन के साथ उन्हें उत्तर दिया करता था क्योंकि स्पष्टतः उन्हें संबोधित करने का यही सबसे ठीक तरीका था और मैं और मेरा परिवार सदा इसी प्रकार उनके बारे में सोचेगा।

मैं गांधीजी से पहली बार सन् १९४७ के मार्च के महीने में मिला था, क्योंकि भारत पहुँचते ही मेरा पहला काम यह था कि मैं उन्हें पत्र लिखूं और इस बात का सुझाव दूं कि हम जल्दी-से-जल्दी मिलें—और अपनी इस पहली मुलाकात में हमने यह निश्चय कर लिया कि आगे आने वाली महान् समस्याओं का सामना करने में एक-दूसरे की सहायता करने का सर्वोत्तम तरीका व्यक्तिगत संबंध है, जिसे लगातार कायम रखा जाय। एक महीना हुआ कि वे उस प्रार्थना-सभा के बाद, जिसमें उन्होंने यह घोषणा की थी कि यदि सांप्रदायिक एकता पुनस्स्थापित न हुई तो वे आमरण अनशन कर देंगे, मुझसे मिलने के लिए आये। उनके जीवन में अंतिम बार मैं उनसे तब मिला, जब मैं और मेरी पत्नी उनके अनशन के चौथे दिन उनके दर्शन करने गए। हमारी पारस्परिक जान-पहचान के इन दस महीनों में हमारी मुलाकातें कभी औपचारिक भेंट की तरह नहीं हुईं—वे दो मित्रों की बातचीतें थीं—और हम लोग विश्वास और समझ की एक सीमा प्राप्त कर चुके थे, जो सदा एक चिरस्मरणीय संस्मरण रहेगी।

शांतिपुरुष, अहिंसा के दूत, गांधीजी धर्मांधता के विरुद्ध—जिसने भारत की नवार्जित स्वाधीनता के लिए खतरा पैदा कर दिया है—संघर्ष में हिंसा द्वारा शहीद की भाँति मरे। वे इस बात को समझ चुके थे कि राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्य को हाथ में लेने से पहले इस कोढ़ को मिटाना होगा।

हमारे महान् प्रधान मंत्री, पंडित नेहरू ने हमारे सामने एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष राज्य का लक्ष्य रखा है, जिसमें सभी लोग उपयोगी और सृजनात्मक जीवन बसर कर सकेंगे, जिसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित सही मानों में प्रगतिशील समाज का विकास हो सकता है। गांधीजी की स्मृति में हमारी सर्वोत्तम श्रद्धांजलि यही है कि हम अपने दिलो-दिमाग़ और शरीर को स्वाधीनता की

नींव पर खड़े ऐसे समाज के निर्माण में लगा दें, जिसे अपने जीवन-काल में उन्होंने इतना पुख्ता कर दिया था। आज ही यदि गांधीजी की दर्दनाक मृत्यु से हम अपने पारस्परिक मतभेद भूल जायं और सतत तथा संगठित प्रयास में लग जायं तो यह गांधीजी की अपने देशवासियों के लिए, जिन्हें वे इतना प्यार करते थे, अंतिम और सबसे महान् सेवा होगी। केवल इसी प्रकार उनके आदर्शों को प्राप्त किया जा सकता है और भारत अपनी विरासत को पूरी तरह हासिल कर सकता है।

: २० :

प्रेम और शांति के दूत

हॉरेस अलैक्जेण्डर

महापुरुषों का देहावसान उनके पीछे रहे लोगों के लिए हमेशा दुःख की बात होती है। लेकिन महात्मा गांधी की मृत्यु पर हमारा शोक कहीं बढ़कर है—केवल उस आदर्श के लिए नहीं, जिसके कि वे प्रतीक थे, बल्कि इसलिए कि जिस प्रकार उन्होंने अपने प्राण त्यागे, वह बहुत दर्दनाक था। सत्य, प्रेम और अहिंसा के दूत की हत्या अपने ही एक देशवासी के हाथों हो, यह निःसंदेह इस बात का सबूत है कि देश में ऐसे तत्त्व मौजूद हैं, जिन्होंने उनकी शिक्षाओं को अंगीकार नहीं किया है। पिछले डेढ़ वर्ष में हमारे देश में घटने वाली घटनाएँ इस बात की साक्षी देंगी कि हम उस आदर्श पर दृढ़ रहने में असमर्थ रहे हैं, जिसके लिए हमारे महान् शिक्षक एक चौथाई शताब्दी से भी अधिक काल से हमसे कह रहे थे।

एक ऐसे विश्व में, जहां नूतनतम वैज्ञानिक खोज जनता को हानि पहुँचाने की संभावनाओं से परिपूर्ण है, गांधीजी परमाणु शक्ति के श्रेष्ठतम स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होंने संसार को यह दिखा दिया कि किस प्रकार अहिंसा-पथ की अनुगामिनी एक निरस्त्र जाति भयानक हिंसा के मुकाबले में भी अपनी आजादी प्राप्त कर सकती है। उनके नेतृत्व में भारतीय जनता ने राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए सफलतापूर्वक जो संघर्ष चलाया, वह अपने लगभग संपूर्णतः अहिंसात्मक स्वरूप के लिए सदा विश्व-इतिहास के श्रेष्ठतम अध्यायों में रहेगा। लेकिन खुद गांधीजी के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता को प्राप्त करना ही एकमात्र साध्य नहीं था और हाल के महीनों में वे भारत में रहने वाली विभिन्न जातियों में शांति और सद्भावना

क़ायम करने में लगे हुए थे। यह एक ऐसा आदर्श है, जिसपर वे जीवन भर कायम रहे। यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी कि वे तो समस्त संसार में शांति रखने के लिए उत्सुक थे, पर स्वाभाविक रूपेण उनकी गतिविधियां भारत तक ही सीमित रहीं।

वास्तव में यह बड़ी दर्दनाक बात है कि खुद गांधीजी—जिन्होंने जीवन भर ऐसे कायरतापूर्ण आक्रमणों से दूसरों के जीवन की रक्षा की—के जीवन का अन्त इतने निर्दयतापूर्ण तरीके से हुआ। लेकिन शायद यह परमेश्वर की इच्छा ही थी कि गांधीजी की इस प्रकार हत्या की जाय, ताकि हम, जो आज उनके वियोग पर शोक कर रहे हैं, अहिंसा और सत्य में उनके विश्वास को ग्रहण कर सकें। गांधीजी की मृत्यु पर खुद-ब-खुद हुए शोक-प्रदर्शनों का इस उद्देश्य के लिए पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए, जो जीवन भर उन्हें इतना प्रिय था। अगर हम, जो गांधीजी के बाद यहां रह गए हैं, उनके आदर्शों से अपने को प्रेरित नही करते तो ये सारे प्रदर्शन व्यर्थ हो जायंगे।

इतिहास में ऐसा दृष्टांत ढूंढ़ने के लिए हमें अपना ध्यान कोई दो हजार वर्ष पहले की ओर ले जाना होगा, जब ईसामसीह ने प्रेम और शांति के लिए अपने जीवन का बलिदान किया था। ईसा की भांति गांधीजी के बारे में कहा गया है कि गांधीजी संसार में कुछ पहले आ गए थे। यह हम सबका पुनीत कर्तव्य है कि हम संसार को यह सिद्ध करके दिखा दें कि यद्यपि हम पितृहत्या के दोषी हैं, तथापि हमने अपने इस अपराध के लिए समुचित प्रायश्चित कर लिया है और यद्यपि हमने उनकी बात उनके जीवन में नही सुनी, इस शोणित तर्पण के द्वारा हमने आत्म-शुद्धि कर ली है और अपनेको उनकी विरासत के योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध कर दिया है।

लोग अभी से महात्माजी के लिए समुचित स्मारक स्थापित करने की बात कह रहे हैं, लेकिन यह स्पष्ट है कि जहां-तहां प्रतिमायें या उद्यान बना देना ऐसे व्यक्ति के लिए उचित स्मारक नहीं हो सकता, जिसने सारे राष्ट्र की उन्नति के लिए और जनता के सभी वर्गों में सौहार्द भाव को बढ़ाने के लिए सर्वस्व त्याग दिया था। उनके लिए जो एकमात्र समुचित स्मारक हमारे द्वारा स्थापित किया जा सकता है, वह उनके द्वारा छोड़े अधूरे काम को पूरा करना है।

आइए, हम इस प्रकार कार्य करने की शपथ ग्रहण करें, जिससे एक नए, बेहतर और शानदार हिन्दुस्तान की नींव पड़े, जिसके लिए महात्माजी जिये और मरे।

: २१ :

छोटे, किन्तु महान

पैथिक लॉरेंस

गांधीजी को लोग बहुत ही प्रेम करते थे। उनके लिए उतना ही अधिक वे शोक करेंगे। हाड़-मांस के व्यक्ति के रूप में वे अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी आत्मा सदा जीवित रहेगी। पुरुषों और स्त्रियों के दिलों और दिमागों पर उनके इतने प्रभाव का रहस्य क्या था? मेरी राय में उसका कारण यह था कि उन्होंने स्वेच्छा से उन सब अधिकारों और सुविधाओं का त्याग कर दिया था, जिनका उपभोग वे अपनी पैदाइश, साधन, व्यक्तित्व तथा बौद्धिक ऊँचाई के कारण कर सकते थे। उन्होंने सामान्य व्यक्ति की हैसियत और दुःख-दीनताओं को अंगीकार किया।

जबकि वे एक युवक के रूप में दक्षिण-अफ्रीका में थे और इस देश में अपने देश-वासियों के साथ होने वाले व्यवहार का विरोध कर रहे थे, उन्होंने छोटे-से-छोटे भारतीय के साथ होनेवाले अपमान का अपने लिए स्वागत किया था, जिससे कि अवज्ञा के लिए मिलने वाले दंड को वे स्वयं भुगत सकें। जब उन्होंने भारत में ब्रिटिश-शासन के साथ असहयोग करने को कहा, तो उन्होंने स्वयं कानून की अवज्ञा की और उन व्यक्तियों के साथ जेल जाने का आग्रह रक्खा जो सबसे पहले सीखचों के पीछे बन्द हुए थे। जब उन्होंने पश्चिमी औद्योगीकरण का भारत द्वारा अपनाये जाने का विरोध किया तो अपने घर में स्वयं उन्होंने चर्खे को प्रतिष्ठित कर लिया और अपने हाथों से प्रतिदिन उसपर श्रम करने लगे। जब वे सांप्रदायिक हिंसा का मुकाबला करने को उद्यत हुए तो उन्होंने अपने संप्रदाय की, जिसके कि वे स्वयं एक सदस्य थे, भूल और पाप के लिए स्वयं प्रायश्चित्त के रूप में अनशन तथा मृत्यु का सामना किया।

उन्होंने कभी भी यह दावा नही किया कि वे किसी भी सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कुछ और हैं। उन्होंने स्वीकार किया कि भूल उनसे भी हो सकती है और यह भी माना कि अपनी भूलों से उन्होंने प्रायः शिक्षा ग्रहण की है। वह सार्वजनीय बन्धु थे, प्रेमी थे और गरीब, दुर्बल, दोषी तथा दुखित मानवता के मित्र थे।

आइये, हम सब उनकी आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें, केवल शब्दों द्वारा ही नहीं, बल्कि जैसा कि उन्होंने किया, सत्य की खोज में, साथियों के लिए प्रेम में और राष्ट्रों के घावों को भरने में अपने जीवन को समर्पित कर दें।

: २२ :

उनका रास्ता

एल० एस० एमरी

हमारे युग का लगभग सारा-का-सारा जोर समाज-सुधार की भौतिक परिकल्पनाओं और युद्ध के तरीकों से युद्ध के रोकने की योजनाओं में लग रहा है। इस बात पर हमारा संदेह पुष्ट होता जा रहा है कि क्या यह तरीके हमें परमाणु बम से बचा सकेंगे या हमारे चारों ओर शांति और संतुष्टि सुनिश्चित कर सकेंगे ? क्या ही अच्छा हो कि उस समाज-सुधारक (गांधीजी) की उत्तमतर पद्धति को अपनाया जा सके, जिसने खुद सारे जीवन में अछूतों के सुख और उनके मानवी मान का प्रचार किया; जो भारत में ब्रिटिश राज्य का विरोधी था, लेकिन इसके बावजूद अंग्रेज जाति को भली-भांति पहचानता और प्रेम करता था; जो खुद एक कट्टर हिन्दू था, लेकिन फिर भी जो ईसाइयत और इस्लाम दोनों से बौद्धिक संबंध स्थापित करता था; जो शांतिवादी था और जिसका यह विश्वास था कि शांति मानवी आत्मा में युद्ध के प्रति घृणा उत्पन्न करके ही स्थापित की जा सकती है।

: २३ :

अहिंसा के पुजारी

क्लीमेण्ट एटली

गांधीजी की निर्मम हत्या का समाचार हर किसी ने बड़े आश्चर्य और घृणा के साथ सुना होगा। मैं जानता हूँ कि उनके देशवासियों के प्रति उनके सबसे बड़े नागरिक की मृत्यु से हुए शोक में अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करने में मैं ब्रिटिश जनता के विचारों को भी प्रकट कर रहा हूँ। जैसाकि भारत में लोग उनके बारे में जानते थे, महात्मा गांधी वर्तमान विश्व के सबसे महान् व्यक्तियों में से एक थे, लेकिन उनके विषय में ऐसा लगता था मानो वे किसी और युग के प्राणी हों। वे घोर तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करते थे और उनके करोड़ों देशवासी उन्हें दैवी-प्रेरणा प्राप्त संत मानते थे। उनका प्रभाव उनके सहधर्मियों के अलावा औरों पर भी था और एक ऐसे देश में जिसमें सांप्रदायिक फूट बुरी तरह से फैली हुई थी, उनकी आवाज

सभी हिन्दुस्तानियों पर असर डालती थी। एक चौथाई शताब्दी तक हरएक भारतीय समस्या के समाधान में यही एक व्यक्ति सबसे बड़ा तत्त्व माना जाता था। वे भारतीय जनता की स्वतंत्रता की इच्छा के प्रतीक बन गए थे, तो भी वे कोरे राष्ट्रवादी ही नहीं थे। उनका सबसे प्रमुख सिद्धांत अहिंसा का था। वे उन शक्तियों के, जिनको वे गलत समझते थे, निष्क्रिय प्रतिरोध में विश्वास करते थे। वे उनका विरोध करते थे, जो हिंसा द्वारा अपना लक्ष्य-साधन करने की कोशिश करते थे और जब कभी भी जैसाकि अक्सर हो भी जाता था, उनके द्वारा चलाये गए स्वाधीनता आन्दोलन में अपने को उनका अनुयायी बताने वालों के अनुशासन-विहीन कृत्यों के कारण जन-हानि हो जाती थी, तो इससे उन्हें बड़ी वेदना होती थी। लक्ष्य-साधन में उनकी सचाई और निष्ठा पर अंगुली नहीं उठाई जा सकती। उनके जीवन के अन्तिम दिनों में, जब सांप्रदायिक दंगे भारत द्वारा प्राप्त की गई स्वाधीनता को कलंकित कर रहे थे, उनके अनशन करने की धमकी से बंगाल में मार-काट बन्द हो गई और उससे वातावरण में फिर से परिवर्तन आ गया। इसके अतिरिक्त उन्हें अन्याय से घृणा थी और वे निर्धनों और विशेषकर भारत के पिछड़े वर्गों के लिए यत्न करते रहते थे। एक हत्यारे के हाथों उनके प्राण चले गए और शांति और भ्रातृत्व का स्वर ऊँचा करने वाली वाणी को इस प्रकार रुद्ध कर दिया, लेकिन मुझे विश्वास है कि उनकी आत्मा अपने देशवासियों को प्ररित करती रहेगी और शांति और मेल की आवाज बुलन्द करती रहेगी।

: २४ :

इतिहास की अमूल्य निधि

फिलिप नोएल बेकर

भाग्य के दुखान्त चक्र ने एक ऐसे महापुरुष को छीन लिया, जिसका न केवल अपने देश में, अपितु सारे संसार में आदर होता था।

गांधीजी वह व्यक्ति थे, जिनकी महानता केवल उनके जीवन-काल तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि इतिहास की एक अमूल्य निधि है। भारत तथा सारे संसार में प्रेम और भ्रातृत्व की भावना, जिसके कि वे सबसे बड़े प्रवक्ता थे और जिसके लिए वे शहीद तक हो गए, की आवश्यकता पहले उतनी कभी अनुभव नहीं की

गई थी, जितनी कि आज की जा रही है।

आधी शताब्दी तक उनकी प्रेरणा कारगर रही और शायद पिछले वर्ष में उसकी अभिव्यक्ति सबसे अधिक हुई। उनकी मृत्यु से हमें उस खतरे को समझ लेना चाहिए, जो हम सबके सामने मुंह बाये है और जिसका मुकाबिला उन सिद्धान्तों के अनुसरण से किया जाता, जिनपर उनका सारा जीवन आधारित था।

आधुनिक इतिहास में किसी भी एक व्यक्ति ने अपने चरित्र की वैयक्तिक शक्ति, ध्येय की पावनता और अंगीकृत उद्देश्य के प्रति निस्स्वार्थ निष्ठा से लोगों के दिमागों पर इतना असर नहीं डाला।

मेरा विश्वास है कि दूसरे पैगम्बरों की भांति उनका महान कार्य आगे चलकर सामने आयगा।

: २५ :

उनका बलिदान एक उदाहरण

हैरी एस० ट्रूमैन

गांधीजी भारत के एक महान राष्ट्र-नेता थे। लेकिन साथ ही वह अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी बहुत ऊंचे नेता थे। उनकी शिक्षाओं और प्रवृत्तियों का कोटि-कोटि व्यक्तियों पर गहरा असर पड़ा। भारतवासी उनका बड़ा आदर करते थे और अब भी करते हैं। उनका प्रभाव केवल सरकारी मामलों में ही नही था बल्कि आत्मिक क्षेत्र में भी था। दुर्भाग्य से वे उन आदर्शों की पूर्ण प्राप्ति अपने जीवनकाल में नहीं देख सके, जिनके लिए उन्होंने संघर्ष किया था; लेकिन उनका जीवन और उनके कार्य युग-युग तक उनका सर्वोत्तम स्मारक रहेंगे।

मुझे विश्वास है कि अपने लोगों के कल्याण के लिए उनका निस्स्वार्थ संघर्ष भारत के नेताओं के लिए उदाहरणस्वरूप होगा। बहुत-से नेता तो उनके ही अनुयायी हैं।

मैं जानता हूं कि केवल भारतवासी ही नहीं, अपितु दूसरे सब लोग भी गांधीजी के बलिदान से उनमें मूर्तिमान भाईचारे और शांति के लिए अधिक उत्साह और लगन से काम करने के लिए प्रेरित होंगे।

मुझे गांधीजी की हत्या के दुःखद समाचार से बड़ी वेदना है और मैं आपको (प्रधान मंत्री), सरकार को तथा भारतीय निवासियों को अपनी हार्दिक समवेदना भेजता हूं।

एक उपदेष्टा और नेता के रूप में उनके प्रभाव की अनुभूति न केवल भारत में ही हुई है, बल्कि संसार में हर जगह हुई और उनकी मृत्यु से सारे शांतिप्रेमी व्यक्तियों को भारी खेद हुआ है। भाई-चारे और शांति के ध्येय में एक और महापुरुष उठ गया।

मुझे विश्वास है कि उनकी दुःखद मृत्यु से एशिया के लोग सहयोग तथा पारस्परिक विश्वास के ध्येय को, जिसके हेतु गांधीजी ने अपने प्राणों की आहुति दी है, प्राप्त करने के लिए अधिक निश्चय के साथ प्रयत्नशील होंगे।

: २६ :

उनकी महानता का कारण

मिल्टन मेयर

इस वृद्ध पुरुष की अपनी कोई संपत्ति नहीं थी और न कोई ओहदा ही था। जीवन का भी उनके लिए कोई मूल्य न था और अपनी मृत्यु के विषय में भी उन्हें कोई परेशानी न थी। लेकिन दुनिया हिल गई; क्योंकि बिना थल, जल व वायु की शक्ति के, बिना डण्डे अथवा पत्थर के और बिना सत्ता अथवा दूसरों की सहायता के उन्होंने एक साम्राज्य को उखाड़ फेंका और चालीस करोड़ निःशस्त्र व्यक्तियों के देश को स्वतंत्रता प्रदान की।

हममें से बहुत-से गोरे लोग मानते थे कि वह एक शेखचिल्ली और निश्चय ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनका असलियत से कोई संबंध न था। हमारे युग के शक्तिशाली व्यक्तियों---रूजवेल्ट, चर्चिल और स्तालिन---की तुलना में वे अपनी चादर और लंगोटी में असर डालने वाले नहीं दीखते थे। लेकिन दुर्बलों से ही तो एक बार कहा गया था कि उन्हें दुनिया का राज्य मिलेगा, और अब हर जगह आदमी आश्चर्य करते है कि यह दुर्बलतम व्यक्ति हमारे युग का सबसे शक्तिशाली मनुष्य था! करोड़ों व्यक्ति बिना लाभ अथवा लाभ की संभावना के उनके पदचिह्नों पर चले, उनके पीछे-पीछे जेल गए, प्रार्थना में पहुंचे और उनके साथ कंधे-

से-कंधा भिड़ाकर आजादी हासिल की।

ईसा ने कहा था, "यदि मेरा साम्राज्य इस दुनिया का है तो मेरे अनुगामी लड़ाई में भाग लेंगे।" गांधी का साम्राज्य इसी दुनिया का था और फिर भी उनके अनुयायी लड़े नहीं। गांधी ने धार्मिक आदेश का पालन राजनेता के काम में किया और मेरा विश्वास है कि इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि ईसा के बाद वही पहले ईसाई राजनेता थे---वाशिंगटन, जैफरसन और लिंकन भी इसके अपवाद नहीं ?

शस्त्रों पर आधारित विचारधाराएं, जिनमें हमारी विचारधारा भी शामिल है, टिकी नहीं रह सकतीं। बल में विश्वास करने वाले मालिक और कर्मीजन भी विनाश को प्राप्त होते हैं। यदि ईसा और गांधी की वाणी सही है तो रूजवेल्ट और हिटलर, वैलिस और टैफ्ट, ट्रूमैन और स्तालिन भी सदा खड़े नहीं रह सकते। यदि गांधीजी का कथन सत्य है तो वे सब लोग जो, इस बात में विश्वास रखते हैं कि बल, दबाव और सत्ता से उन्हें सफलता प्राप्त होगी, भूल में हैं और यद्यपि उनमें से कुछ आदमी बुरे ध्येयों की अपेक्षा अच्छे ध्येयों के लिए शक्ति का उपयोग करते हैं, तथापि वे सदा गलती पर ही रहेंगे।

यदि यह सही है तो उसकी कल्पना बड़ी ही भयावह है। चर्चिल के विश्व-साम्राज्य और हिटलर की विश्व-दासता का भाग्य हमारी आंखों के सामने है। यदि गांधीजी का कथन सही है और अगर मानवता का प्रेम की भावना में विश्वास है तो लोकतंत्र और साम्यवाद का बलपूर्वक विनाश ईसाई राजनीतिज्ञ के कथन की सत्यता के आगे काले प्रमाण सिद्ध होंगे।

लेकिन इसका अर्थ होता है ऐसी तीव्र क्रांति जिसका किसी भी क्रांतिकारी ने आजतक संकेत नहीं किया। इसका अर्थ यह भी है कि अपने वैयक्तिक और राजनैतिक जीवन-व्यवस्था को हम पूर्णतया बदल दें अथवा कुछ भी न बदलें।

: २७ :

महान क्षति

डी० एच० एम० लाज़ारस

ब्रिटिश यहूदियों की ओर से मैं श्री गांधी के दुखद निधन पर अपनी गहरी समवेदना और शोक-भरे उद्‌गार भेजना चाहता हूं। ऐसे महापुरुष की क्षति की

पूर्ति नहीं हो सकती, जिसके पावन-चरित्र और शांति के ध्येय के लिए जीवन-व्यापी निष्ठा के कारण उसका नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

भारत ने ही नहीं, सारे संसार ने उनके आदर्शों को देखा। उनकी पूर्ति कठिन अवश्य थी, फिर भी वे ही व्यावहारिक साधन हैं, जिनसे मानवता के अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है और वे लक्ष्य हैं—सारी जातियों और धर्मों के लोगों के बीच स्थायी शांति और मैत्री की स्थापना।

: २८ :

संसार का एक महान् नेता

एमन डी वेलेरा

हमारा और भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम अन्तिम अवस्था में बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। हमारे देशवासियों ने अनुभव किया कि एक सामान्य ध्येय की दृष्टि से वे भाई-भाई हैं और उन्होंने मंगल कामना की कि भारत के स्वाधीनता-संग्राम में सफलता प्राप्त हो।

आज भारत के निवासी शोक-मग्न हैं और हम भी उनके शोक में सम्मिलित हैं। उनका एक ऐसा नेता चला गया, जिसने उनके लिए वर्तमान स्वतंत्रता प्राप्त की थी। हमारी प्रार्थना है कि उनकी जीवन की आहुति, जिसके द्वारा उन्होंने अपने देश को अपनी निष्ठा पूर्णतया प्रदान की, भारतवासियों को वह भ्रातृत्व शांति प्रदान करे, जो उन्हें बहुत प्रिय थी। यह क्षति अकेले भारत की ही क्षति नहीं है, बल्कि संसार ने एक ऐसा महान नेता खोया है, जिसका प्रभाव उनकी मृत्यु के बाद भी चिरकाल तक बना रहेगा।

: २९ :

बेजोड़ उदाहरण

जॉन हेन्स होम्स

जब हमारे युग के सभी राजाधिराज और सेनापति, जो आज इतना शोर करते हैं और जीवन के नाटक में जिन्हें इतना प्रमुख स्थान प्राप्त है, वे सब विस्मृति

के गर्भ में समा चुकेंगे, महात्माजी फिर भी गौतम बुद्ध के बाद सबसे बड़े भारतीय और ईसा के बाद सबसे बड़े मानव के रूप में जीवित और सम्मानित रहेंगे।

गांधीजी ने भारतीय जनता को अपना संग्राम जारी रखने के लिए अस्त्र प्रदान किये। ये ऐसे अस्त्र थे, जिनकी शक्ति अकल्पनीय थी, जो अंतिम विजय की गारंटी देने वाले थे, और भगवान की कृपा से, गांधीजी ने जीवनकाल में ही ऐसी विजय प्राप्त कर ली, जिसे वे देख भी सके। मानव-जाति के इतिहास में गांधीजी का अहिंसात्मक प्रतिरोध का कार्यक्रम अनुपम है। खुद यह सिद्धान्त कि बुरे का नहीं, बुराई का विरोध करो और अपने शत्रुओं से प्रेम करो, कोई नया नहीं है। इसकी प्राचीनता कम-से-कम इतनी तो अवश्य है, जितनी कि 'गिरि-प्रवचन' में नजारथ के ईसा की शिक्षाएं। लेकिन गांधीजी ने वह किया जो पहले कभी नहीं किया गया था। अबतक यह निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धान्त इक्के-दुक्के व्यक्तियों या छोटे-छोटे समूहों तक ही सीमित थे। गांधीजी ने इस विशिष्ट प्रकार के सिद्धान्त के असंख्यों मनुष्यों द्वारा प्रयोग में लाये जाने के लिए अनुशासन और कार्यक्रम का प्रतिपादन किया। दूसरे शब्दों में उन्होंने इक्के-दुक्के व्यक्तियों के लिए, या छोटे-छोटे व्यक्ति-समूहों के लिए नहीं, अपितु एक पूरे राष्ट्र के लिए कार्यक्रम रखा और मैं कहता हूं कि यह बात मानव-जाति के लिए एकदम नई है।

१५ अगस्त १९४७ को भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के साथ गांधीजी के जीवन के द्वितीय काल के महत्व का सार महान् विद्वान डा. फ्रांसिस नीलसन द्वारा लिखित पुस्तक "यूरोप की पीड़ा" (ट्रेजेडी ऑव यूरोप) के इस अंश को उद्धृत करके आपके सामने उपस्थित करता हूं : "गांधीजी अनुपम हैं। उनकी स्थिति के किसी अन्य व्यक्ति का, जिसने एक महान साम्राज्य को चुनौती दी हो, दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। वे कार्यक्षेत्र में और बुद्धि में सुकरात के समान थे। उन्होंने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिंसा का सहारा लेने वाले राजनीतिज्ञों के तरीकों के थोथेपन को विश्व के सामने रखा। इस संघर्ष में आत्मिक संपूर्णता ने राज्य-बल के भौतिक प्रतिरोध पर सफलता पाई।" यही गांधीजी की सफलता थी और यही उनकी विजय। इतिहास में यही उनका स्थान निश्चित करती है।

*

: ३० :

मानवता के प्राण गांधी

पर्लबक

अमेरिका में पेंसिलवेनिया के निकट देहाती क्षेत्रों में एक गांव है पेरेक्सीर। वहीं हमारी शांतिमयी झोपड़ी है। ३१ जनवरी को वह दिन पिछले दिनों की तरह ही आरम्भ हुआ। हम सवेरे ही उठने के अभ्यासी हैं, क्योंकि बच्चों को कुछ दूर स्कूल जाना पड़ता है। नित्य की तरह ही आज हम जलपान के लिए मेज के चारों ओर इकट्ठे हुए और साधारण बातचीत करने लगे। खिड़कियों से बाहर घने हिम-पात का दृश्य दिखलाई दे रहा था और आकाश की आभा भूरे रंग की हो रही थी। हमारे बच्चों को शंका हो रही थी कि कहीं और अधिक हिम-पात न हो। एका-एक गृहपति कमरे में आये। उनकी मुखमुद्रा गम्भीर थी। उन्होंने कहा, "रेडियो पर अभी एक अत्यन्त भयानक समाचार आया है।"

यह सुनकर हम सब उनकी ओर देखने लगे और तुरन्त ये हृदय-विदारक शब्द सुनाई पड़े, "गांधीजी का देहावसान हो गया।"

मेरी इच्छा है कि भारत से हजारों मील दूर स्थित अमेरिका-निवासियों पर गांधीजी की मृत्यु से जो प्रतिक्रिया हुई उसे भारतवासी जानें। हम लोगों ने हृदय को दहला देने वाला यह संवाद सुना। यह साधारण मृत्यु नही है। गांधीजी शांति की प्रतिमूर्ति थे और उन्होंने अपना सारा जीवन अपने देश की जनता की सेवा के लिए लगा दिया था। ऐसे शातिप्रिय व्यक्ति की हत्या कर दी गई। मेरे दस वर्ष के छोटे बच्चे की आंखों में आंसू छलकने लगे और उसने कहा, "मै चाहता हूं कि यदि बन्दूक बनाने का आविष्कार ही न हुआ होता तो बड़ा अच्छा था।"

हम लोगों में से किसीने भी गांधीजी को नहीं देखा था, क्योंकि जब हम लोग भारतवर्ष में थे तब गांधीजी सदा जेल में ही थे। फिर भी हम सभी उन्हें जानते थे। हमारे बच्चे गांधीजी की आकृति से इतने परिचित थे, मानों गांधीजी स्वयं हमारे साथ घर में ही रहते थे। हमारे लिए गांधीजी संसार के इने-गिने महात्माओं में से एक महात्मा थे। पृथ्वी के उन गिने-चुने पीरों में से वे एक थे जो अपने विश्वास पर हिमालय की तरह अटल और दृढ़ रहते थे। उनके संबंध में हमारी धारणा भी वैसी ही अटल है।

उनकी मृत्यु का समाचार सुनने के बाद हम परस्पर गांधीजी के जीवन और उनकी मृत्यु से होनेवाले सम्भावित परिणामों के संबंध में बातचीत करने लगे।

हमें भारतवर्ष पर गर्व है कि महात्मा गांधी जैसे महान व्यक्ति भारत के अधिवासी थे। पर साथ ही हमें खेद भी है कि भारत के ही एक अधिवासी ने उनकी हत्या की। इस प्रकार दुःखी और सन्तप्त हम लोग चुपचाप अपने दैनिक कार्यों में लग गये।

भारतवासी संभवतः यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि हमारे देश में गांधीजी का यश कितने व्यापक रूप में फैला। मैं उनकी मृत्यु के एक घन्टे बाद सड़क से होकर कहीं जा रही थी कि एकाएक एक किसान ने मुझे रोका और पूछा, "संसार का प्रत्येक व्यक्ति सोचता था कि गांधीजी एक उत्तम व्यक्ति थे तो फिर लोगों ने उन्हें मार क्यों डाला ?"

मैंने अपना सिर धुना और कुछ बोल न सकी। उसने संकेत से कहा, "जिस तरह लोगों ने महात्मा ईसा को मारा था उसी तरह लोगों ने महात्मा गांधी को मार डाला।"

उस किसान ने ठीक ही कहा था कि महात्मा ईसा की सूली के अतिरिक्त संसार की किसी भी घटना की महात्मा गांधी की गौरवपूर्ण मृत्यु से तुलना नहीं हो सकती। गांधीजी की मृत्यु उन्हींके देशवासी द्वारा हुई। यह ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने के बाद दूसरी ही वैसी घटना है। संसार के वे लोग, जिन्होंने गांधीजी को कभी नहीं देखा था, आज उनकी मृत्यु से शोक-संतप्त हो रहे हैं। वे ऐसे समय में मरे जब उनका प्रभाव दुनिया के कोने-कोने में व्याप्त हो चुका था।

कुछ दिनों से अमेरिका-निवासियों में महात्मा गांधी के प्रति बढ़ती हुई श्रद्धा का अनुभव हम कर रहे थे। महात्मा गांधी के प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा थी। महात्मा गांधी के प्रति जनता में वास्तविक आदर था और हम लोगों को यह प्रतीत होने लगा था कि वे जो कुछ कह रहे थे, वही ठीक था।

आज अपने देश के अति उन्नत सैनिकीकरण के मध्य हमारी दृष्टि गांधीजी की ओर जाती थी और यह प्रतीत होता था कि (युद्ध का नहीं, बल्कि शांति का) उनका मार्ग ही ठीक है। हमारे समाचार-पत्रों ने गांधीजी की इस नई शक्ति को पहचाना। भारत की इस महान व्यक्ति के कारण अन्य देशों में प्रतिष्ठा बढ़ी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में होने वाले भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध की ओर हमारी दृष्टि गई, क्योंकि उनका ढंग राष्ट्रों के बीच के मत-भेदों को शांतिपूर्ण ढंग से तय करने का था।

मै चाहती हूं कि भारत के प्रत्येक नर-नारी के हृदय में विश्वास करा दूं कि उनके देश को अब अन्य देशवासी क्या समझते है। आज भारत केवल भारत ही नहीं है, वरन् वह संसार की मानव-जाति का प्रतीक है। चर्चिल और उनके समान अन्य व्यक्ति हमें बताते रहे कि यह आवश्यक नही है कि दुनिया के सभी लोग स्वतंत्र हों। इन लोगों का कहना है कि जगत को यह जान लेना चाहिए कि कुछ थोड़े बलवान और शक्तिशाली व्यक्ति ही विश्व पर शासन कर सकते है।

कुछ लोग कहते है कि कोई-न-कोई शासक तो अवश्य ही होगा और यदि हम स्वयं शासित होना नही चाहते है तो हमें शासक होना चाहिए। लेकिन हम इस बात पर विश्वास नही करते। हम तो ऐसे संसार की कल्पना कर रहे है, जिसमें जनता स्वयं अपना शासन चलाने के लिए स्वतंत्र रहे। हमारे लिए उस काल्पनिक संसार का प्रतीक भारतवर्ष है। हम प्रतिदिन भारतीय समाचारों के लिए समाचार-पत्रों को बड़ी उत्कण्ठा से आंखें फाड़-फाड़ कर देखते है। श्री चर्चिल ने जिस 'रक्त-स्नान' की धमकी दी थी, वस्तुत: क्या वह घटना सत्य होगी ? क्या यह सत्य है कि लोग अपने मत-भेदों को शाति से न मिटा सकेगे ? क्या युद्ध सदा होते रहेगे ?

हम सभी लोगों के लिए, जिनकी धारणा थी कि जनता पर विश्वास करना चाहिए, गांधीजी आशा के केन्द्र थे। यह बात नही है कि हम उस क्षीणकाय चश्मे वाले गांधी को भावुकता में आकर कोई देवता समझ बैठे थे, बल्कि हमारा यह विश्वास था और हम आशा करते थे कि गांधीजी ने मानव-जीवन के मौलिक सत्य को प्राप्त कर लिया था। उनकी मृत्यु पराजय है या विजय ? इसका उत्तर भविष्य में भारतवासी विश्व को अपनी भावी गतिविधि से देगे।

उन लोगों में, जो समझते थे कि गांधीजी सत्य पथ पर थे, यदि उनकी मृत्यु से नई जाग्रति, नई चेतना और नया संकल्प उत्पन्न हो सके तो यह हमारे और भारत के लिए समान रूप से लाभदायक सिद्ध होगा; क्योंकि हम मानवता मे विश्वास करते हैं। यदि उनकी मृत्यु से हम निराश और पराजित हो जायं तो निश्चय ही संसार की मानवता पराजित हो जायगी।

अमेरिका में गांधीजी की मृत्यु का समाचार धक्के की तरह लगा और कुछ क्षणों के लिए लोग स्तब्ध रह गये। लोग एक दूसरे की ओर आश्चर्य से देखने लगे। नेहरूजी अभी जीवित है। अब ऐसी दुर्घटना न घटेगी। केवल यही नही कि पश्चिमी जगत भारत के किसी और व्यक्ति की अपेक्षा नेहरू को अधिक जानता है, बल्कि वह नेहरू की बुद्धिमत्ता, योग्यता और धैर्य पर विश्वास भी करता है। भारत में

इतना वर्ग-भेद नहीं हो जायगा, जिससे निराशा और पराजय के कारण लोग नेहरू को पदच्युत कर दें। यदि ऐसा हुआ तो भारत की बड़ी हानि होगी और वह पश्चिम जगत की दृष्टि में नितान्त गिर जायगा।

बुद्धिमान भारतीय ऐसी गलती करने से पूर्व अच्छी तरह सोचेंगे। मैं न केवल एक साधारण अमेरिकन की दृष्टि से यह कह रही हूं, बल्कि भारत के संबंध में जो कुछ भी जानती हूं कि भारत अपने लिए क्या करना चाहता है तथा नेता के रूप में संसार के लिए क्या कर सकता है, इस दृष्टि से मेरे उक्त विचार हैं।

भारत का भाग्य अधर में दोलायमान हो रहा है। भारतीय अपने वर्गभेद की भावना को मिटाकर अपने विशाल हृदय, सत्यनिष्ठ नेताओं के आदेश पर चलें और संकुचित विचार वाले उन्नति में बाधक नेताओं से बचें, तभी उनका कल्याण होगा।

: ३१ :

मानवता का पुजारी

हेनरी एस० एल० पोलक

टाल्स्टाय के बाद ही इतनी जल्दी जिस जमाने ने एक दूसरा महान 'मानवता का पुजारी' पैदा किया है, उसमें रहना कितना अच्छा है। अहा! ये साधु-सन्त, ये पैगम्बर और भक्तगण किस प्रकार वातावरण को स्वच्छ निर्मल बनाते हैं और आसपास फैले हुए 'सघन तिमिर' में प्रकाश चमकाते हैं।

ओलिव श्रीनर ने अपने एक गद्य-काव्य में 'सत्यूपी पक्षी' की खोज में प्रयत्न-शील साधक का एक चित्र खींचा है। उसे उस पक्षी की झलक एक बार दिखाई दी। उसकी तलाश में वह पर्वत-शिखर पहुंचता है, जहां जाकर उसका शरीर छूट जाता है। उसके हाथ में उस पक्षी का गिरा हुआ एक पंख है, जिसे छाती पर चिप-काए हुए वह सोया है। गांधीजी अपने जीवन-काल में जो सन्देश हमारे लिए छोड़ रहे हैं, वह हमारे लिए ऐसा ही एक पंख सिद्ध हो और हम सचमुच बड़भागी होंगे, अगर अपनी मृत्यु के समय उसे अपनी छाती से लगाए और अपनाए रहेंगे।

: ३२ :

सबसे महान् व्यक्तित्व

रेजिनाल्ड सोरेन्सन

लेनिन और महात्मा गांधी को मै विश्व में बीसवी शताब्दी का सबसे महान् व्यक्तित्व मानता हूं, यद्यपि दोनों एक दूसरे के एकदम विपरीत हैं। इन दोनों में गांधीजी वास्तव में अत्यधिक प्रभावावित करने वाले महापुरुष है। मैं गांधीजी से प्रतिनिधि-मंडल के साथ दो अवसर पर मिला हूं। उस समय वे मद्रास की उस इमारत में निवास कर रहे थे जो वहां की एक विशाल संस्था में ही थी। उनके द्वार पर सदा ही भीड़ लगी रहती थी। सवेरे नित्य ही गांधीजी प्रार्थना करते थे, जिसमें सहस्रों की संख्या में लोग एकत्र होते थे।

हम लोग अर्धवृत्ताकार में बैठे थे। गांधीजी भूमि पर मध्य में शुभ्र गद्दे पर बैठे थे। बिजली जल रही थी। प्रथम दिन संध्या के अनन्तर दो घण्टे तक हम लोग पारस्परिक विचार-विनिमय तथा प्रश्नादि करते रहे। उस समय हम लोग तथा महात्माजी के अतिरिक्त और कोई न था। वह अत्यन्त कुशल और विनोदी थे, किन्तु कभी-कभी गम्भीर रूप से अपने पक्ष के लिए दृढ हो जाते थे। विचार-विनिमय के अवसर पर प्रश्न पर उनका मस्तिष्क सदा कार्य करता रहता था, किन्तु उनके अपने विशेष ढंग से। उनकी उदारता की पृष्ठभूमि में अभेद्य दृढ़ता की भावना विद्यमान रहती थी। कभी-कभी उनके तर्क मे अप्रासंगिकता एवं परस्पर-विरोधी बातें-सी मालूम पडती थी, किन्तु वह अपने आलोचको के सुधार का सदा स्वागत करते थे। व्यक्तिगत रूप से अप्रासंगिकता के होते हुए भी महात्माजी को अपनी आत्मा में इस बात का विश्वास रहता था कि विषय के आग्रह एवं हित की दृष्टि से उनमें साम्यमूलक सम्बन्ध रहता है। धार्मिक एवं कर्त्तव्यशास्त्र की दृष्टि से महात्माजी की पहुंच अत्यन्त गहराई तक थी, लेकिन साधारण राजनीतिज्ञ को संकट में डाल देती थी। वाद-विवाद में जो लोग प्रतिशोध एवं शत्रुता की भावना पैदा कर लेते है, उन्हें यह बात अत्यन्त विचित्र प्रतीत होगी कि गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' प्रश्न से सम्बद्ध जब समस्त तर्क उपस्थित किया तो वह पूर्णतः न्याययुक्त प्रतीत होता था। महात्माजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, " 'भारत छोडो' योजना में अंग्रेजों के प्रति तनिक भी घृणा का भाव नही। यदि हम उनसे डरते है तो घृणा की भावना उत्पन्न

होती है, यदि भय के भाव का लोप हो जाता है तो घृणा का कही अस्तित्व ही नहीं रहता।"

महात्माजी जो कुछ कहते थे वह शुद्ध और सच्चे अर्थ में। वह अपने देश-बासियों को सत्य और स्वातन्त्र्य के लिए बिना किसी विरोधी भावना से युक्त हुए आगे कदम बढाने के लिए कहते थे। विरोधियो के लिए हृदय मे भ्रातृ-भावना से परिपूर्ण होने का सदा उनका आदेश रहता था। यह एक ऐसी असाधारण वस्तु है जो विरले राजनीतिक नेता में पाई जाती है।

महात्मा गांधी का व्यक्तित्व हम ब्रिटेनवासियों को कुछ विचित्र और चुनौती देने वाला भले ही प्रतीत हो, किन्तु इस बात में तनिक सन्देह नही किया जा सकता कि करोड़ो भारतीयों की आवश्यकताओं एवं आशाओं के वे मूर्त्तिरूप थे। भारतीय जनता के लिए वह राजनैतिक नेता मात्र नही, अपितु आराध्यदेव 'महात्मा' थे। प्रायः सभी प्रमुख ब्रिटिश नेताओं ने इस बात को स्वीकार किया है कि महात्माजी-सा प्रभावशाली अन्य कोई नही। विरोधी आलोचना तथा विपरीत विकास के लक्षणों के बावजूद पूर्ववत् शान्ति एवं साम्य की स्थिति में रहते थे।

: ३३ :

हमारा कर्त्तव्य

मीरा बहन

मेरे सिर्फ दो संगी थे—ईश्वर और बापू—और अब दोनों एक हो गए है।

जब मैंने बापू की मृत्यु की खबर सुनी तो मेरी आत्मा को बन्दी बनाने वाले दरवाजे खुले और बापू की आत्मा ने उसमें प्रवेश किया। उस पल से शाश्वतता की नई भावना मुझमें आ गई है।

यह सच है कि प्रिय बापू जीते-जागते रूप में हमारे बीच नही रहे, लेकिन उनकी पवित्र आत्मा तो आज हमारे ज्यादा नजदीक है। एक समय बापू ने मुझसे कहा था, "जब मेरा यह शरीर नही रहेगा. तब भी हम एक-दूसरे से जुदा नहीं होगे। तब मै तुम्हारे ज्यादा नजदीक आ जाऊंगा। यह शरीर तो बाधा रूप है।" ये शब्द मैंने श्रद्धा से सुने थे। अब मै अपने अनुभव से बापू के उन शब्दो का दिव्य सत्य जान पाई हूं।

क्या बापू को आज होने वाली घटना का ज्ञान था ? मेरे दिल्ली से ऋषीकेश जाने से पहले, दिसम्बर महीने की एक शाम को बापू से मैंने कहा था, "बापू, क्या गोशाला का उद्घाटन करने और हिन्दुस्तान की गरीब-दुःखी गाय को आशीर्वाद देने का समय निकाल सकेंगे ?" बापू ने जवाब दिया, "मेरे आने का खयाल मत रखो।"—और फिर मानों अपने आपसे कुछ कह रहे हों, इस तरह उन्होंने आगे कहा, "मुर्दे से किसी तरह की मदद की आशा रखने से क्या फायदा ?" ये शब्द इतने भयानक थे कि मैंने किसीके सामने उन्हें नहीं दोहराया और ईश्वर की प्रार्थना के साथ उन्हें अपने दिल में रख लिया। उनका अनशन आरम्भ हुआ और समाप्त हुआ। मुझे आशा हो गई कि बापू के इन शब्दों का मतलब अनशन के साथ खतम हो गया, लेकिन ये शब्द तो भविष्यवाणी के समान थे और वह भविष्यवाणी पूरी हुई।

उस विधिनिर्मित शाम को जब मै ध्यान में अचल बनकर बैठी थी, मैंने सारी दुनिया से गुजरने वाली संताप की कंपकंपी का अनुभव किया। मनुष्य-जाति की मुक्ति के लिए एक बार फिर अवतार का खून बहा और धरती इस भयानक पाप के डर और बोझ से कराह उठी।

वह पाप एक आदमी का नहीं है। वह युग-युग में सारी दुनिया को ढंक लेने वाला पाप है। उसे एकमात्र ईश्वर के भक्तों का वलिदान ही रोक सकता है।

अब बापू हमारे लिए जो काम छोड़ गये है, उसे पूरा करने में हमें जमीन आसमान एक कर देना चाहिए। बापू हम सबके लिए—हर मर्द, औरत और बच्चे के लिए—जिये और मरे। वे लगातार काम करते-करते जिये और इसीलिए शहीद की मौत मरे कि हम नफरत, लालच, हिंसा और झूठ के बुरे रास्ते से पीछे लौटें। अगर हमें अपने पापों का प्रायश्चित करना है और बापू के पवित्र उद्देश्य को आगे बढ़ाने में हिस्सा लेना है तो हर तरह की साम्प्रदायिकता और दूसरी बहुत-सी बातें खत्म होनी चाहिए। चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी, तरफदारी, आपसी द्वेष और उसी तरह हिंसा और असत्य के दूसरे काले रूपों को जड़-मूल से मिट जाना चाहिए। इनके विरुद्ध हमें मजबूती से और बिना हिचकिचाहट से जिहाद बोलना होगा। बापू प्रेम और दया के सागर थे, लेकिन बुराई के विरुद्ध लड़ने में वे बड़े कठोर थे।

बापू ने भीतरी बुराई पर विजय पा ली थी, इसीलिए बाहर की बुराई के सामने वे लड़ सके थे। भगवान हमें इस तरह पवित्र बनावे कि हम अपने सामने पड़े हुए भारी काम के लायक बन सकें।

: ३४ :

मृत्यु से शिक्षा

राजेन्द्रप्रसाद

महात्मा गांधी का पार्थिव शरीर हमारे साथ अब नही रहा। उनके चरण अब स्पर्श करने को हमें नही मिलेंगे, उनका वरदहस्त हमारे कंधों पर अब थपकियां नही दे सकेगा, उनकी वाणी अब हमें सुनने को नही मिलेगी, उनके नयन अब अपनी दया से हमें सराबोर नही कर सकेंगे; पर उन्होने मरते-मरते भी हमें यह सीख दी कि शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। उनकी आत्मा हमारे सब कर्मो को देख रही है। जो काम उन्होंने अधूरा छोड़ा है, हमें उसको पूरा करना है और यही एकमात्र रास्ता है, जिससे हम उनकी आत्मा, उनकी स्मृति कायम रख सकते हैं। यों तो जो कुछ उन्होंने किया वह उनको अमर बनाने के लिए संसार के सामने हमेशा बना रहेगा और किसी दूसरे प्रकार के स्मृति-चिन्ह की आवश्यकता नही है, फिर भी मनुष्य अपनी सान्त्वना के लिए कुछ-न-कुछ करता है। इसलिए सोचा गया है कि गांधीजी की स्मृति को कायम रखने के लिए जो रचनात्मक काम उन्हें प्रिय थे, उनको बहुत जोरों से चलाया और फैलाया जाय। वे रचनात्मक कार्य के द्वारा अपने सत्य और अहिसा के सिद्धान्तों को कार्य-रूप में फूलता-फलता देखना चाहते थे। यही मानकर हम भी उनके सिद्धान्तों को सच्चे रूप में संसार के सामने रख सकेंगे; इसलिए उसी कार्यक्रम को चलाना, बढ़ाना, प्रसार करना उनके सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत करना है।

आज मैं इसी बात पर विचार करना चाहता हूं कि गांधीजी की हत्या क्यों हुई, किस कारण से की गई, अहिसा के एकमात्र अनन्य पुजारी हिसा के शिकार क्यों बनाये गए? भारतवर्ष में इधर कई वर्षो से साम्प्रदायिक झगड़े इतने चलते आ रहे हैं और साम्प्रदायिक भेद-भाव का इतना जोरो से प्रचार किया गया कि उसीके फलस्वरूप आज यह दुर्घटना हुई। महात्मा गांधी ने अपनी सारी शक्ति साम्प्रदायिक भेद-भाव के विरुद्ध लगा दी थी। वह आदमी जिसने हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज और हिन्दुस्तान को अपनी गिरी हुई अवस्था से उठाकर इस शिखर तक पहुंचाया था, उसका अहित स्वप्न में भी सोचा नही जा सकता था; पर जो लोग संकुचित विचारों के हैं, दूर तक देख नही सकते, धर्म को समझ नही सकते, उन्होंने ऐसा समझा और

उसीका यह फल हुआ। क्या इस हत्या से हिन्दू-धर्म या हिन्दू-समाज की रक्षा हुई या हो सकती है ? हिन्दू-समाज के इतिहास में लड़ाइयों का उल्लेख है; पर जितने भी युद्ध हुए वे सब धर्म-युद्ध हुए। धर्म-युद्ध के नियमानुसार किसीको कभी इस तरह धमकी देकर किसीने नही मारा। किसी महात्मा की हत्या का तो कही कोई उल्लेख नही मिलेगा। यह पहला अवसर हिदू-समाज के इतिहास में है कि किसी हिदू पर ऐसे पाप का लांछन लगा है और इसमे संदेह नही कि यह ऐसा धब्बा है जिसको कोई मिटा नही सकता। हत्या किसकी की गई ? गाधीजी के शरीर की ? नही। गांधीजी का पार्थिव शरीर, वे खुद कहा करते थे, कुछ चीज नही है। जो गोली लगी वह गांधीजी के हृदय में नही लगी, वह तो हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज के मर्मस्थल में लगी। इसलिए आज प्रत्येक भारतवासी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने नेत्र खोले और देखे कि क्या यह साम्प्रदायिक पाप उसके दिल में भी कोई स्थान रखता है और यदि रखता हो तो उसे निकाल दे, अपना हृदय साफ कर ले और तभी वह दूसरे के हृदय को समझ सकेगा। हमारा बडा भारी दोष है कि हम अपने पापों, बुरे रास्तों और कुभावनाओं को, जिनको हम सबसे अधिक जानते और देखते है, न देखने और न समझने की कोशिश करते है और दूसरों के दोषो की खोज में अपनी आंखें और अपने विचार दौड़ाया करते है। आवश्यकता है कि हम अपनी आंखों को अन्तर्मुखी बनाकर देखें। यदि हममें से प्रत्येक मनुष्य अपनेको सुधार ले तो सारा संसार सुधर सकता है। गांधीजी ने यही सिखाया है और आज यदि भारत को जीवित रहना है तो उन्हीके सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलकर। भारत स्वराज्य तक पहुंचा है; पर स्वराज्य अबतक सुराज नही हो सका क्योकि हम उस रास्ते पर दृढ़ निश्चय के साथ नही चल रहे है।

काग्रेसजन, जो गांधीजी के पीछे चलने का दम भरा करते थे, जिनमें बहुतेरो ने बहुत-कुछ त्याग भी किया, आज समझ रखें कि सबकी परीक्षा हो रही है। प्रत्येक के सामने यह प्रश्न है कि क्या सचमुच वह इस हत्या के कुछ अंश में भागी नही है ? यदि हममें से हरेक गांधीजी के पथ पर चला होता तो यह दुर्घटना असंभव थी। अपनी कमजोरियो के कारण उनके बताये पथ पर हमारे न चलने का ही यह दुष्परिणाम हमें देखना पड़ा। अब भी स्वराज्य को सुराज बनाने में जो कुछ बाकी है अगर उसको पूरा करना है तो हम व्यक्तिगत भेद-भाव छोड़ दें, साम्प्रदायिक भेद-भाव उठा दें और सच्चे त्याग के साथ देश की सेवा में लगें। हमें यह भूल जाना चाहिए कि त्याग का समय चला गया और भोग का समय आ गया। जब हथकड़ियों,

जेलखानों, लाठियों और गोलियो के सिवाय हमें कुछ दूसरा मिल ही नहीं सका था तो हम त्याग क्या कर सकते थे ? हां अकर्मण्य बनकर कायरतापूर्वक हम भाग सकते थे। जब हमारे हाथों में कुछ-न-कुछ अधिकार हो, जब हमको इसका अवसर हो कि हम अपने हाथों को गरमा सकें, अपनी प्रतिष्ठा को संसार की आंखों में बहुत बढ़ा सकें, ओर अपनेको एक बड़ा अधिकारी दिखला सकें फिर भी उस अधिकार की परवाह न कर सेवा का ही खयाल रखें, धन के लोभ में न पड़ें और सादगी में बड़प्पन देखें, तब हम कुछ त्याग दिखला सकते है। आज जब हम कुछ सांसारिक वस्तुओं को प्राप्त कर सकते है तो उनके त्यागने को ही त्याग कहा जा सकता ह। जब वह प्राप्य नही था, उस वक्त त्याग क्या हो सकता ?

गांधीजी की मृत्यु हममें यह भावना एक बार और जागृत कर दे, यही ईश्वर से प्रार्थना है और इसीमें देश का कल्याण है।

: ३५ :

गांधीजी की सिखावन

विनोबा

अभी इस समय दिल्ली में जमना नदी के किनारे पर एक महान् पुरुष की देह अग्नि में जल रही है। हम यहां जिस तरह अब प्रार्थना कर रहे है, उसी तरह हिन्दुस्तान भर में प्रार्थना चल रही है। कल के ही दिन शाम के पांच बज गए थे। प्रार्थना का समय हुआ और गांधीजी प्रार्थना के लिए निकले। प्रार्थना के लिए लोग जमा हुए थे। गांधीजी प्रार्थना की जगह पहुँचे ही थे कि किसी नौजवान ने आगे झपटकर उनकी देह पर गोलियां चलाई। गांधीजी की देह गिर पडी। खून की धारा बहने लगी। बीस मिनट के बाद देह का जीवन समाप्त हुआ। थोडे ही समय पहले सरदार वल्लभ-भाई पटेल एक घंटा तक उनसे चर्चा करके लौट रहे थे। रास्ते में ही उन्हें खबर मिली और वे लौट आये। बिड़ला-हाउस में पहुँचने पर जो दृश्य उन्हें दिखाई दिया, उसका वर्णन उन्होंने कल रेडियो पर किया। यह आपमें से बहुतों ने सुना ही होगा। लेकिन यहां देहात से भी कुछ भाई आये है, उन्होंने यह नहीं सुना होगा। सरदार वल्लभ-भाई ने एक बात बड़े महत्त्व की कही। वह यह कि गांधीजी के चेहरे पर दया-भाव तथा माफी का भाव, यानी अपराधी के प्रति क्षमा-वृत्ति दिखाई देती थी। आगे

चलकर वल्लभभाई ने कहा कि इस समय कितना ही दुःख क्यों न हुआ हो, गुस्सा नही आने देना चाहिए। और यदि आये भी तो उसे रोकना चाहिए। गांधीजी ने जो चीज हमें सिखाई, उसका अमल उनके जीते जी हम नही कर पाये। लेकिन अब उनकी मृत्यु के बाद तो हम अमल करें।

ऐसी ही घटना पांच हजार वर्ष पहले हिन्दुस्तान में घटी थी। भगवान् श्रीकृष्ण की उमर ढल गई थी। जीवन भर उद्योग करके वे थक गए थे। गांधीजी की तरह उन्होंने जनता की निरन्तर सेवा की थी। थके हुए एक बार वे जंगल में किसी पेड़ के सहारे आराम ले रहे थे। इतने में एक व्याध उस जंगल में पहुँचा। उसे लगा कि कोई हिरन पेड़ के सहारे बैठा है। शिकारी जो ठहरा! उसने लक्ष्य साधकर तीर छोड़ा। तीर भगवान् के पांव में लगा और खून की धारा बहने लगी। शिकारी अपना शिकार पकड़ने के इरादे से नजदीक आया। लेकिन सामने प्रत्यक्ष भगवान् को जख्मी पाया। उसे बडा दु ख हुआ। अपने हाथों से बड़ा पाप हुआ ऐसा सोचकर वह दुःखी हुआ। भगवान् कृष्ण तो थोड़े ही समय में चल बसे। लेकिन मरने से पहले उन्होंने उस व्याध से कहा, "हे व्याध! डरना नही। मृत्यु के लिए कुछ-न-कुछ निमित्त बनता ही है। तू निमित्त बन गया।" ऐसा कहकर भगवान् ने उसे आशीर्वाद दिया।

इसी तरह की घटना पांच हजार वर्ष के बाद फिर से घटी है। यों देखने में तो ऐसा दिखाई देगा कि उस व्याध ने अज्ञानवश तीर मारा था, यहां इस नौजवान ने सोच-समझकर, गांधीजी को ठीक पहचानकर, पिस्तौल चलाई। इसी काम के लिए वह दिल्ली गया था। वह दिल्ली का रहने वाला नही था। गांधीजी के प्रार्थना के लिए जाते हुए वह उनके पास पहुँचा और बिल्कुल उनके नजदीक जाकर उसने गोलियां छोड़ी। ऊपर से यों दिखाई देगा कि गांधीजी को वह जानता था। लेकिन वास्तव में ऐसा नही था। जैसा वह व्याध अज्ञानी थी, वैसा ही यह युवक भी अज्ञानी था। उसकी यह भावना थी कि गांधीजी हिन्दूधर्म को हानि पहुँचा रहे है, इसलिए उसने उनपर गोलियां छोडी। लेकिन दुनिया में आज हिन्दूधर्म का नाम यदि किसीने उज्ज्वल रखा तो वह गांधीजी ने ही रखा है। परसों उन्होंने खुद ही कहा कि "हिन्दूधर्म की रक्षा करने के लिए किसी मनुष्य को नियुक्त करने की जरूरत यदि भगवान को महसूस हुई तो इस काम के लिए वह मुझे ही नियुक्त करेगा।" इतना अत्म-विश्वास उनमें था। उन्हे जो सत्य मालूम होता था वह वे साफ-सीधे कह देते थे। बड़े लोग अपनी रक्षा के लिए 'बाडीगार्ड' यानी देह-रक्षक रखते है। गांधीजी ने ऐसे देह-रक्षक कभी नहीं रखे। देह को वे तुच्छ समझते थे। मृत्यु के पहले ही वह मरकर रहे थे।

निर्भयता उनका व्रत था। जहां किसी फौज को भी जाने की हिम्मत न हो, वहां अकेले जाने की उनकी तैयारी थी।

जो सत्य है, लोगों के हित का है, वही कहना चाहिए; फिर भले ही किसीको अच्छा लगे, बुरा लगे, या उसका परिणाम कुछ भी निकले, ऐसी उनकी वृत्ति थी। वे कहते थे, "मृत्यु से डरने का कोई कारण ही नही है, क्योकि हम सब ईश्वर के ही हाथ में है। हमसे जबतक वह सेवा लेना चाहता है, तबतक लेगा और जिस क्षण वह उठा लेना चाहेगा, उस क्षण उठा लेगा। इसलिए जो सत्य लगता है, वही कहना हमारा धर्म है। ऐसे समय यदि मै शायद अकेला भी पड़ जाऊँ और सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो जाय तो भी मुझे जो सत्य दिखाई देता है, वही मुझे कहना चाहिए।" उनकी इस तरह की निर्भीकतापूर्ण वृत्ति रही और उनकी मृत्यु भी किस अवस्था में हुई! वे प्रार्थना की तैयारी में थे। यानी उस समय उनके चित्त मे भगवान् के सिवा दूसरा विचार नही था। उनका सारा जीवन ही हमने सेवामय तथा परोपकारमय देखा है। परन्तु फिर भी प्रार्थना की भावना और प्रार्थना का समय विशेष पवित्र कहना चाहिए। राजनैतिक आदि अनेक महत्त्व के कामों में वे रहते थे। लेकिन उनकी प्रार्थना का समय कभी नही टला। ऐसे प्रार्थना के समय ही देह मे से मुक्त होने के लिए मानो भगवान् ने आदमी भेजा। अपना काम करते हुए मृत्यु हुई, इस विषय का उनके दिल का आनन्द और निमित्तमात्र बने हुए गुनहगार के प्रति दयाभाव, इस तरह का दोहरा भाव उनके चेहरे पर मृत्यु के समय था, ऐसा सरदारजी को दिखाई दिया।

गांधीजी ने उपवास छोड़ा, उस समय देश में शांति रखने का जिन्होने वचन दिया उनमें कांग्रेस, मुसलमान, सिख, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल आदि सब थे। हम प्रेम के साथ रहेंगे, ऐसा उन्होंने वचन दिया और उस तरह रहने भी लगे थे कि एक दिन प्रार्थना-सभा में गांधीजी को लक्ष्य करके किसी ने बम फेंका। वह उन्हें लगा नहीं। उस दिन प्रार्थना-सभा में गाधीजी ने कहा, "मै देश और धर्म की सेवा भगवान् की प्रेरणा से करता हूँ। जिस दिन मै चला जाऊँ, ऐसी उसकी मर्जी होगी, उस दिन वह मुझे ले जायगा। इसलिए मृत्यु के विषय में मुझे कुछ भी विशेष नही मालूम होता है।" दूसरा प्रयोग कल हुआ। भगवान् ने गांधीजी को मुक्त किया।

हम सब देह छोडकर जानेवाले है। इसलिए मृत्यु के विषय में तनिक भी दुःख मानने का कारण नहीं है। माता की अपने दो-चार बच्चों के विषय में जो वृत्ति रहती है वह दुनिया के सब लोगों के विषय में गांधीजी की थी। हिंदू, हरिजन, मुसलमान,

ईसाई, और जिन राज्यकर्त्ताओं से वे लडे, वे अंग्रेज, इन सबके प्रति उनके दिल में प्रेम था। सज्जनों पर जिस तरह प्रेम करते है, वैसे दुर्जनों पर भी करो, शत्रु को प्रेम से जीतो, ऐसा मंत्र उन्होंने दिया। उन्होंने ही हमें सत्याग्रह सिखाया। खुद आपत्तियां झेलकर सामनेवालों को जरा भी खतरा न पहुँचे, यह शिक्षा उन्होंने हमें दी। ऐसा पुरुष देह छोड़कर जाता है, तब वह रोने का प्रसंग नहीं होता। मां हमें छोड़कर जाती है, उस समय जैसा लगता है, वैसा गांधीजी के मरने से लगेगा जरूर। लेकिन उससे हममें उदासी नहीं आनी चाहिए।

एकनाथ महाराज ने भागवत में कहा है, "मरने वाले गुरु का और रोने वाले चेले का दोनों का बोध व्यर्थ गया।" एक था मृत्यु से डरने वाला गुरू। मृत्यु के समय वह कहने लगा, "अरे, मै मरता हूँ।" तब उसके शिष्य भी रोने लगे। इस तरह गुरु मरने वाला और चेला रोने वाला दोनों ने ही जो बोध (ज्ञान) प्राप्त किया था, वह फजूल गया—ऐसा एकनाथ महाराज ने कहा है।

गांधीजी मृत्यु से डरने वाले गुरु नही थे। जिस सेवा में निष्काम भावना से देह लगाई जाय, वह सेवा ही भगवान् की सेवा है। वह करते हुए जिस दिन वह बुलाएगा, उस दिन जाने को तैयार रहें, ऐसी सिखावन उन्होंने हमें दी। तदनुसार ही उनकी मृत्यु हुई। इसलिए यह उत्तम अन्त हुआ, ऐसा हम पहचान लें और काम करने लग जायें।

कुछ दिन पहले ही आश्रम के कुछ भाई गाधीजी से मिलने गए थे। उस समय उनका उपवास जारी था। उपवास मे जिदा रहेंगे या मर जायंगे, इसका किसको पता था? आश्रम के भाइयों ने उनसे पूछा, "आप यदि इस उपवास में चल बसे तो हम कौन-सा काम करें?" गांधीजी ने जवाब दिया, "इस तरह का सवाल ही आपके सामने कैसे खड़ा हुआ? मैने तो आपके लिए काफी काम रक्खा है। हिन्दुस्तान में खादी करनी है। खादी का शास्त्र बनाना है। इतना बड़ा काम आपके लिए होते हुए "क्या करें?" ऐसी चिन्ता क्यों होती है?"

इसलिए हमारे लिए उन्होंने जो काम रख छोड़ा, वह हमें पूरा करना चाहिए। असंख्य जातियां और जमातें मिलकर हम यहां एक साथ रहते है। चालीस करोड़ का अपना देश है। यह हमारा बड़ा भाग्य है। लेकिन एक-दूसरे पर प्रेम करते हुए रहेंगे, तभी यह होगा। इतना बडा देश होने का भाग्य शायद ही मिलता है। हमारे देश में अनेक धर्म है, अनेक पंथ है। मै तो यह अपना वैभव समझता हूँ। लेकिन हम सब प्रेम के साथ रहेंगे, तभी यह वैभव सिद्ध होगा। हम प्रेम से रहे, यही गांधीजी ने

अपने अंतिम उपवास से हमें सिखाया है। बच्चे एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहें, इसलिए जिस तरह माता भोजन छोड़ देती है, वैसा ही वह उपवास था। सारे मनुष्य एक से हैं, यह उन्होंने हमें सिखाया। हरिजन-सेवा, खादी-सेवा, ग्राम-सेवा, भंगियों की सेवा आदि अनेक सेवा-कार्य हमारे लिए छोड़ गए है।

...सबके दिल एक विशेष भावना से भरे हुए हैं। लेकिन मुझे कहना यह है कि हम केवल शोक करके न बैठे रहें। हमारे सामने जो काम पड़ा है, उसमें लग जायँ। यह जो मैं आपको कह रहा हूँ, वैसा ही आप मुझे भी कहें। इस तरह एक दूसरे को बोध देते हुए हम सब गांधीजी के बताए काम करने लग जायं। गीता में और कुरान में कहा है कि भक्त और सज्जन एक दूसरे को बोध देते है और एक दूसरे पर प्रेम करते है। वैसा हम करें। आज तक बच्चों की तरह हम कभी-कभी झगड़ते भी थे। हमें वे सँभाल लेते थे। वैसा सबको सँभालने वाला अब नहीं रहा है, इसलिए एक दूसरे को बोध देते हुए और एक दूसरे पर प्रेम करते हुए हम सब मिलकर गांधीजी की सिखावन पर चलें।

: ३६ :

निपुण कलाकार

जवाहरलाल नेहरू

सन् १९१६। ३२ वर्ष से ऊपर—जब मैंने बापू को पहले-पहल देखा था, और तबसे एक युग बीत गया है और जब हम बीते दिनों की ओर देखते हैं तो दिमाग़ में भावों का ढेर-सा लग जाता है। हिन्दुस्तान के इतिहास और कहानी का वह कैसा अजीव जमाना था, जबकि अपने तमाम चढ़ाव-उतार और हार-जीत के बावजूद वह एक संगीत और वीरता के गुणों से भरा था, यहाँतक कि हमारी नाचीज़ ज़िदगी तरह-तरह की चमक से भर गई थी, क्योंकि उस युग में हम जीवित थे और कम या ज्यादा अंशों में हिन्दुस्तान के उस महान् नाटक के पात्र थे।

यह युग दुनिया भर में इन्कलाबों, उपद्रवों और उत्तेजक घटनाओं का युग था। फिर भी हिन्दुस्तान की घटनाएँ अपनी नवीनता और मौलिकता के कारण अलग छिकी हुई मालूम पड़ती हैं, क्योंकि इनकी पृष्ठभूमि बिल्कुल जुदा थी। अगर किसी आदमी ने बापू को पूरी तरह जाने बिना इस युग को समझने की कोशिश की

हो तो उसे अचरज होगा कि हिन्दुस्तान में यह सब क्यों और कैसे हुआ ? इसकी व्याख्या करना कठिन है। सिर्फ बेजान दलीलों से इसे समझना और कठिन है। ऐसा कभी-कभी होता है कि एक आदमी या राष्ट्र तक किसी भावना के प्रवाह में एक खास तरह के काम की दिशा में बह जाता है। यह काम कभी अच्छा होता है, कभी बुरा भी। परन्तु जब उत्तेजना खत्म हो जाती है तो इन्सान बहुत जल्दी अपनी क्रियाशीलता या निष्क्रियता की स्वाभाविक अवस्था पर आ जाता है।

इस जमाने में हिन्दुस्तान के बारे में सिर्फ यह ताज्जुब की बात नही थी कि उसने एक ऊचे पैमाने पर कुछ काम किये, लेकिन यह भी कम अचरज की बात नहीं थी कि यह काम ऊचे पैमाने पर वह एक लम्बे अर्से तक करता रहा। बेशक यह एक लाजवाब काम था। जबतक कोई उस जोरदार शख्सियत पर गौर नही करता, जिसने इस जमाने को बिल्कुल अपने तरीके से ढाल दिया था, तबतक उसे नहीं समझा जा सकता। एक विशाल मूर्ति के समान वे इस सदी के हिन्दुस्तान के आधे इतिहास में पैर फैलाए खडे है। यह मूर्ति सिर्फ जिस्मानी नही, बल्कि दिमागी और रूहानी भी थी।

हम बापू के लिए दु:खी है और अपनेको अनाथ महसूस करते है। उनकी उस आला जिन्दगी की ओर मुडकर देखने पर दु:ख की कोई बात नजर नही आती। इतिहास मे बहुत कम लोगों को अपनी जिन्दगी में ही अपने उसूलों को इतना सफल होते देखने की किस्मत मिली है। उन्हें हमारी नाकामयाबियों पर दु.ख था और वे इसलिए दु.खी थे कि हिन्दुस्तान को वे ज्यादा ऊंचाई तक न उठा सके। इस रंज और गम की बात को बहुत आसानी से समझा जा सकता है। फिर भी यह कौन कह सकता है कि उनकी जिन्दगी नाकामयाब थी ? उन्होने जिस चीज को छुआ उसे काबिल और कीमती बना दिया। उन्होंने जो कुछ किया, उसके ठोस नतीजे निकले। शायद नतीजे इतने ऊचे न रहे हों, जितने उन्होने सोचे थे। किसीका यह ख़याल बन सकता है कि उन्होंने जिस दिशा में कोशिश की, उसमें नाकामयाब कभी नही हुए। गीता के उपदेश के अनुसार उनकी सारी कोशिशें नतीजे के प्रति बिना लगाव के तटस्थ भाव से होती थी और इसीलिए नतीजे खुद उनके पास आते थे।

गैरमामूली हिम्मत, कठोर काम और मेहनत से भरी उनकी लंबी जिन्दगी के दौरान में शायद ही कभी कोई गैरवाजिब बात होती हुई दिखलाई दी हो। सब तरफ फैले उनके काम धीरे-धीरे एक दूसरे में समा गए थे—उन्होने एक लय का रूप ले लिया था और उससे निकला हुआ एक-एक शब्द, एक-एक इशारा

इस लय में बिल्कुल मौजूं बैठता था और इस तरह से बिना जाने एक निपुण कलाकार बन गए थे ; क्योंकि उन्होंने जिन्दा रहने की कला सीखी थी, हालांकि जिस जिन्दगी को उन्होंने अपनाया, वह दुनिया की जिन्दगी से बिल्कुल जुदा थी। उनकी जिन्दगी से यह साफ हो गया था कि सच्चाई और अच्छाई की तलाश दूसरी बातों के साथ-साथ इन्सानी जिन्दगी को कलाकारी की ओर ले जाती है।

वे जैसे-जैसे बूढ़े होते जाते थे, उनका शरीर उनके भीतर की ताकतवर आत्मा का वाहक बनता जाता था। लोग जब उनकी बातों को सुनते या उनको देखते थे, तो उनके शरीर को बिल्कुल भूल जाते थे और इसलिए वे जहाँ बैठते थे, एक मंदिर बन जाता था, जिस जमीन पर चलते थे, वह एक ऋषि-भूमि बन जाती थी।

उनकी मौत तक में एक शानदारपूर्ण कलाकारी थी। हर निगाह से उस आदमी और उसके जीवन के अनुरूप ही यह उत्कर्ष था। इसमें शक नहीं कि इस मौत ने उनकी जिन्दगी की शिक्षा को और कीमती बना दिया था। एकता के मकसद के लिए वे मरे—वह एकता जिसके लिए उन्होंने अपनी तमाम जिन्दगी को खपा दिया था, और जिसके लिए वे बिना रुके हमेशा काम करते रहे, खासकर पिछले सालों में। उनकी मौत अचानक हुई, ऐसी मौत जिससे मरना हर आदमी चाहेगा। बुढ़ापे में होने वाली न तो कोई लम्बी बीमारी उनके पास फटकी थी, न शरीर पीला पड़ा था और न दिमाग में भूलने का रोग शुरू हुआ था। तब हम क्यों उनके लिए दु.खी हों ? हमारे दिमाग में उनकी याद एक ऐसे गुरु की याद है, जिसका एक-एक कदम आखीर तक रोशनी से भरा था, जिसकी मुस्कराहट दूसरों को भी छूत लगाने वाली थी, जिसकी आँखों में हमेशा हँसी नाचती थी। देह और दिमाग के साथ कमज़ोर होने वाली उनकी ताकत की याद को हम स्थान नही देंगे। वे अपनी ऊची-से-ऊंची ताकत और अधिक-से-अधिक बल के साथ जिये और मरे। अपने पीछे हमारे दिमागों में और हमारे युग के दिमाग में एक ऐसी तस्वीर छोड़ गए है, जो कभी-भी धुंधली नही पड़ेगी।

यह तस्वीर कभी धुधली नहीं पड़ेगी। लेकिन उन्होंने इससे बहुत-कुछ ज्यादा किया है, क्योंकि अब वे हमारे दिमाग और आत्मा के ज़र्रे-ज़र्रे में घुल गये है और इस तरह उन्हें बदल दिया है, एक नया रूप दे दिया है। गांधीजी की पीढ़ी गुज़र जायगी, परन्तु वह गुण सदा अमर रहेगा और आने वाली हर पीढ़ी पर अपना असर डालेगा, क्योंकि आज वह भारत की आत्मा का एक जुज़ बन गया है। ठीक जिस समय इस मुल्क में हमारी आत्मा गरीब हो रही थी, बापू हमारे बीच हमें मजबूत और

हमें खुशहाल बनाने आये। इस बीच उन्होंने जो ताकत हमें दी, वह एक क्षण, एक दिन या एक वर्ष तक ही ठहरने वाली नहीं थी, बल्कि वह हमारी राष्ट्रीय विरासत में एक बढ़ोतरी थी।

गांधीजी ने हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए और हमारी कमजोर हस्तियों तक के लिए एक बहुत बड़ा काम किया है। इस काम को उन्होंने बहुत खूबी के साथ अंजाम दिया है। अब हमारी बारी है कि हम उनकी पाक याद को हमेशा कायम रखें और उनके काम को पूरी कुर्बानी के साथ सदा आगे बढ़ाते रहें और इस तरह समय-समय पर की गई अपनी प्रतिज्ञाओ का पालन कर सकें।

× × ×

....और तब गांधी आये। वे ताजी हवा के मानिन्द एक तेज़ धारा की तरह थे, जिसने हमें अपने शरीर को फैलाने और लम्बी सांस खीचने का मौका दिया। रोशनी की एक तेज किरण की भांति उन्होंने अँधेरे अन्तर में घुसकर हमारी आँखों के पर्दे को हटा दिया। हवा के बवंडर की तरह, जो बहुत-सी चीजों को उथल-पुथल कर देता है, उन्होने लोगों के दिमाग के तौर-तरीके में एक उथल-पुथल मचा दी। वे अपने आदर्श के नीचे नही उतरे; जनता की बोली में बात करते हुए, उनकी दर्दनाक हालत की ओर लगातार उनका ध्यान खीचते हुए, वे लाखों लोगों के भीतर से प्रकट होते हुए मालूम हुए। वे हमसे कहा करते थे कि जो लोग किसानों के शोषण पर जिन्दा है और जो उनकी ओर पीठ किये है, उन्हें उनकी ओर देखना चाहिए और उस हालत से छुटकारा पाना चाहिए, जिससे यह गरीबी और पीड़ा पैदा होती है। तभी राजनैतिक आज़ादी एक शक्ल धारण करती है और उसके भीतर से एक नये सन्तोष का जन्म होगा। उन्होंने जो कुछ कहा था, हमने उनमें से सिर्फ कुछ बातों को माना या कभी-कभी बिल्कुल नही माना। लेकिन यह सब खास अहमियत नही रखता। उनकी नसीहत का निचोड़ था निडरता और सच्चाई और इनसे जुड़ा हुआ काम या व्यवहार, जिसमें जनता की भलाई को हमेशा नजर में रखा जाय। हमारी पुरानी पुस्तकों में कहा गया है कि एक इन्सान या कौम के लिए सबसे बड़ा तोहफा 'निर्भीकता' है। सिर्फ जिस्मानी नही, बल्कि दिमाग़ से भी डर बिल्कुल निकल जाना चाहिए। जनक और याज्ञवल्क्य ने हमारे इतिहास की प्रभात वेला में कहा था कि यह जनता के नेताओं का काम है कि वे उन्हें निडर बनावें, लेकिन अंग्रेजी राज्य के समय हिन्दुस्तान में सबसे जोरदार वृत्ति भय की थी—चारों ओर फैला तकलीफदेह और दमघुटाऊ डर; फौज, पुलिस और सी. आई. डी. का डर, अधिकारी

तबके का डर, दबाने वाले कानूनों और जेल का डर ; जमीदारों के दलालों का डर; साहूकारों का डर; बेकारी और भुखमरी का डर जो हमेशा दरवाजे पर खड़े रहते थे। इस चारों तरफ फैले डर के खिलाफ गाधीजी की सामूहिक और जोरदार आवाज उठी थी, "डरो मत" ! क्या यह कोई मामूली बात थी ? बिल्कुल नही। और इसपर भी डर के अपने भूत होते है, जो असलियत से भी ज्यादा डरावने होते है, इस असलियत की अगर खामोशी के साथ छानबीन की जाय और इसके नतीजों को अपने आप मान लिया जाय तो बहुत-सा डर अपने आप खतम हो जाता है।

इस तरह लोगों के सिर से उस काले डर का पर्दा इतनी जल्दी उठ गया कि हमें अचरज हुआ--इतनी पूर्णता और विचित्रता के साथ कि हम यकीन भी न कर सके। डर और आडम्बर का गहरा साथ होता है, इसलिए सत्य निर्भीकता के बाद आता है। हिन्दुस्तानी जितने सत्यवादी पहले थे, उतने नही बने और न उन्होंने अपने स्वभाव को ही एक रात मे बदला ; इतने पर भी इन्कलाब का एक समुद्र दिखलाई देने लगा, क्योकि आडम्बर और चोरी से किये हुए आचरण की जरूरत कम रह गई। यह एक मनोवैज्ञानिक क्रांति थी, मानों किसी मनोविशेषज्ञ ने रोगी के भीतर गहराई से प्रवेश कर उसकी उलझी पेचीदगियों की जड़ को मालूम कर लिया हो और इस तरह उसे उसके सामने खोलकर रखा और मुक्ति दिलाई।

शायद हम उतने सचाई-पसंद नही हो सके, जितने पहले थे, लेकिन गांधीजी हमेशा एक दृढ सत्य के प्रतीक के रूप में हमारे बीच आये और हमें सदा सत्य के निकट खीचने की कोशिश की।

यह कोई अचरज की बात नहीं है कि इस अद्भुत ताकतवर शख्स ने, जिसमें कि आत्मविश्वास और गैरमामूली ताकत भरी थी, जो हर इन्सान की आज़ादी और समानता का नुमाइन्दा था, जो सब बातो को गरीबी की तराजू से ही नापता था, हिन्दुस्तान की जनता को मुग्ध करके उसे चुम्बक की तरह अपनी ओर खींच लिया। जनता की निगाह में वे गुजरे और आगे आने वाले जमाने की कडी थे और जो मायूसीभरे मौजूदा जमाने से आशा के भावी जीवन तक पहुँचने का पुल बना देना चाहते थे। और सिर्फ जनता ही नही, बल्कि बुद्धिवादी और दूसरे लोग भी--हालाँकि उनके दिमाग अक्सर परेशान और अनिश्चित रहते थे और उनके लिए अपनी पुरानी आदतों को बदलना बड़ा कठिन था--उनके असर से अछूते नहीं रहे। इस तरह उन्होंने एक मजबूत दिमागी इन्कलाब कर दिखाया, और यह तब्दीली सिर्फ उनमें ही नही हुई जो उनके नेतृत्व को मानते थे, बल्कि उनके

विरोधी और तटस्थ लोगों तक में हुई ; जो आखिर तक यह तय नहीं कर पाये थे कि क्या करना चाहिए और क्या सोचना चाहिए ।

: ३७ :

शक्ति और प्रेरणा के स्रोत

वल्लभभाई पटेल

मेरा दिल दर्द से भरा हुआ है। क्या कहूँ क्या न कहूँ ? जबान चलती नहीं है। आज का अवसर भारतवर्ष के लिए सबसे बड़े दुःख, शोक और शर्म का अवसर है। आज चार बजे मैं गांधीजी के पास गया था और एक घंटे तक मैंने उनसे बात की थी। वह घड़ी निकालकर मुझसे कहने लगे, "मेरा प्रार्थना का समय हो गया है। अब मुझे जाने दीजिये।" वह भगवान् के मन्दिर की तरफ अपने हमेशा के समय पर चलने के लिए निकल पड़े। तब मैं वहां से अपने मकान की तरफ चला। मैं मकान पर अभी पहुँचा नहीं था कि इतने में रास्ते में एक भाई मेरे पास आया। उसने कहा कि एक नौजवान हिन्दू ने गांधीजी के प्रार्थना की जगह पर जाते ही अपनी पिस्तौल से उनपर तीन गोलियां चलाईं, वह वहां गिर पड़े और उनको वहां से उठाकर घर में ले जाया गया है। मैं उसी वक्त वहां पहुँच गया। मैंने उनका चेहरा देखा। वही चेहरा था। वैसा ही शांत चेहरा था जैसा हमेशा रहता था। उनके दिल में दया और माफी के भाव अब भी उनके चेहरे से प्रकट होते थे। आस-पास बहुत लोग जमा हो गए। लेकिन वह तो अपना काम पूरा करके चले गए।

पिछले चन्द दिनों से उनका दिल खट्टा हो गया था और आखिर उन्होंने उपवास भी किया। उपवास में चले गए होते, तो अच्छा होता। लेकिन उनको और भी काम देना था तो रह गए। पिछले हफ्ते में एक दफा और एक हिंदू नौजवान ने उनके ऊपर बम फेंकने की कोशिश की थी। उसमें भी वह बच गए थे। इस समय पर ही उनको जाना था। आज वह भगवान् के मन्दिर में पहुँच गए ! यह बड़े दु ख का, बड़े दर्द का, समय है। लेकिन यह गुस्से का समय नही है ; क्योंकि अगर हम इस वक्त गुस्सा करें, तो जो सबक उन्होंने हमको जिन्दगी भर सिखाया, उसे हम भूल जायंगे और कहा जायगा कि उनके जीवन में तो हमने उनकी बात नहीं मानी, उनकी मृत्यु के बाद भी हमने नहीं माना। हमपर यह धब्बा लगेगा। मेरी प्रार्थना है कि कितना भी दर्द हो,

कितना भी दु:ख हो, कितना भी गुस्सा आवे, लेकिन गुस्सा रोककर अपने पर काबू रखिये। अपने जीवन में उन्होंने हमे जो कुछ सिखाया, आज उसीकी परीक्षा का समय है। बहुत शांति से, बहुत अदब से, बहुत विनय से एक-दूसरे के साथ मिलकर हमे मजबूती से पैर जमीन पर रखकर खडा रहना है। आप जानते है कि हमारे ऊपर जो बोझ पड रहा है, वह इतना भारी है कि करीब-करीब हमारी कमर टूट जायगी। उनका एक सहारा था और हिन्दुस्तान को वह बहुत बडा सहारा था। हमको तो जीवन भर उन्हीका सहारा था। आज वह चला गया! वह चला तो गया, लेकिन हर रोज, हर मिनट, वह हमारी आखो के सामने रहेगा! हमारे हृदय के सामने रहेगा; क्योकि जो चीज वह हमको दे गया है, वह तो कभी हमारे पास से जायगी नही।

...उनकी आत्मा तो अब भी हमारे बीच में है। अभी भी वह हमें देख रही है कि हम लोग क्या कर रहे है। वह तो अमर है। जो नौजवान पागल हो गया था, उसने व्यर्थ सोचा कि वह उनको मार सकता है। जो चीज उनके जीवन में पूरी न हुई, शायद ईश्वर की ऐसी मर्जी हो कि उनके द्वारा इस तरह से पूरी हो; क्योकि इस प्रकार की मृत्यु से हिन्दुस्तान के नौजवानो का जो कानशंस (अन्तरात्मा) है, जो हृदय है, वह जाग्रत होगा, मै ऐसी आशा करता हूँ। मै उम्मीद करता हूँ और हम सब ईश्वर से यह प्रार्थना करेगे कि जो काम वह हमारे ऊपर बाकी छोड गए है, उसे पूरा करने में हम कामयाब हो। मै यह उम्मीद करता हूँ कि इस कठिन समय मे भी हम पस्त नही हो जायंगे, हम नाहिम्मत भी नही हो जायगे। सबको दृढता से और हिम्मत से एक साथ खडा होकर इस बहुत बडी मुसीबत का मुकाबिला करना है और जो बाकी काम उन्होंने हमारे ऊपर छोडा है, उसे पूरा करना है। ईश्वर से प्रार्थना कर, आज हम निश्चय कर ले कि हम उनके बाकी काम को पूरा करेगे।

× × ×

जबसे गाधीजी हिन्दुस्तान मे आए तबसे, या जब मैने जाहिर जीवन शुरू किया तबसे, मै उनके साथ रहा हूँ। अगर वे हिन्दुस्तान न आए होते तो मै कहां जाता और क्या करता, उसका जब मै ख्याल करता हूँ तो एक हैरानी-सी होती है। गाधीजी ने मेरे जीवन मे कितना पल्टा किया। सारे भारतवर्ष के जीवन में उन्होने कितना पल्टा किया। यदि वह हिन्दुस्तान मे न आए होते तो राष्ट्र कहा जाता? हिन्दुस्तान कहां होता? सदियों से हम गिरे हुए थे। वह हमें उठाकर कहातक ले आये? उन्होंने हमे आजाद बनाया। उनके हिन्दुस्तान आने के बाद क्या-क्या हुआ और किस

तरह से उन्होंने हमे उठाया, कितनी दफा, किस-किस प्रकार की तकलीफें उन्होंने उठाई, कितनी दफे वह जेलखाने में गए और कितनी दफे उपवास किया, यह सब आज खयाल आता है। कितने धीरज से, कितनी शाति मे वह तकलीफें उठाते रहे और आखिर आजादी के सब दरवाजे पार कर हमें उन्होने आजादी दिलवाई !

: ३८ :

उनकी विरासत

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

सब कुछ समाप्त हो गया !

संसार एकदम खाली लगता है—बुरी तरह से खाली !

पछी शुक्रवार ३० जनवरी को शाम को ५ बजे उड गया।

शरीर हमारे पास रह गया और मुख पर थिरकती मुस्कान ने भ्रम को कुछ देर और जीवित रखा। लेकिन शनिवार, ३१ जनवरी, को हमने अपने पूर्वजो की सीख के अनुसार अपने प्रिय नेता के शरीर को जमुना के तट पर अग्नि को अर्पित कर दिया। फिर हमने अवशेषों को एकत्र किया। निष्ठा के कारण इस भस्म मे भी हमें बापू दिखाई देने लगे और अनाथ जनता इस भुलावे मे भी शौक मे पडी रही। लेकिन हमारे पूर्वजो की पवित्र शिक्षा ने हमे भस्म को तत्त्वार्पित करने और परमेश्वर में ध्यान लगाने के लिए उत्प्रेरित किया। इसलिए हमने उनके फूल पावन गंगा को प्रार्थना-पूर्वक अर्पित कर दिये और अब शोक-संतप्त हृदय के साथ वापस लौटते समय चारो ओर रिक्तता का आभास हो रहा है। हे भगवान् ! हर दिन बापू के निधन के समय हमारा ध्यान हमारे प्रिय शिक्षक, हमारे अजातशत्रु, हमारे सत्यधर्मपराक्रम—की ओर जाय जो करोडो व्यक्तियो के लिए अचूक चिकित्सक के समान थे, जो भय को दूर कर देते थे और सदा प्रेम का पोषण करते थे।

भगवान् करे कि हर दिन, सायं ५ बजे भारत मे प्रत्येक नर-नारी उस दृश्य का पुन: स्मरण करे, जिसमें एकत्र नर-नारी-समुदाय सम्मिलित होने के लिए आते बापू की प्रतीक्षा कर रहा हो। उस प्रिय मुख की याद करे और जिसकी और जिसके लिए वे (गांधीजी) कामना करते थे, उसका मनन करें। हर शाम को उस घडी, भारत में सकल-सद्भावना के लिए हमें दो मिनट प्रार्थना करनी चाहिए। हमारा शोक भी क्रोध

और क्रोध में सांत्वना और रूप प्राप्त करता है। उस मूल पाप के विरुद्ध, जो हमारी प्रवृत्ति को विषाक्त करता है, हमारी जागरूकता सतत होनी चाहिए। इस अपूर्व संसार में दमन और राजकीय उत्पीड़न से नहीं बचा जा सकता। लेकिन इस बात को हमें अच्छी और पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि सद्भावना सद्भावना के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती। हमारे प्रिय नेता के बताये रास्ते के बिना अन्य किसी प्रकार बुराई पर विजय नही पाई जा सकती। शांति के बारे में बड़ी लड़ाकू बातें की जा रही हैं और सद्भावना के लिए भी बड़ी उत्तेजनापूर्ण आवाजें उठाई जा रहीं हैं; लेकिन आग को तेल छिड़ककर नहीं बुझाया जा सकता। काश कि हम प्यार की उस सीख को, जो हमारे मृत नेता ने एक विरासत की तरह हमारे लिए छोड़ी है, उनकी शिक्षा को और उनके द्वारा बसर किये गए जीवन को याद रख सकें।

प्यार मांगिये मत। प्यार इस तरह से हासिल नहीं किया जा सकता। अपना प्यार बढ़ाइये—बदले में अधिक प्यार उत्प्रेरित होगा और आपको प्राप्त होगा। यह नियम है और कोई व्यवस्था या तर्क इसे बदल नही सकता।

वे चले गए और यदि हम उनकी शिक्षा के अनुसार इस नियम का अनुसरण नहीं करेंगे और इसे शिक्षक के साथ ही समाप्त हो जाने देंगे तो हमारा पतन हो जायगा और यथार्थ में हम हत्यारे के सहयोगी बन जायंगे। लेकिन अगर सच्चे दिल से हम उनके नियम का पालन करें तो वे मर नही सकते, वे हमारे भीतर और हमारे द्वारा जीवित रहेंगे। हमें याद रखना चाहिए कि हमारे प्रिय नेता किस प्रकार प्रतिदिन उनके पास जाते थे और किस प्रकार जनता उनके साथ मिलकर कहती थी :

ईश्वर अल्ला तेरे नाम—
सबको संमति दे भगवान।
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतं शरीरम् ।
ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥

: ३६ :

वह प्रकाश

श्री अरविन्द

जो प्रकाश स्वतंत्रता-प्राप्ति में हम लोगों का नेतृत्व करता रहा, वह ऐक्य-प्राप्ति नहीं करा सका; परन्तु वह प्रकाश बुझा नही है। वह अभी प्रज्वलित है और

जबतक विजयी न हो जायगा, जलता ही रहेगा। मेरा विश्वास है कि इस देश का भविष्य अत्यन्त महान् है तथा यहां ऐक्य अवश्य स्थापित होगा। जिस शक्ति ने संघर्ष काल में हम लोगों का नेतृत्व करके लोगों को स्वतंत्रता प्राप्त कराई, वही शक्ति हमें उस लक्ष्य तक भी ले जायगी जिसके लिए महात्माजी अंत तक सचेष्ट रहे और जिसके कारण उन्हें दुर्घटना का शिकार होना पड़ा। जिस प्रकार हमने स्वतंत्रता प्राप्त की, उसी प्रकार हमें ऐक्य-प्राप्ति में भी सफलता मिलेगी। भारत स्वतंत्र और संघटित रहेगा। देश में पूर्ण ऐक्य होगा तथा राष्ट्र अत्यन्त शक्तिशाली होगा।

: ४० :

वह ज्वलंत ज्योति

सरोजनी नायडू

अपना पथ-निर्देश, अपना प्यार, अपनी सेवा और प्रेरणा देते रहने के लिए अपने देशवासियों की पुकार और दुनिया की आवाज के जवाब में भूतकाल में मसीह की भांति तीसरे दिन वे फिर से अवतरित हो उठे है। और यद्यपि आज हम, जो उन्हें प्रेम करते थे, उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते थे, और जिनके लिए उनका नाम एक चमत्कार और आख्यान की तरह था, शोक प्रकट कर रहे हैं, आंसू बहा रहे हैं और दु:खित हो रहे हैं, तथापि मैं समझती हूं कि आज, जब अपनी मृत्यु के तीसरे दिन वे अपनी ही भस्म से एक बार फिर अवतरित हुए है, शोक मनाना समयानुकूल नहीं है और आंसू बहाना असंगत है। वे, जिन्होंने अपने जीवन, आचरण, त्याग, प्रेम, साहस और निष्ठा से संसार को सिखाया है कि यथार्थ वस्तु आत्मा है, शरीर नहीं और आत्मा की शक्ति संसार की सारी सेनाओं की संयुक्त शक्ति से, युगों की संयुक्त सेनाओं की शक्ति से अधिक है, कैसे मर सकते है? जो इतने छोटे, दुर्बल और धनहीन थे, जिनके पास अपना तन ढकने के लिए समुचित वस्त्र भी न थे, जिनके पास सूई की नोक बराबर जमीन तक न थी, वे हिंसा की शक्तियों से, संसार की ताकत से और संसार में जूझती शक्तियों की भव्यता से इतने अधिक शक्तिशाली कैसे थे? क्या कारण है कि यह छोटा-सा, नन्हा-सा, बच्चे से शरीर-वाला आदमी, जो इतना आतमत्यागी था और स्वेच्छा से इसलिए भूखा रहता था

कि गरीबो के जीवन के ज्यादा पास रह सके, वह सारे संसार पर——उनपर जो उनका आदर करते थे और उनपर भी जो उनसे घृणा करते थे——ऐसी सत्ता कैसे रखते थे, जैसी कि बादशाह भी कभी न रख सके ?

यह इसलिए था कि उन्हे प्रशंसा की चाह न थी, निन्दा की परवाह न थी। उन्हे केवल सत्य-मार्ग की परवाह थी। उन्हे केवल उन्ही आदर्शो की चिन्ता थी, जिनकी वह शिक्षा देते थे और जिनपर वह स्वयं चलते थे। मनुष्य के लोभ और हिंसा से जनित बडी-से-बडी दुर्घटनाओ के समय भी, जब सारे संसार की निन्दा का रणभूमि मे झडी पत्तियो और फूलो की भाति ढेर लग जाता था, अहिंसा के आदर्श मे उनकी निष्ठा नही डिगी। उनका विश्वास था कि चाहे सारा संसार अपना वध कर डाले, चाहे सारे संसार का लहू बह जाय, लेकिन फिर भी उनकी अहिंसा संसार की नई सभ्यता की वास्तविक नीव बनेगी। उनकी मान्यता थी कि जो जीवन के फेर मे पडा रहता है वह उसे खो देता है और जो जीवन का दान करता है वह उसे पा लेता है।

१९२४ मे उनका पहला उपवास, जिससे मै भी सम्बन्धित थी, हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए था। उसे पूरे राष्ट्र की सहानुभूति प्राप्त थी। उनका अन्तिम उपवास भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए था, लेकिन इसमे सारा राष्ट्र उनके साथ नही था। वह इतना बॅट गया था, वह इतना कटुतापूर्ण हो गया था, वह घृणा और सन्देह से इतना परिपूर्ण हो गया था, वह देश के विभिन्न धर्मो की शिक्षाओ से इतना विमुख हो गया था कि एक छोटा-सा भाग ही महात्माजी को समझ सका, उनके उपवास के अर्थो को जान सका। यह बिल्कुल स्पष्ट था कि इस उपवास मे राष्ट्र की निष्ठा उनके प्रति बंटी हुई थी। यह भी स्पष्ट था कि उनकी ही जाति के अतिरिक्त और कोई जाति ऐसी नही थी, जिसने उनको इतना नापसंद किया और अपनी नाराजगी और असन्तोष को इतने निन्दनीय ढग से व्यक्त किया। हिन्दू जाति के लिए कितने दुःख की बात है कि सबसे बडा हिन्दू——हमारे युग का एकमात्र हिन्दू——जो धर्म के सिद्धान्त, आदर्शो और दर्शन का इतना पक्का और सच्चा था, एक हिन्दू के ही हाथ से मारा जाय। वास्तव मे यह हिन्दू-धर्म के लिए एक समाधि-लेख जैसी बात है कि एक हिन्दू के हाथ से, हिन्दू-अधिकारों और हिन्दू-संसार के नाम पर उस हिन्दू का बलिदान हो, जो उन सबमे सबसे महान् था। लेकिन यह कोई खास बात नही। हममे से कई के लिए, जो उन्हें भूल नही सकते, यह एक व्यक्तिगत दुःख है, जो हर दिन और हर बरस खटकेगा, क्योंकि तीस साल से भी ज्यादा समय से हममें

से कुछ उनके इतने निकट रहे हैं कि हमारा जीवन और उनका जीवन एक-दूसरे का अविभाज्य अंग बन गया था। वास्तव में हममें से बहुतों की निष्ठा मर चुकी है। उनकी मौत ने हममें से कुछ के अंग भी काटकर अलग कर दिए हैं, क्योंकि हमारे जीवन-तन्तु, हमारे पुट्ठे, शिरा, हृदय और रक्त—सब उनके जीवन से जुड़े हुए थे।

लेकिन, जैसा कि मैं कहती हूं, यदि हम हतोत्साह हो जायं तो यह कृतघ्न भगोड़ों का-सा काम होगा। अगर हम सचमुच ही यह विश्वास कर लें कि वह नहीं रहे, अगर हम मान लें कि क्योंकि वह चले गए हैं, इसलिए सबकुछ खत्म हो गया है, तो हमारा प्यार और विश्वास किस काम आयगा? अगर हम यह समझ लें कि क्योंकि उनका शरीर हमारे बीच नहीं रहा है, इसलिए अब क्या बचा है तो उनके प्रति हमारी निष्ठा किस काम आयगी? क्या हम उनके वारिस, उनके आत्मिक उत्तराधिकारी, उनके महान् आदर्शों के रखवाले, उनके बड़े कार्य को चलाने वाले नहीं हैं? क्या हम उस काम को पूरा करने के लिए, उसे बढ़ाने के लिए और अपने संयुक्त प्रयासों से उनके अकेले में जो हो सकता था उससे अधिक सफल बनाने वाले नहीं हैं? इसीलिए मैं कहती हूं कि निजी शोक का समय बीत गया।

छाती पीटने और 'हाय-हाय' का वक्त बीत गया। यह समय है कि हम उठें और महात्मा गांधी का विरोध करनेवालों से कहें, "हम चुनौती स्वीकार करते हैं।" हम उनके जीवित प्रतीक हैं। हम उनके सिपाही हैं। हम रणोन्मत्त संसार के आगे उनके ध्वजवाहक हैं। हमारा ध्वज सत्य है। हमारी ढाल अहिंसा है। हमारी तलवार आत्मा की वह तलवार है, जो बिना खून बहाये जीत जाती है। भारत की जनता उठे और अपने आंसू पोंछे, उठे और अपनी सिसकियां खत्म करे, उठे और आशा और उत्साह से भरे। आइए, हम उनके व्यक्तित्व के ओज, उनके साहस के शौर्य और उनके चरित्र की महानता उनसे ग्रहण करें। और ग्रहण क्यों करें? वे तो स्वयं हमें दे गए हैं। क्या हम अपने नेता के पद-चिह्नों पर नहीं चलेंगे? क्या हम अपने पिता के निर्देश को नहीं मानेंगे? क्या हम, उनके सिपाही, उनके युद्ध को सफल नहीं बनायंगे? क्या हम संसार को महात्मा गांधी का परिपूरित सन्देश नहीं देंगे? यद्यपि उनका स्वर अब नहीं निकलेगा, तथापि संसार को—केवल संसार और अपने समकालीनों को ही क्यों, बल्कि संसार की युग-युग तक आनेवाली सन्तानों तक—उनका सन्देश पहुंचाने के लिए क्या हमारे पास लाखों-करोड़ों कण्ठ नहीं हैं? क्या उनका बलिदान व्यर्थ जायगा? क्या उनका रक्त शोक के व्यर्थ कार्य

के लिए ही बहाया जायगा ? क्या हम उस खून से संसार को बचाने के लिए उनके शांति-सैनिकों के चिह्न की तरह अपने माथे पर तिलक नहीं लगायगे ? इसी वक्त और इसी जगह पर, मैं सारे संसार के आगे, जो मेरी कम्पित वाणी सुन रहा है, अपनी तरफ से और आपकी तरफ से, जिस प्रकार मैंने ३० साल से भी पहले शपथ ली थी, अमर महात्मा की सेवा का व्रत ग्रहण करती हूं ।

मृत्यु क्या है ? मेरे पिता ने, अपनी मृत्यु के ठीक पहले, जब वे मरणोन्मुख थे और मौत की छाया उनपर गिर रही थी, कहा था, "न जन्म होता है, न मृत्यु होती है । केवल आत्मा सत्य की उच्चतर अवस्थाओं को खोजती रहती है ।" महात्मा गांधी, जो इस संसार में सत्य के लिए ही रहते थे, उस सत्य की उच्चतर अवस्था में परिवर्तित हो गए हैं, जिसे वे खोजते थे, यद्यपि यह कृत्य हत्यारे के हाथों हुआ । क्या हम उनका स्थान नही लेंगे ? क्या हमारी सम्मिलित शक्ति इतनी नहीं होगी कि हम संसार को दिए उनके महान् सन्देश को फैला सकें तथा उसका अनुकरण कर सकें ? यहांपर मैं उनके सबसे साधारण सैनिकों में से एक हूं । लेकिन मैं जानती हूं कि मेरे साथ जवाहरलाल नेहरू जैसे उनके प्रिय शिष्य, उनके विश्वासपात्र अनुगामी और मित्र वल्लभभाई पटेल, मसीह के हृदय में सन्त जॉन की भांति राजेंद्र बाबू, तथा वे सहयोगी भी हैं, जो घड़ी भर की सूचना पर उनके चरणों में अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए भारत के कोने-कोने से दौड़ आये हैं । क्या हम सब उनके सन्देश को पूरा नहीं करेंगे ? उनके अनेक उपवासों के समय, जिनमें मुझे उनकी सेवा करने का, उन्हें सांत्वना देने का, उन्हें हंसाने का—क्योंकि उन्हें अपने मित्रों की हास्योषधि की सबसे अधिक आवश्यकता थी—सौभाग्य प्राप्त हुआ । मैं इस बात पर आश्चर्य किया करती थी कि अगर कहीं सेवाग्राम में उनके प्राण निकलें, नोआखाली में उनकी देह छूटे, कही किसी दूर जगह पर उनकी जीवन-लीला समाप्त हो तो हम उन तक कैसे पहुंच सकेंगे ? इसलिए यह ठीक और उचित ही है कि वे राजाओं की नगरी में, हिन्दू साम्राज्यों की प्राचीन स्थली में, जिस स्थल पर मुगलों की भव्यता का निर्माण हुआ, उस स्थल में, जिसको विदेशी हाथों से छीनकर उन्होंने भारत की राजधानी बनाया, उसी स्थल में, वह स्वर्गवासी हुए । यह ठीक ही है कि उनका शरीरान्त दिल्ली में हुआ । यह भी ठीक है कि उनकी अन्तिम क्रिया मृत सम्र.टों के बीच, जो दिल्ली में दफनाए गए थे, हुई, क्योंकि वे राजाओं के राजाधिराज थे । और यह भी ठीक ही है कि वे, जो शान्ति के अवतार थे, एक महान् योद्धा के आदर और सम्मान के साथ श्मशान भूमि में ले जाए गए

क्योंकि उन सभी योद्धाओं से, जो युद्ध-भूमि में अपनी सेनाएं लेकर गए थे, यह छोटा-सा व्यक्ति कहीं अधिक बड़ा बहादुर और विजेता था। दिल्ली आज सात साम्राज्यों की ऐतिहासिक दिल्ली नहीं है। यह सबसे महान् क्रान्तिकारी था, जिसने अपने पराभूत देश का उद्धार किया और उसे उसकी स्वतंत्रता और उसकी ध्वजा दी, केन्द्र और विश्राम-भूमि दी। भगवान्! मेरे स्वामी, मेरे नेता, मेरे बापू की आत्मा शान्ति से विश्राम न करे, बल्कि उनकी अस्थियों में जबरदस्त जीवन आए और चन्दन की जली लकड़ियों की राख और उनकी अस्थियों के चूर्ण में वह जीवन और उत्प्रेरणा उत्पन्न हो कि उनकी मृत्यु के बाद सारा भारत स्वतन्त्रता की यथार्थता में पुनर्जीवित हो उठे।

मेरे बापू, सोओ मत! हमें मत सोने दो। हमें अपने व्रत से मत डिगने दो। हमें—अपने उत्तराधिकारियों को, अपनी सन्तानों को, अपने सेवकों को, अपने स्वप्नों के अभिरक्षकों को, भारत के भाग्य-विधाताओं को—अपना प्रण पूरा करने की शक्ति दो। तुम, जिनका जीवन इतना शक्तिशाली था, अपनी मृत्यु से भी हमें ऐसा ही शक्तिशाली बनाओ, जो उद्देश्य तुम्हें सबसे अधिक प्रिय था और उसके लिए महानतम् शहादत में तुमने नश्वरता को पीछे छोड़ दिया है।

: ४१ :

एक महान् मानवतावादी

सी० वी० रमन्

तनाव के दिनों में मानवी व्यवहार मौसम-विज्ञान के कई दृष्टांत उपस्थित करता है। सचेत प्रत्यावलोकक खाड़ी मे बनते अवनमन[1] को देखकर यह चेतावनी दे देता है कि तूफान उठ रहा है और किनारे की तरफ बढ़ रहा है। लेकिन स्थान और समय के बारे में प्रत्यावलोकक की चेतावनी चाहे कितनी ही सही क्यों न हो, उत्पात को रोकने या टालने और उससे होनेवाली हानि को कम करने के लिए विशेष कुछ नहीं किया जा सकता। पिछले कतिपय महीनों में घटनेवाली घटनाएं भी वास्तव में हमारे देश की छाती पर चलने वाले अंधड़ की तरह है, जो अपने पीछे इन्सानी जिंदगी और बरबाद खुशहाली के खंडहर छोड़ गये हैं। इस खेदजनक दौर की चरम

१. डिप्रेशन—वायुमंडल के दाव मे कमी।

सीमा हमारे बीच मे कुछ दिन पहले एक ऐसे व्यक्ति का चला जाना है, जिसने अपने महान् मानवी गुणों से और मानव-कल्याण के निमित्त अपनी अपूर्व निष्ठा से अपने समकालीनो की दृष्टि में अपने लिए एक अनुपम स्थान बना लिया था। मेरी समझ मे इतिहास के फैसले की पूर्व कल्पना करने और महात्मा गाधी के जीवन तथा शिक्षाओं का स्वय हमारे देश या एशिया या विश्व के भविष्य पर प्रभाव आंकने की कोशिश करने मे कोई संगति नही है। यह सब भविष्य की ओट मे है। लेकिन यदि हमें, जो उनके द्वारा स्वतंत्र कराये गये भारत के निवासी है, अपने भाग्य पर कोई भी विश्वास है, यदि हममे वर्त्तमान उथल-पुथलो पर विजय पाने की क्षमता है और यदि हममे अपने लिए एक महान् भविष्य का निर्माण करने की शक्ति है, तो निस्सदेह महात्मा गाधी के जीवन-कार्य और भारत के एक बार फिर स्वतंत्र देश के रूप मे सामने आने मे उनके भाग को हम कभी नही भुला सकते।

स्वयं मेरे सक्रिय जीवन के गत चालीस वर्ष एक ऐसे कार्यक्षेत्र मे लगे रहे है, जो स्वाधीनता-सग्राम से, जो भारत मे उस समय पूरे जोर पर था, खासा कटा हुआ था। मैंने उस सघर्ष मे कोई सक्रिय भाग नही लिया और न मैंने उसमे सलग्न नेताओ से संबध ही स्थापित करने की कोशिश की। लेकिन महात्माजी उन सब व्यक्तियो से, जिनसे मेरा कभी भी परिचय हुआ, स्पष्ट रूप से इतने भिन्न थे कि जब कभी मैंने इनके दर्शन किए, उनसे मुलाकात की, या उनकी वाणी सुनी, वह अवसर मेरे मस्तिष्क पर अच्छी तरह से अंकित हो गया और ऐसा अनेक बार हुआ। पहला अवसर था १९१४ का नाटकीय दृश्य, जब हिन्दू विश्वविद्यालय के शिला-न्यास-समारोह के अवसर पर उन्होंने बनारस मे एकत्र विराट सभा मे भाषण दिया था। उस विराट समुदाय ने बड़े ध्यान से उनकी उस भर्त्सना को सुना जो उन्होंने रजवाड़ो की खुली फिजूलखर्ची की जिन्दगी और अपने इलाकों मे रहने वाली जनता की अवहेलना के लिए की। इस प्रकार झाड़े जानेवाले रजवाड़ो में से कई वही मौजूद भी थे। उनमे से सभी इस भर्त्सना के लायक थे या नही, यह विवाद का विषय हो सकता है; लेकिन उनमे से प्रत्येक ने स्वाभाविक रूप से उनके कथन का बुरा माना और वे सभा-भवन से उठकर चले गए। उनके पीछे-पीछे डाक्टर एनी बीसेण्ट भी, जिन्होंने उनकी हत भावनाओ को शात करने की व्यर्थ चेष्टा की, चली गई। जैसे-जैसे समय गुजरता गया और जीवन और उसकी समस्याओं पर गाधीजी की शिक्षाएं अधिक प्रचलित होती गई, देशवासियों पर उनका प्रभाव तेजी के साथ बढ़ने लगा, और शीघ्र ही यह हर किसीको साफ हो गया कि स्वतंत्रता के इस महान्

संघर्ष में वे भारत के सबसे बडे नेता थे। यह भी ज्यादा-से-ज्यादा साफ होता गया कि उनके प्रभाव का रहस्य यह था कि उनका दृष्टिकोण मूलत: मानवतावादी और व्यावहारिक था। दूसरे शब्दो मे वे मानव-जीवन और मनुष्य के मुख के अभिलाषी थे और विज्ञान या अर्थशास्त्र या राजनीति जैसे मानव-स्पन्दनरहित माने जाने वाले विषयो मे उनकी कोई दिलचस्पी नही थी। उनके इस दृष्टिकोण ने स्वाभाविकतया उन्हे जन-साधारण का प्रिय बना दिया; चाहे यह बात उन लोगो को, जिनके दिमागो में ये विषय सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक ऊंचा स्थान रखते है, बहुत अच्छी न लगी हो। इसमें कोई संदेह नही कि गाधीजी के उत्सर्ग पर ससार के हर कोने मे जो स्वेच्छित श्रद्धाजलिया उन्हे अर्पित की गई है, वे वास्तव मे महात्मा गाधी के अपने मूलभूत मानवतावाद की स्वीकारोक्ति है, जिसने देश, विचार और जाति की सीमाओ को लाघ दिया था। भूतकाल मे एशिया ने ऐसे अन्य महान् मानवतावादियो को जन्म दिया है, जिनका जीवन मानवता के जीवन और मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड गया है। मै इस बात को दुहराता हूं कि कोई व्यक्ति इतिहास के फैसले की पूर्व-कल्पना नही कर सकता। फिर भी यह सत्य है कि इतिहास कभी-कभी अपनेको दुहराता है और इस संबंध मे भी यह बात सत्य हो सकती है।

: ४२ :

गांधीजी की देन

गणेश वासुदेव मावलंकर

गत शुक्रवार को हत्यारे के हाथो गाधीजी पर हुआ वार अप्रत्याशित था और हम सब उससे स्तब्ध रह गए। जब कुछ मिनटो के बाद बिडला-भवन मे मैने उनके शात और गतिहीन नश्वर अवशेष देखे तो मै अपनी आखो पर विश्वास न कर सका। उस समय भी यह मेरी आतरिक इच्छा थी कि वे अपनी अंतिम निद्रा से जग जायं, और सदा हमारे साथ रहे, सदा की भांति प्यार करे, प्रेरणा देते रहें, पथ-प्रदर्शन करते रहे और मुस्कराते रहे। लेकिन अपने प्रिय और निकट व्यक्तियो के बारे मे इस प्रकार की इच्छाएं कभी पूरी नही होती। हमे काया की नश्वरता के दर्शन का आसरा लेना और दैवी इच्छा के आगे अपनेको छोड देना पड़ता है।

लेकिन क्या बापू सचमुच मर गए ? ऐसा कौन कहता है ? इस समय, बात करते हुए भी मुझे उनके सजीव स्पर्श का अनुभव हो रहा है। वह मरे नहीं; वह कभी मर नहीं सकते। वे हमारे हृदय में जीवित हैं और हमें हमारी आकांक्षाओं को प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

भारत में वे जिस काल में रहे, उन लगभग चौतीस वर्षों में हमारे देश में वे कोरी क्रांति ही क्यों, कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन भी लाए। उन्होंने हमें आदमी बनाया और जीवन के हर क्षेत्र में उन्होंने हमें सचेत किया। हमारे जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है, जिसमें हम उनके हाथ या प्रभाव का अनुभव न कर सकें। उन्होंने हमारी राजनीति, हमारे अर्थशास्त्र और हमारी शिक्षा को नया दृष्टिकोण प्रदान किया और हमारे सार्वजनिक जीवन में प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिक रूप देने की चेष्टा की। उन्होंने, जो सत्य और अहिंसा के मूर्त रूप थे, अपने उद्देश्य में अडिग विश्वास के साथ अपने सर्वस्व का बलिदान कर दिया। वे, जो इस युग के सबसे बड़े, सबसे महान् व्यक्ति थे अनादि काल तक हमारे मानवी दिलों में जीवित रहेंगे। मेरे पास उनके प्रति अपना आदर, प्रेम, अनुभव और शोक प्रकट करने के लिए शब्द नहीं हैं।

गांधीजी जाति, विचार, वर्ण, धर्म या रंग के भेद-भाव के बिना सम्पूर्ण मानवता के वास्तविक "बापू"—पिता थे। हमें उनके योग्य बनकर उनका आदर करना चाहिए। उनके लिए हम जो सर्वोत्तम स्मारक बना सकते है, वह है अपने जीवन और आचरण को उन आदर्शों के अनुसार ढालना, जिनके लिए वे जिये और मरे।

मेरी प्रार्थना है कि उनकी आत्मा हमेशा हमारे साथ रहे और हमें हमारे लक्ष्य तक ले जाय।

: ४३ :

सर्वश्रेष्ठ मानव

नरेन्द्रदेव

संसार के सर्वश्रेष्ठ मानव तथा भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति उनके निधन पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर इस व्यवस्थापिका

सभा को आज ही प्राप्त हुआ है। अपने देश की प्रथा के अनुसार तथा लोकाचार के अनुसार हमने तेरह दिन तक शोक मनाया। यह शोक महात्माजी के लिए नहीं था, क्योंकि जो सर्वभूतहित में रत है और जो मानव-जाति की एकता का अनुभव अपने जीवन में करता रहा हो, उसको शोक कहां, मोह कहां ? यदि हम रोते हैं, बिलखते हैं तो अपने स्वार्थ के लिए बिलखते है, क्योंकि आज हम इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि हमने अपनी अक्षय निधि खो दी है, अपनी चल-सम्पत्ति को गंवा दिया है।

महात्माजी इस देश के सर्वश्रेष्ठ मानव थे, इसीलिए हम उनको राष्ट्रपिता कहते हैं। हमारे देश में समय-समय पर महापुरुषों ने जन्म लिया है और इस जाति को पुनरुज्जीवित करने के लिए नूतन संदेश का संचार किया है। इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि अन्य देशों में महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, लेकिन मेरी अल्प बुद्धि में महात्मा गांधी जैसा अद्वितीय बेजोड़ महापुरुष केवल भारतवर्ष में ही जन्म ले सकता था और वह भी बीसवीं शताब्दी में, अन्यत्र कहीं नहीं, क्योंकि महात्मा गांधी ने भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति को, उसकी पुरातन शिक्षा को परिष्कृत कर युग-धर्म के अनुरूप उसको नवीन रूप प्रदानकर, उसमें वर्तमान युग के नवीन सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का पुट देकर एक अद्भुत एवं अनन्यतम सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने इस नवयुग की जो अभिलाषाएं है, जो आकांक्षाएं है, जो उसके महान् उद्देश्य हैं, उनका सच्चा प्रतिनिधित्व किया है। इसलिए वे भारतवर्ष के ही महापुरुष नहीं थे, अपितु समस्त संसार के महापुरुष थे। यदि कोई यह कहे कि उनकी राष्ट्रीयता संकुचित थी, तो वह गलत रहेगा। यद्यपि महात्मा गांधी स्वदेशी के व्रती थे, भारतीय संस्कृति के पुजारी थे तथा भारतीय राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता उदारता से पूर्ण थी, ओतप्रोत थी। वह संकुचित नहीं थी। संकुचित राष्ट्रीयता वर्तमान समाज का एक बड़ा अभिशाप है, किन्तु महात्माजी का हृदय विशाल था। जिस प्रकार भूकम्प-मापक यंत्र पृथ्वी के मृदु-से-मृदु कंप को भी अपने में अंकित कर लेता है, उसी प्रकार मानव-जाति की पीड़ा की क्षीण-से-क्षीण रेखा भी उनके हृदय-पटल पर अंकित हो जाती थी। हमारा देश समय-समय पर महापुरुषों को जन्म देता रहा है और मैं समझता हूं कि इस व्यवसाय में भारत सदा से कुशल रहा है, अग्रणी रहा है। पतितावस्था में भी, गुलामी की हालत में भी, भारतवर्ष ही अकेला ऐसा देश रहा है, जो जगद्वन्द्य महापुरुषों को जन्म दे सका है। हमारे देश में भगवान् बुद्ध हुए तथा अन्य धर्मों के प्रवर्तक हुए, किन्तु सामान्य

जनता के जीवन के स्तर को ऊंचा करने मे कोई भी समर्थ नहीं हो सका। यह यथार्थ है कि पीडित मानवता के उद्धार के लिए नूतन धार्मिक संदेश उन्होने दिये थे, समाज के कठोर भार को वहन करने की समर्थता प्रदान करने के लिए उन्होने नए-नए आश्वासन दिये थे, विक्षुब्ध हृदयो को शान्त करने के लिए पारलौकिक सुखो की आशाएं दिलाई थी, लेकिन सामान्य जीवन के जो कठोर सामाजिक बंधन है, जो जनता के ऊपर कठोर शासन चल रहा है, जो सामाजिक और आर्थिक विषमताएं है, दीनो और अकिचनजनो को भाति-भाति के जो तिरस्कार और अवहेलनाएं सहनी पडती है, इन सब समस्याओ का हल करने वाला यदि कोई व्यक्ति हुआ तो वह महात्मा गाधी है। उन्होने ही सामान्य जीवन में लोगो के जीवन के स्तर को ऊंचा किया। उन्होने जनता में मानवोचित स्वाभिमान उत्पन्न किया। उन्होने ही भारतीय जनता को इस बात के लिए सन्मति प्रदान की कि वह साम्राज्यशाही के भी विरुद्ध विद्रोह करे और यह भी पाशविक शक्तियों का प्रयोग करके नही, बल्कि आध्यात्मिक बल का प्रयोग करके हुआ। उनकी अहिसा बेजोड़ थी। भगवान् बुद्ध ने कहा था, "अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।" अर्थात् अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए। उनकी अहिसा का सिद्धान्त केवल व्यक्तिगत आचरण का उपदेशमात्र न था, किन्तु सामाजिक समस्याओ को हल करने के लिए अहिंसा को एक उपकरण बनाना और राजनैतिक क्षेत्र में अपने महान् ध्येय की प्राप्ति के लिए उसका सफल प्रयोग करना महात्मा गाधी का ही काम था और चूकि वे संसार में अहिसा को प्रतिष्ठित करना चाहते थे, इसलिए उनकी अहिसा की व्याख्या भी अद्भुत, बेजोड़ और निराली थी। उनकी अहिसा की शिक्षा केवल व्यक्तिगत आचरण की शिक्षा नहीं है। उनकी अहिसा की व्याख्या वह महान् अस्त्र है जो समाज की आज की विषमताओ का, जो वैमनस्य और विद्वेष के कारण है, उन्मूलन करना चाहती है। अहिसा के ऐसे व्यापक प्रयोग से ही अहिसा प्रतिष्ठित हो सकती है।

सामाजिक और आर्थिक विषमता को दूरकर, मनुष्य को मानवता से विभूषित कर, आत्मोन्नति के लिए सबको ऊंचा उठाकर जाति-पांति और सम्प्रदायों को तोडकर ही हम अहिसा की सच्चे अर्थो में प्रतिष्ठा कर सकते है। यदि किसीने यह शिक्षा दी तो गाधीजी ने। इसलिए यदि हम उनके सच्चे अनुयायी होना चाहते है तो समाज से इस विषमता को, इस ऊंच-नीच के भेद-भाव को, इस अस्पृश्यता को, समाज के नीचे-से-नीचे स्तर के लोगों की दरिद्रता को और आर्थिक विषमता को, समाज से सदा के लिए उन्मूलित करें। तभी हम सच्चे अहिसक

कहला सकते है। यह महात्मा गाधी की ही विशेषता थी ।

हमारे देश की यह प्रथा रही है कि महापुरुष के निधन के बाद हमने उसको देवता की पदवी से विभूषित किया, समाधि और मन्दिर बनाए। उसकी मूर्ति को मन्दिरों मे प्रतिष्ठित किया, या मजार बनाकर उसकी समाधि या मजार पर प्रेम और श्रद्धा के फूल चढ़ाकर हम सन्तुष्ट हो गए। इसी प्रकार से भारतवासियों ने अनेक महापुरुषों की केवल उपासना और आराधना करके उनके मूल उपदेशों को भुला दिया। मै चाहता हूं कि हम आज महात्मा गाधी को देवत्व की उपाधि न दें, क्योकि देवत्व से भी ऊंचा स्थान मानवता का है। मानव की आराधना और उपासना समाधि-गृह और मजार बनाकर, उनपर फूल चढ़ा कर, नही होती। दीपक, नैवेद्य से उसकी पूजा नही होती। मानव की आराधना और उपासना का प्रकार भिन्न है। अपने हृदयो को निर्मल कर उसके बताए हुए मार्ग पर चलकर ही उसकी सच्ची उपासना होती है। यदि हम चाहते है कि हम महात्मा गाधी के अनुयायी कहलाएं तो हमारा यह पुनीत कर्तव्य है कि जनता मे अपने प्रेम और श्रद्धा के भावों का प्रदर्शन करने के साथ-साथ हम उनका जो अमर सन्देश है, उसपर अमल करे। उनका सन्देश भारतवर्ष के लिए ही नहीं, वरन् वर्तमान संसार के लिए है, क्योंकि आज ससार का हृदय व्यथित है, दु खी है। . . . ऐसे अवसर पर संसार को एक आदेश और उपदेश की आवश्यकता है। महात्माजी का बताया हुआ उपदेश जीवन का उपदेश है, मृत्यु का सन्देश नही है। और जो पश्चिम के राष्ट्र आज संकुचित राष्ट्रीयता के नाम पर मानव-जाति का बलिदान करना चाहते है, जो सभ्यता और स्वाधीनता का विनाश करना चाहते है वे मृत्यु के पथ पर अग्रसर हो रहे है, वे मृत्यु के अग्रदूत है। यदि वास्तव मे हम समझते है कि हम महात्माजी के अनुयायी है तो हमारी सबकी सच्ची श्रद्धाजलि यही हो सकती है कि हम इस अवसर पर शपथ लें, प्रतिज्ञा करें कि हम आजीवन उनके बताए हुए मार्ग पर चलेगे, जो जनतन्त्र का मार्ग, समाज में समता लाने का मार्ग, विविध धर्मो और सम्प्रदायो में सामंजस्य स्थापित करने का मार्ग है, जो छोटे-से-छोटे मानव को भी समान अधिकार देता है, जो किसी मानव का पक्ष नही करता, जो सबको समान रूप से उठाना चाहता है। यदि महात्माजी के बताए हुए मार्ग का हम अनुसरण करते तो एशिया का नेतृत्व हमारे हाथों मे होता और हमारा देश भी दो भूखण्डों में विभाजित न हुआ होता। हम एशिया का नेतृत्व करेंगे, किन्तु इस गृह-कलह के कारण हमारा आदर विदेशों में बहुत घट गया है। इसलिए यदि हम उस नेतृत्व को

ग्रहण करना चाहते हैं तो हमको अपने देश में उस सन्देश को कार्यान्वित करना होगा। भारतवर्ष में बसनेवाली विविध जातियों में एकता की स्थापना करके हम को संसार को दिखा देना चाहिए कि हम सच्चे मार्ग पर चल रहे हैं। तभी सारा संसार हमारा अनुसरण करेगा।

महात्माजी के लिए जो सोचते है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति नहीं थे, उनका काम भारतवर्ष तक ही सीमित था, यह उनकी भूल है। भारतवर्ष तो उनकी प्रयोगशाला मात्र था। वह समझते थे कि यदि सत्य, अहिंसा से वह देश में सफलता प्राप्त कर सकेंगे, तो उनका संदेश सारे संसार में फैलेगा।

मैं महात्माजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि मुझमें शक्ति पैदा हो कि मैं उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण किसी-न-किसी अंश में कर सकूं।

: ४४ :

अकल्पनीय घटना

कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी

गांधीजी के बारे में कुछ कहने की मेरी इच्छा नहीं होती। उन्हें उनके अंतिम क्षणों में देखने के बाद मेरी पहली मूर्च्छा के समय से मेरे मस्तिष्क ने सदमे के विरुद्ध एक रक्षात्मक कवच-सा तैयार कर लिया है। उनका देहावसान अभी भी अस्वाभाविक-सा लगता है। मैं जानता हूं कि उनका देहांत हो गया है, फिर भी मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि वे अब नहीं रहे। मुझमें कुछ ऐसी सतत अचेतन चेतना व्याप्त है कि यदि मैं बिड़ला-भवन में अपने कमरे की सीढ़ी पार कर बापू के कमरे में चला जाऊं तो मुझे वही प्रेमभरी मुस्कान मिलेगी, जो वृहस्पतिवार की शाम को, जब मै उनके कमरे में गया, तब उन्होंने प्रदान की थी। कई बार उन्होंने मुझे इस बात का गौरव भी प्रदान किया था कि मै सत्य और अहिंसा पर अपने विचार उनके सामने रख सकूं, क्योंकि मैं उनके जीवन को योगसूत्र और भगवद्गीता की साक्षात् व्याख्या मानता था। मैंने वृहस्पतिवार को मिले अवसर का उपयोग १९४५ में अधूरी छूटी एक वार्ता को फिर से प्रारम्भ करके किया।

"बापू" मैंने कहा, "मै अपनी बात आपको एक विनम्र बधाई देने के साथ

शुरू करूंगा।"

"बधाई किसलिए?" उन्होंने पूछा।

इसपर मैंने योगसूत्र और टाल्स्टाय विषयक अहिंसासंबंधी हमारी वार्ता की उन्हें याद दिलाई। मैंने १९४५ में उनसे जो कहा था, उसका उन्हें स्मरण कराया कि १९४२ का अहिंसात्मक आंदोलन अहिंसा की कसौटी पर खरा नहीं उतरा, क्योंकि इससे शत्रु में क्रोध उत्पन्न हुआ, प्रेम नही, और पातंजलि ने तो कहा था कि यदि कोई व्यक्ति अहिंसा की सिद्धि कर ले तो अन्य व्यक्ति उससे प्रेम करने लगते हैं।

"इस बार तो कसौटी खरी उतरी।" मैंने बात जारी रखते हुए कहा। "इस बार जब आपने अनशन किया तो मुसलमान, जो इतने बरसों से आपसे घृणा करते थे, आपसे प्रेम करने लगे। हिन्दुओं ने, जो आपसे प्रेम तो करते ही थे, आत्म-संयम सीखा।" फिर मैंने उनके आगे हैदराबाद के मामले का चित्र खींचा। इसी समय राजकुमारी अमृतकौर भी हमारी बातचीत में शामिल हो गईं।

अगले दिन मिलने की आशा के साथ मैं उनके पास से ७ बजे उठ आया। लेकिन अगले दिन मैं राज्य-मंत्रालय में था, जब शाम को ५-२५ पर बिड़लाजी का एक ड्राइवर यह संदेश लेकर आया कि गाधीजी पर गोली चलाई गई है। मैं इसपर विश्वास न कर सका—शांति-पुरुष को कौन मार सकता है?

मैं टेलीफोन करने के लिए दौड़ा। सूचना की पुष्टि हो गई। मैं अवाक् हो कार में बैठ बिड़ला-भवन भागा। मेरा दिमाग़ चकरा रहा था।

मैं सीधा अंदर उनके कमरे में जा घुसा। वे अपने रोजाना के बिस्तर पर लेटे हुए थे। मनु, आभा तथा अन्य लड़कियां उनके सिर के पास थीं। शोकाकुल, पर मजबूत सरदार, पंडितजी पर, जो रोकते थे, हाथ रक्खे बैठे थे। मैं कर्नल भार्गव की ओर जो बगल में ही खड़े हुए थे, आकृष्ट हुआ, मूक उत्तर में उन्होंने अपना सिर हिलाया। निर्दय, भयावह मृत्यु ने गांधीजी को अपने कड़े शिकंजे में कस लिया था। मैं फूट पड़ा। गांधीजी जा चुके थे। मैं अनाथ था।

एक और डाक्टर आए और चादर हटाकर उन्होंने अपना स्टेथसकोप लगाया। मैंने रुधिर बहते तीन घाव देखे। मेरी दुःखी अंतरात्मा से सिसकियाँ फूट पड़ीं।

मनु ने भगवद्गीता का पाठ आरंभ कर दिया। हर शब्द के बाद उसकी आवाज टूट जाती थी। मणि बहन, प्यारेलाल और मैं भी पाठ में शामिल हो गए। गीता का पाठ करते समय मेरे सामने एक झलकी आई। श्रीकृष्ण एक पथ-विमुख

तीर से मारे गए थे। सुकरात की मौत ज़हर से हुई थी। मसीह को सूली पर चढ़ाया गया था। गांधीजी गोलियों से मरे। चारों शिक्षकों का अंत अस्वाभाविक रूप से हुआ। पर शायद यह एक महान् जीवन का समुचित अंत ही था। फिर, इनमें से भी सुकरात और ईसा मसीह की मौत एक विरोधी समाज के हाथों अपराधियों के रूप में हुई थी। श्रीकृष्ण एक अज्ञात शिकारी द्वारा मारे गए। गांधीजी का अंत शांति के और इसलिए धरती पर मनुष्य की नियति के एक शत्रु के हाथों हुआ।

उन्होंने भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया। उन्होंने भारत को एक राष्ट्रीय भाषा दी। उन्होंने भारत के लिए एक नई परंपरा कायम की। उन्होंने एक शासनिक निगम प्रस्थापित किया। उन्होंने राष्ट्र के स्वाधीनता-संग्राम का नेतृत्व किया। उन्होंने उसके स्वतंत्रता-जन्म की अध्यक्षता की। जब वे मरे तो राष्ट्र ने उनकी एक स्वर से वंदना की। मरते समय वे सम्राटों के समान थे। उनकी वाणी से भारत की भारी भरकम सरकार हिल जाती थी। और यह सब उन्होंने अपने शत्रु का बाल भी बांका किये बिना अक्षरशः एक सच्चे लोकतंत्रवादी के रूप में प्राप्त किया।

लेकिन उनकी ये राजनैतिक सिद्धियां, जो उन्हें संसार के समस्त राजनैतिक उद्धारकों के आगे खड़ा कर देती हैं, उनकी नैतिक विजयों के आगे कुछ भी नहीं। उन्होंने दासों को मनुष्य बनाया। उन्होंने भारतीय नारी-समाज को स्वतंत्र किया। उन्होंने समाज से अस्पृश्यता का विनाश किया। उन्होंने उन फौलादी दीवारों को तोड़ दिया, जिनमें हमारा समाज बंधा हुआ था। उन्होंने 'पारलौकिकता' को, जिसका भूत भारत पर सवार था, समाप्त कर दिया। उन्होंने हीन भावना के शाप को, जो हमारी सामूहिक चैतन्यता पर गत ९०० वर्ष के विदेशी आधिपत्य से हावी हो गया था, समाप्त किया। उन्होंने भारतीयों का अपनी सांस्कृति में अभिमान और अपनी शक्ति में विश्वास पुनः जाग्रत किया—जिसे और जिसके अतिरिक्त अपनी आतमा को भी वे खो चुके थे। उन्होंने भारत की अविनाशी संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित किया और उसे विश्व-विजय के पथ पर फिर से आरूढ़ किया। वे नव-जीवन के दूत थे।

लेकिन यही सबकुछ नहीं था। उन्होंने स्वयं अपने भीतर आर्य-संस्कृति के तत्त्वों की सिद्धि करने और उन्हें नव-प्राण देने की चेष्टा की। मोह, भय और क्रोध पर श्रेष्ठता प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को सुगठित करने के लिए उनका प्रयास जीवन भर चलता रहा। इस तथ्य के वे साक्षात् प्रमाण थे कि नैतिक व्यवस्था

एक सजीव शक्ति है। उन्होंने स्वयं अपने में अहिंसा की सिद्धि की और शत्रु उनके पास अपना प्यार लिये आए। उन्होंने सत्य की सिद्धि की और उनके कार्यों का परिणाम चिरस्थायी हुआ। उन्होंने यौन-संबंधों का त्याग कर दिया और वे अक्षुण्ण स्फूर्तिवान् रहे। उन्होंने धन का मोह छोड़ दिया और उनके महान् कार्यों के लिए धन बिन-मांगे ही आता गया। उन्होंने सम्पत्ति से नाता तोड़ दिया था और वे जीवन का अर्थ जान गए थे। वे ईश्वर में लीन थे और ईश्वर उनमें लीन था।

वे ईश्वर के एक उपकरण के रूप में ही आए, जिये और मरे। उनका जीवन और उसका प्रत्येक क्षण उसकी प्रार्थना में गया। उनका देहांत तो अपना कर्त्तव्य पूरा करने के बाद उसकी आज्ञा के पालन में तत्क्षण प्रस्थान मात्र था। और उनका अंत भी अद्‌भुत था। क्योंकि एक पूरा राष्ट्र दुःखी था और सारा संसार शोकग्रस्त और सारा जमाना उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा था।

राजाधिराज, दूत, योगी, और स्वयं मेरे लिए मेरे पिता और पथ-पदर्शक! हजारों और लोगों के समान उनके बिना मेरा जीवम सूना है।

: ४५ :

सबसे बड़ा काम

जे० बी० कृपालानी

आज हमारे दिल भरे हुए हैं और अपने इतिहास की सबसे बड़ी ट्रेजेडी के अवसर पर हमारे लिए अधिक कहना कठिन है। शारीरिक रूप से महात्माजी हमारे बीच नहीं रहे, लेकिन अगर हम लोग उनका अनुसरण ही करते रहे और उस रोशनी में, जिससे उन्होंने हमारे पथ को प्रकाशित कर दिया है, काम करते रहे तो वे आत्मिक रूप में हमारे साथ रहेंगे। उनकी मृत्यु से यही बात सिद्ध होती है कि संसार अभी उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धांत के लिए और जिस प्रकार उसे उन्होंने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन पर लागू किया है, उसके लिए तैयार नहीं है। सत्य और अहिंसा का रास्ता अभी भी, जैसाकि वह इतिहास में सदा रहा है, शहादत का रास्ता है।

नैतिक कानून में उनके विश्वास की सबसे बड़ी परीक्षा हाल की घटनाओं द्वारा हुई थी, फिर भी वे परीक्षा में खरे उतरे। जीवन की सबसे काली घड़ी में भी उनका विश्वास नहीं डिगा। जो लोग उनके समझे जाते हैं, उनको चाहे कुछ भी क्यों

न हो जाय, उसका बदला नहीं लिया जाना चाहिए। कोई प्रत्याक्रमण नहीं होना चाहिए। मानसिक हिंसा तक नहीं होनी चाहिए। हिन्दू और सिख घरों को चाहे कुछ हो जाय, भय या हिंसा के भय से खाली किये किसी मुस्लिम मकान पर कब्जा नहीं किया जाना चाहिए। खाली किये गए मुस्लिम गांव तक बिना कब्जा किये खाली रहने चाहिए। पाकिस्तान से अपहृत मुस्लिम महिलाओं को सुरक्षा और आदर के साथ वापस लौटा देना चाहिए। चाहे पाकिस्तान हिन्दू और सिख महिलाओं के साथ ऐसा न करे। गांधीजी का सदा से यह मत रहा कि नैतिक कानून की बंदिश यही है कि व्यक्ति अपने और अपनी जाति के अपराधों को बड़ा माने और दूसरों और दूसरी जातियों के अपराधों को छोटा। इसी प्रकार नैतिक कानून को पूर्णतः अमल में लाया जा सकता है, और इस प्रकार अमल में लाने का परिणाम सदा अच्छा ही होगा। नैतिक कानून के अनुसार कार्य करनेवाले व्यक्ति और जाति कभी दुःख से नहीं रह सकते। धर्म की विजय अवश्यम्भावी है—'यतो धर्मस्ततो जयः'।

उन्होंने संसार को दिखा दिया कि अपनी जाति के प्रति प्रेम मानवता के प्रति प्रेम से कभी असंगत नहीं हो सकता। उन्होंने कभी किसी हिन्दू या मुसलमान या किसी अन्य जाति के सदस्य या भारतीय व अभारतीय में भेद नहीं किया। वे केवल मानवता को मानते थे, एक ही कानून को मानते थे और वह कानून नैतिक कानून था, जिसके साथ विश्व बँधा तथा सम्बद्ध है।

आज हमारे सामने, जो उन्हें अपना शिक्षक मानते थे, और उनसे जो थोड़ी-बहुत अच्छाइयां हम लोगों में हैं, उन्हें ग्रहण करते थे, सबसे बड़ा काम अपनी कतारें बाँधने, सुसंगठित होने और उनकी भावना के अनुसार काम करने और उनके सपने के स्वराज्य को लाने का है, जिसकी मोटी रूप-रेखा बनाने का ही उन्हें समय मिल पाया था। उनके आशीर्वाद हमारे साथ रहें और भगवान् हमें वह शक्ति और ईमानदारी प्रदान करे कि हम उनके मिशन को, जिसका संबंध किसी खास विचार, संप्रदाय या देश से न होकर समस्त मानवता से था, आगे ले जा सकें।

*

: ४६ :

हम अनुयायियों का कर्त्तव्य

राजकुमारी अमृतकौर

पलक झपकते-झपकते ही हमारे सबसे बड़े तथा सबसे प्रिय नेता, हमारे मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक, हमसे अलग कर दिये गए। नेता से अधिक वे हम सबके पिता-से थे। हम उन्हें बापू यों ही नहीं कहते थे। आज सचमुच हम अनाथ हैं।

हमारे इतिहास के इस नाजुक दौर के समय उनकी मृत्यु का मूल्यांकन करना असंभव है। मुझे विश्वास है कि दिन-प्रति-दिन हम उनके मार्ग-दर्शन के अभाव का अनुभव करेंगे। उनके दोष-रहित नेतृत्व में हमने राजनैतिक स्वतंत्रता का अपना लक्ष्य प्राप्त किया। १५ अगस्त के लगभग एकदम आरम्भ होनेवाले सम्प्रदायिक दंगों से उन्हें मानसिक आघात लगा। मार-काट में लिप्त भारत उनके लिए असह्य था। उन्होंने हमारे नैतिक पतन को समझा और एक स्नेही पिता की भांति फिर अथक रूप से सही मार्ग दिखाया। अपने असीम प्रेम से वे अनेक सीनों में क्रोध की धधकती आग को शांत करने की चेष्टा कर रहे थे। वे ही हमारे और विनाश के बीच खड़ी हस्ती थे, क्योंकि अराजकता और अव्यवस्था, घृणा और हिंसा हमें कहीं भी ले जा सकते हैं।

एक पागल आदमी के क्रोध ने उनकी निर्बल काया हमसे दूर कर दी है, लेकिन उनकी आत्मा को कौन मार सकता है? इस लिहाज से तो वे हमें छोड़ गए कि उनके प्रिय स्वरूप का दर्शन हम फिर कभी न कर सकेंगे, उनकी मीठी वाणी फिर कभी न सुन पायंगे, उनके हाथ के स्नेह-स्पर्श का फिर कभी अनुभव न कर सकेंगे, उनसे प्राप्त होनेवाली सांत्वना फिर कभी नहीं पा सकेंगे; लेकिन वे कभी नहीं जा सकते, और हम अपने पास उनकी उपस्थिति का आभास निरंतर पाते रहेंगे और मेरी आशा है कि अब हम उनके प्रति उनके हमारे साथ होने के समय से अधिक सच्चे होंगे।

उन्होंने शहादत का ताज पहन लिया है। उनकी आत्मा विश्राम कर रही है। लेकिन हमारे लिए उन्हें सर्वोच्च बलिदान करना पड़ा। हमें अपना अपराध नहीं भूल जाना चाहिए। प्रत्येक सच्चे भारतीय को अपना मस्तक घोर लज्जा से इसलिए नत कर लेना चाहिए कि हममें से ही एक इतना गिर गया था कि उसने उनके अमूल्य जीवन का अन्त कर दिया। भगवान् उसे क्षमा करें और हम हत्यारे को भुला सकें,

क्योंकि बापू ने अवश्य ही उसे क्षमा कर दिया होगा और उस समय भी उसे प्यार किया होगा, जब वह उनपर गोली चला रहा था।

कल से हम सब शोक की मार खाये हुए निराशा में ग्रस्त हैं, फिर भी हममें से प्रत्येक को यह संकल्प करना चाहिए कि वह इनमें से किसीके आगे नहीं झुकेगा। हममें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि हम सत्य और प्रेम के पथ का, जिसपर वे हमें अवश्य चलाते, अनुगमन कर सकें और इस प्रकार समय रहते अपने देश के नाम को कलंकित करने वाले इस दाग़ को मिटा सकें। भगवान हम सबपर दया करें और हमें बापू के प्रति सच्चे होने और इस प्रकार उनके स्वप्नों का भारत बनाने की शक्ति दें।

: ४७ :

इतिहास के अमर व्यक्ति

डाक्टर सय्यद हुसेन

महात्मा गांधी की मृत्यु से शोक और प्रशंसा की जमाने भर में जो लहर उठी है, इतिहास में उसकी और कोई मिसाल नहीं मिलती। . . . प्रेसीडेंट रूजवेल्ट की असामयिक और अचानक मौत के समय मैं खुद अमरीका में मौजूद था। उस महान् राजनीतिज्ञ और उदारता के दूत के लिए व्यापक और वास्तविक शोक मनाया गया था, लेकिन उसकी गांधीजी की मृत्यु पर विश्व-व्यापी शोक-प्रदर्शन से कोई तुलना नहीं की जा सकती। इनके जीवन, कार्य और व्यक्तित्व की जन-चेतना पर अमिट छाप पड़ी है और इनकी याद और प्रेरणा इनकी स्थायी विरासत के रूप में मौजूद रहेगी।

खुद गांधी-साहित्य में इस समय लाखों प्रकाशित पुस्तकें हैं। अब से इतिहासकार और जीवन-चरित-लेखक उनके अद्भुत, श्रेष्ठ और बहुमुखी जीवन की कथा-वस्तु लेना शुरू कर देंगे। इन सबके अतिरिक्त धार्मिक तथा बौद्धिक मान्यताओं का संग्राहक उनके जीवन के अध्ययन से बहुमूल्य और अपरिमित सामग्री एकत्र कर सकता है। सीधा-सादा तथ्य यह है कि महात्मा गांधी मानव-इतिहास के सबसे बड़े व्यक्तियों में से एक हो गए हैं।

यह न तो उनके महान् व्यक्तित्व का अंकन करने का अवसर है, और न उसका

कोई प्रयास ही है। हम उनकी स्मृति में अपनी व्यक्तिगत श्रद्धांजलि ही अर्पित कर सकते हैं। खुद मेरा उनसे १९१४ से संबंध है, जब मैं उनसे उनके दक्षिण-अफ्रीका से भारत लौटते समय लंदन में मिला था। वे जनवरी १९१५ में भारत लौट गए और बम्बई प्रेसीडेंसी में बस गए। १९१६ में मैं भी 'बाम्बे क्रॉनिकल' के कार्यकर्ताओं में सम्मिलित होने के लिए भारत लौट आया और इस प्रकार आने वाले तीन वर्षों में मुझे समय-समय पर उनसे मिलने और उन्हें जानने का अवसर मिला। लेकिन खिलाफत और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अवसर पर मैं वास्तव में गांधीजी के निकट आया और हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान् आन्दोलन के सबसे पहले समर्थकों में से एक बन गया, जिसके कि वे सबसे बड़े प्रचारक और नेता थे। यद्यपि खिलाफत का प्रश्न मुसलमानों के लिए बड़े धार्मिक महत्त्व का था, तथापि वह केवल उन्हींसे संबंधित नहीं था और महात्मा गांधी की व्याख्या के अनुसार ही वह सर्वोच्च राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न बन गया था। गांधीजी की मान्यता थी कि मुसलमानों के अंग्रेजों के प्रति दावे जायज थे और इसलिए अपने मुसलमान देशवासियों का साथ देना सभी भारतीयों का कर्तव्य था। अतः खिलाफत का प्रश्न एक राष्ट्रीय प्रश्न बन गया और भारत के मुसलमान उनके महान् नेतृत्व को मानने लगे। तीस साल की बात है कि गांधीजी ने अंग्रेज तथा अन्य यूरोपीय राजनीतिज्ञों के सामने हमारा दृष्टिकोण पेश करने के लिए भारतीय खिलाफत शिष्टमंडल के तीन प्रतिनिधियों में से एक के लिए दिल्ली नगर में मेरा नाम प्रस्तावित किया। मुझे याद है कि महात्मा गांधी के प्रस्ताव का अनुमोदन हकीम अजमल खां ने और समर्थन स्वामी श्रद्धानन्द ने किया था। इन नामों से कैसी अजीब स्मृतियां ताजा होती हैं! वे हिन्दू-मुस्लिम-एकता के दौर के प्रतीक थे--जो अभाग्यवशात् बड़ी अल्पकालीन थी--जिसकी अकबर महान के समय से भारतीय इतिहास में कोई मिसाल नही मिलती है। यह एक अजीब-सी बात है कि राष्ट्रीय एकता के महान् अभियान में मेरा महात्मा गांधी के साथ संबंध रहा, और फिर कोई चौथाई शताब्दी के विदेश-प्रवास के बाद भारत वापस आने पर उस महात्मा के महान् संघर्ष के अन्तिम दौर को देखा और उसमें भाग लिया। महात्मा गांधी का सर्वोच्च बलिदान हिन्दू-मुस्लिम-एकता की वेदी पर हुआ। मैं इस बात को नहीं मान सकता कि ऐसा बलिदान व्यर्थ जायगा। उन्होंने अपने रक्त से भारतीय एकता के आदर्श तथा धारणा को पवित्र किया, जिसके बिना न राष्ट्रीय शांति, न आदर और न वास्तविक स्वतंत्रता हो सकती है। हम सबको राष्ट्रीय सहयोग के उस उद्देश्य को पूरा करने में अपने आपको पुनः अर्पित कर देना चाहिए,

जिसके वे वीर नेता और उत्प्रेरक थे। उनकी स्मृति का सम्मान हम उनके आदर्शों के प्रति सच्चे होकर ही कर सकते हैं।

गांधीजी सुकरात, ईसा और इमाम हुसैन जैसे इतिहास के सबसे बड़े शहीदों में भी स्थान पा चुके हैं। गांधीजी पर अपनी पुस्तक में मने बताया था कि इस्लाम के चौथे खलीफा हजरत अली के चरित्र की उन्होंने मुझसे बड़ी प्रशंसा की थी। मेरे लिए शायद यह बात बहुत अप्रासंगिक न होगी कि मैं हजरत अली और महात्मा गांधी की शहादत की विचित्र समता सामने रखूं। हजरत अली की हत्या उस समय हुई, जब वे सचमुच प्रार्थना में लीन थे। गांधीजी की हत्या प्रार्थना-सभा में जाते हुए हुई।

महात्मा गांधी और हजरत मूसा में भी एक बड़ा विचित्र साम्य है। जिस समय उनकी अपनी ही जाति वालों द्वारा हत्या की गई, तब इजरायल के पैगम्बर (मूसा) अपने जातिभाइयों को अज्ञात भूमि की लम्बी और अप्रिय तकलीफों से निकाल कर वांछित भूमि तक ले जा चुके थे। इसी प्रकार महात्मा गांधी अपने देशवासियों को उनके लंबे बंधन से मुक्त कराकर स्वतंत्रता की वांछित भूमि तक लाने के बाद अपने ही एक देशवासी के हाथों मारे गए।

मुझे गांधीजी की एक और महान् पैगम्बर से समता नजर आती है। गुरु नानक का देहान्त होने पर हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी ने उन्हें अपना बताया, और कहा जाता है कि तीनों धर्मों की प्रथाओं के अनुसार उनकी तीन अन्तिम क्रियाएं की गईं। महात्मा गांधी को भी अपनी मत्यु पर यही आश्चर्यजनक श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। सचमुच यह दोनों हस्तियां भारत की आत्मिक एकता की सबसे बड़ी दूत थीं।

इस प्रकार चाहे हम उन्हें एक पैगम्बर, या मसीह या शहीद---कुछ भी मानें और यह तीनों बातें उनके महान् चरित्र में मिलती भी हैं---वे इतिहास के अमर व्यक्तियों में से एक हो गए हैं। उनके बलिदान से उनके देशवासी जागें तथा शुद्ध हों और उनकी महान् आत्मा हमें भारत की सेवा के लिए प्रेरित तथा पथ-प्रदर्शित करती रहे, जो उन्हें इतना प्रिय था और जिसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग दिया।

: ४८ :

गांधीवाद अमर है

पट्टाभि सीतारामैया

मनुष्य मरने के लिए ही पैदा होता है और अन्य लोगों की भांति महापुरुष भी अपना दिन आने पर शरीर छोड़ देते हैं, पर वास्तव में अपने पीछे छोड़े कार्य के द्वारा वे सदा के लिए अमर हो जाते हैं। ये कार्य चिरस्थायी होते हैं और समय के साथ परिमाण और बल में बढ़ते जाते हैं। ऐसे कार्य के पीछे जो उच्च आदर्श होते हैं, वे स्थायी होते हैं और बदली परिस्थितियों में नये वातावरण के अनुसार अपने को ढाल लेते हैं। संसार ने पिछली पच्चीस शताब्दियों से भी अधिक में जितने भी महापुरुषों को जन्म दिया है उनमें गांधीजी को—यदि आज नहीं माना जाता तोभी—सबसे बड़ा माना जायगा, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन की गतिविधियों और अंगों को विभिन्न भागों में बांटा नहीं, बल्कि जीवन-धारा को सदा एक और अविभाज्य माना। जिन्हें हम सामाजिक, आर्थिक और नैतिक के नाम से पुकारते हैं, वे वास्तव में उसी धारा की उपधाराएं हैं, उसी भवन के अलग-अलग पहलू हैं। गांधीजी ने मानव-जीवन के इस नवकथानक की व्याख्या न किसी हृदयस्पर्शी वीर काव्य की भांति और न किसी दार्शनिक महाकाव्य की भांति की है, बल्कि उसे उन्होंने मनुष्य की आत्मा में अपने निम्नतम रूप में आत्म-स्वार्थ तथा उचित कार्य के प्रति निष्ठा, किसी ध्येय की सेवा और किसी विचार के प्रति स्वार्पण के बीच सतत चलनेवाले संघर्ष के नाटक की भांति माना है।

दक्षिण-अफ्रीका से वापस आने पर उन्होंने देखा कि राष्ट्रीय जीवन कितना भ्रष्ट हो गया है, आर्थिक दबाव गांवों को किस प्रकार गरीब बना रहा है, सामाजिक असमानताओं ने मनुष्य-मनुष्य के बीच न्याय और ईमानदारी की सभी सीमाओं को किस प्रकार तोड़ डाला है और सरकार द्वारा एकत्रित पाप के धन के कारण देश का कैसा नैतिक पतन हो गया है। इसलिए उन्होंने खद्दर और ग्राम-उद्योग के द्वारा एक स्वावलंबी और स्वयंपूरित, अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा आत्मप्रतिष्ठा और शराब, अफीम तथा भंग की बुराइयों से मुक्त आत्मशुद्ध समाज की बात रखी। रचनात्मक कार्यक्रम तथा सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के द्वारा बिदेशी बंधन से भारत की मुक्ति के साथ-साथ भारत का पुनर्निर्माण करने

की चेष्टा की। इस प्रकार भारत के दासत्व को नष्ट कर और भारतीय राष्ट्रीयता की सही मायनों में बुनियाद रखकर उन्होंने अपने द्विमुखी उद्देश्य की पूर्ति की है।

अपना कार्य पूरा करके वे हमें छोड़ गये हैं और आज भौतिक वृत्तियों में लीन हम उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट कर रहे हैं, जो किसी भी प्रकार असामयिक नहीं हैं किन्तु एकदम अस्वाभाविक है। हमें यह बात मान लेनी चाहिए कि अपना कार्य समाप्त करने के बाद अवतार की अपने कार्यक्षेत्र में कोई जगह नहीं रह जाती। वास्तव में गत जून मास से वे यह महसूस कर रहे थे कि अपनी आवश्यकता से अधिक वे जी रहे हैं और उनकी धारणा के समाज और नीति तथा उनके चारों ओर मान्य धारणाओं के बीच अन्तर बढ़ता जा रहा है। अपने निर्वाण के अवसर पर भूतकाल में भी अवतारों के सामने ऐसी ही जटिल परिस्थितियां आईं। कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पांडवों की सफलता के बाद द्वारिका वापस लौटने पर श्रीकृष्ण ने देखा कि उनके कुल-बन्धु शराब और ऐयाशी में लीन थे, इसलिए वे जंगल में चले गये, जहां एक शिकारी ने श्याम हरिण समझकर उनपर तीर चला दिया, जिसके फलस्वरूप वे मारे गये। श्रीराम ने अपना कार्य पूरा करने के बाद सरयू के गहरे जल में समाधि ले अपने जीवन का अंत कर डाला। पश्चिम में ब्रूनों को जीवित जलाया गया, सुकरात को जहर का प्याला पीना पड़ा, गैलीलियो को कारागृह में बंदी कर दिया गया और धमकियों में उसकी जान गई, अब्राहीम लिंकन को गोली मारी गई। गांधीजी को भी गोली मारी गई, लेकिन जिस प्रकार वे दसवें अवतार हैं, उसी प्रकार वे दशम् चिरंजीवी भी हैं। गांधीजी का देहान्त अपने अन्तिम उपवास में ही हो गया होता, लेकिन हत्यारे के हाथों मरने के लिए वे उससे बच गये। इससे अधिक बुरी बात और कुछ नहीं होगी कि उनकी मृत्यु पर हम शोक करें, क्योंकि उन्होंने अपने जीवन भर हमें सिखाया था कि कोई भी व्यक्ति संसार के लिए ऐसा नहीं होना चाहिए कि उसके बिना दुनिया का कार्य रुक जाय। उनका जीवन एक खुली पुस्तक के समान है, जो उनके बाद भी उनकी भावी संतान को प्राप्य है। हजारों साल तक उनकी शिक्षाओं का अनुसरण करना और उनसे रास्ता पाना अच्छी ही बात है। उनकी अंतिम शिक्षा यह थी कि भारत स्वाधीन तो हो गया है, पर अभी स्वतंत्र नहीं हुआ है। हिन्दू और मुसलमानों को संगठित करना उन तीन सबसे बड़े कार्यों में से एक था, जिनके साथ उन्होंने राष्ट्र का नेतृत्व आरम्भ किया था और इसी काम के लिए उन्होंने अपने प्राण भी दे दिये। क्या हम यह आशा नहीं

कर सकते कि उनके परिश्रम का फल, जिसे वह स्वयं नहीं देख पाये, उनके अनुगामियों के परिश्रम को फलीभूत करेगा और वे लोग इस महान आत्मा के प्रति अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि के रूप में पहले की अपेक्षा अधिक देख और सुधार पायंगे ?

इस विश्व-प्रसिद्ध व्यक्ति से, जिसकी शिक्षाएं अनिवार्यतः दोनों भू-गोलार्द्धों में राष्ट्रों के भविष्य का निर्माण करेंगी, हमारे सामने त्याग के लिए बुद्ध, पीड़ा के लिए ईसा, सत्यवादिता के लिए हरिश्चन्द्र, संपूर्णता के लिए श्रीराम और रणनीति के लिए श्रीकृष्ण की याद ताजा हो जाती है। गांधी ने—जिस व्यक्ति को नियति ने अपने देश का उद्धार करने के लिए जन्म दिया—पहले इच्छा और भय पर विजय पाकर स्वयं अपना उद्धार किया। वे अपने जीवन में एक नायक और मृत्यु से शहीद हो जाने वाले संत हैं। युद्ध और हिंसा से पीड़ित इस संसार के वे वर्तमान मसीहा हैं। यदि यह कथन, जो बार-बार दुहराया गया है, सत्य है कि "सच्चा ईसाई तो एक ही था और वह सूली पर चढ़ाया गया"—तो इतनी ही सचाई के साथ यह भी कहा जा सकता है कि "सच्चा ईसाई एक ही था और उसे गोली मार दी गई।" आधी शताब्दी तक गांधीजी ने संसार की सेवा की और अपना स्थान छोड़ते समय वे अपनी संतति पर अपने खुद के और राष्ट्र के प्रति दुहरे कर्त्तव्य का भार छोड़ गये हैं। कम लोगों को यह गौरव प्राप्त हुआ है कि वे अपना स्मरण-लेख स्वयं लिख सकें। लेकिन ३० मार्च १९३१ को जब कराची में उन्होंने यह घोषित किया कि "गांधी मर सकता है, पर गांधीवाद अमर है" तो अनजाने ही उन्होंने अपना स्मरण-लेख लिख दिया।

वास्तव में गांधीवाद है क्या और कहां पर है ? यह न तो मनुष्य की जिह्वा, न वस्त्रों और न बदलती सामाजिक व्यवस्थाओं में निहित है, जो मानव-जीवन के स्वरूप को बनाती-बिगाड़ती रहती है। गांधीवाद एक जीवन-प्रणाली है। इस पर आश्रम का कोई एकाधिकार नहीं, और न कांग्रेस के भव्य मंडप का ही इसपर कोई एकाधिकार है। इसका स्थान घने जंगलों में नहीं है और न बहते पानी के किनारे है। इसका स्थान हृदय है। गांधीवाद जीवन की प्रणाली है। इसकी भाषाएं बीसियों हो सकती हैं, पर जबान एक है। यह एक ही लक्ष्य के लिए सैकड़ों मार्ग निर्धारित करता है। एक ही आदर्श की निष्ठा में यह हजारों प्रकार की सेवाएं करता है। गांधीजी चाहे मर जायं, पर गांधीवाद अमर है।

: ४९ :

गांधीजी : मानव के रूप में

घनश्यामदास बिड़ला

गांधीजी का मेरा प्रथम संपर्क १९१५ के जाड़ों में हुआ। वे दक्षिण-अफ्रीका से नये-नये ही आये थे और हम लोगों ने उनका एक वृहत् स्वागत करने का आयोजन किया था। मै उस समय केवल २२ साल का था ! गांधीजी की उस समय की शक्ल यह थी : सिर पर काठियावाड़ी साफा, एक लम्बा अंगरखा, गुजराती ढंग की धोती और पांव बिलकुल नंगे। वह तस्वीर आज भी मेरी आंखों के सामने ज्यों-की-त्यों नाचती है। हमने कई जगह उनका स्वागत किया। उनके बोल का ढंग, भाषा और भाव बिलकुल ही अनोखे मालूम दिये। न बोलने में जोश, न कोई अतिशयोक्ति, न कोई नमक-मिर्च। सीधी-सादी भाषा।

१९१५ में जो संपर्क बना वह अन्त तक चलता ही रहा और इस तरह ३२ साल का गांधीजी के साथ का यह अमूल्य संपर्क मुझपर एक पवित्र छाप छोड़ गया है, जो मुझे तमाम आयु स्मरण रहेगा। उनका सत्य, उनका सीधापन, उनकी अहिंसा, उनका शिष्टाचार, उनकी आत्मीयता, उनकी व्यवहार-कुशलता इन सब चीजों का मुझपर दिन-प्रति-दिन असर पड़ता गया और धीरे-धीरे मै उनका भक्त बन गया। जब समालोचक था तब भी मेरी उनमें श्रद्धा थी। जब भक्त बना तो श्रद्धा और भी बढ़ गई। ईश्वर की दया है कि ३२ साल का मेरा एक महान् आत्मा का संपर्क अन्त तक निभ गया। मेरा यह सद्भाग्य है।

गांधीजी को मैंने सन्त के रूप में देखा, राजनैतिक नेता के रूप में देखा और मनुष्य के रूप में भी देखा। मेरा यह भी ख़याल है कि अधिक लोग उन्हें सन्त या नेता के रूप में ही पहचानते है। लेकिन जिस रूप ने मुझे मोहित किया वह तो उनका एक मनुष्य का रूप था, न नेता का और न सन्त का। उनकी मृत्यु पर अनेक लोगों ने उनकी दुःख-गाथाएँ गाई है और उनके अद्भुत गुणों का वर्णन किया है। मै उनके क्या गुण गाऊं ? पर वे किस तरह के मनुष्य थे यह मैं बता सकता हूं।

मनुष्य क्या थे वे कमाल के आदमी थे। राजनैतिक नेता की हैसियत से वे अत्यन्त व्यवहार-कुशल तो थे ही। किसीसे मैत्री बना लेना यह उनके लिए कुछ चन्द मिनटों का काम था। द्वितीय राउन्ड टेबिल कांफ्रेंस में जब वे इंग्लैंड गये

थे तब उनके कट्टर दुश्मन सैम्युल होर से मैत्री हुई तो इतनी कि अन्त तक दोनों मित्र रहे । लिनलिथगो से उनकी न निभी, पर यह दोष सारा लिनलिथगो का ही था । गांधीजी ने मैत्री रखने में कोई कसर न रखी। जिनसे गांधीजी मैत्री रखते, छोटी चीजों में वे उनके गुलाम बन जाते थे। पर जहां सिद्धांत की बात आती थी वहां डट के लड़ाई होती थी । पर उसमें भी वे कटुता न लाते थे। लन्दन में जितने रोज रहे बिना सैम्युल होर की आज्ञा के कोई वक्तव्य या व्याख्यान देना उन्होंने स्वीकार नही किया । लिनलिथगो से भी कई बातों में ऐसा ही संबंध था ।

निर्णय करने में वे न केवल दक्ष थे, पर साहसी भी थे। चौरीचौरा के कांड को लेकर सत्याग्रह का स्थगित करना और हिमगिरि जितनी अपनी बड़ी भूल मान लेना इसमें काफी साहस की जरूरत थी। सत्याग्रह स्थगित करने पर वे लोगों के रोष के शिकार बने, गालियां खाई, मित्रों को काफी निराश किया; पर अपना दृढ़ निश्चय उन्होंने नही छोड़ा। १९३७ में कांग्रेस ने जब गवर्नमेंट बनाना स्वीकार किया तब गांधीजी के निर्णय से ही प्रभावान्वित होकर कांग्रेस ने ऐसा किया। गांधीजी ने जहां कदम बढ़ाया, सब पीछे चल पड़े। कांग्रेस-नायकों में उस समय झिझक थी, वे शंकाशील थे। १९४२ में जबकि क्रिप्स आये तब हाल इसके विपरीत था। कांग्रेस के कुछ नेता चाहते थे कि क्रिप्स की सलाह मान ली जाय और क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार किया जाय । पर गांधीजी टस-से-मस न हुए, बल्कि उन्होंने 'हिन्दुस्तान छोड़ो' की धुन छेड़ी और लड़ पड़े । इस समय भी उन्होंने निर्णय करने में काफी साहस का परिचय दिया ।

मुझे याद आता है कि राजनीति में उस समय करीब-करीब सन्नाटा था। लोगों में एक तरह की थकान थी। नेताओं में प्रायः एकमत था कि जनता लड़ने के लिए उत्सुक नहीं है ।

बिहार से एक नेता आये । गांधीजी ने उनसे पूछा—जनता में क्या हाल है ? क्या जनता लड़ने को तैयार है ? बिहारी नेता ने कहा—जनता में कोई तैयारी नहीं है, कोई उत्साह नहीं है। पीछे रुककर उन्होंने कहा कि मुझे एक कथा स्मरण आती है। एक मर्तबा नारद विष्णु के पास गए। विष्णु ने नारद से पूछा—नारद, ज्योतिष के अनुसार वर्षा का कोई ढंग दीखता है। नारद ने पंचांग देखकर कहा कि वर्षा होने को कोई संभावना नहीं है। नारद ने इतना कहा तो सही; पर विष्णु के घर से बाहर निकले तो वर्षा से सुरक्षित होने के लिए अपनी कमली ओढ़ ली ।

विष्णु ने पूछा—नारद, कम्बल क्यों ओढ़ते हो ? नारद ने कहा—मैंने ज्योतिष की बात बताई है; पर आपकी इच्छा क्या है, यह तो मैं नहीं जानता। अन्त में जो आप चाहेंगे वही होने वाला है। इतना कहकर उन बिहारी नेता ने कहा—बापू, जनता में तो कोई जान नहीं है, पर आप चाहेंगे तो जान भी आ ही जायगी। यह बिहारी नेता थे सत्यनारायण बाबू, जो अब सरकार की असेम्बली में मुख्य सचेतक हैं। जो उन्होंने सोचा था वही हुआ। जनता में लड़ने की कोई उत्सुकता न थी, पर बिगुल बजते ही लड़ाई ठनी तो ऐसी कि अत्यन्त भयंकर।

पर यह तो मैंने उनकी नेतागिरी और राजकौशल की बात बताई। इतने महान् होते हुए भी किस तरह छोटों की भी उन्हें चिन्ता थी, यह आत्मीयता उनकी देखने लायक थी। यही चीज उनके पास एक ऐसे रूप में थी कि जिसके कारण लोग उनके बेदाम गुलाम बन जाते थे। उनके पास रहनेवाले को यह डर रहता था कि बापू किसी भी कारण अप्रसन्न न हों और यह भय इसलिए नहीं था कि वे महान व्यक्ति थे; पर इसलिए था कि मनुष्य में जो सहृदयता और आत्मीयता होनी चाहिए वह उनमें कूट-कूट कर भरी थी।

बहुत वर्षों की बात है। करीब २२ साल हो गये। जाड़े का मौसम था। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। गांधीजी दिल्ली आये थे। उनकी गाड़ी सुबह चार बजे स्टेशन पर पहुंची। मैं उन्हें लेने गया। पता चला कि एक घंटे बाद ही जाने वाली गाड़ी से वे अहमदाबाद जा रहे हैं। उनके गाड़ी से उतरते ही मैंने पूछा—एक दिन ठहरकर नहीं जा सकते ? उन्होंने कहा—क्यों, मुझे जाना आवश्यक है ? मैं निराश हो गया। उन्होंने फिर पूछा—क्यों ? मैंने कहा—घर में कोई बीमार है। मृत्यु-शय्या पर है। आपके दर्शन करना चाहती है। गांधीजी ने कहा—मैं अभी चलूंगा। मैंने कहा—मैं इस जाड़े में ले जाकर आपको कष्ट नहीं दे सकता। उन दिनों मोटरें भी खुली होती थीं। जाड़ा और ऊपर से जोर की हवा; पर उनके आग्रह के बाद मैं लाचार हो गया। मैं उन्हें ले गया, दिल्ली से कोई १५ मील की दूरी पर। वहां उन्होंने रोगी से बात कर उसे सान्त्वना दे दिल्ली केंटोनमेंट पर अपनी गाड़ी पकड़ी। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा व्यक्ति मेरी जरा-सी प्रार्थना पर सुबह के कड़ाके के जाड़े में इतना परिश्रम कर सकता है और कष्ट उठा सकता है। पर यह उनकी आत्मीयता थी जो लोगों को पानी-पानी कर देती थी। मृत्यु-शय्या पर सोने वाली यह मेरी धर्मपत्नी थी।

परचुरे शास्त्री एक साधारण ब्राह्मण थे। उन्हें कुष्ट था। उनको गांधीजी ने अपने आश्रम में रखा सो तो रखा; पर रोजमर्रा उनकी तेल की मालिश भी स्वयं अपने हाथों करते थे। लोगों को डर था कि कहीं कुष्ट गांधीजी को न लग जाय। पर गांधीजी को इसका कोई भय न था। उनको ऐसी चीजों से अत्यन्त सुख मिलता था।

४२ के शुरू में मैं वर्धा गया। कुछ दिन बाद उन्होंने मुझसे कहा—तुम्हारा स्वास्थ्य गिरा मालूम देता है। इसलिए मेरे पास सेवाग्राम आ जाओ और यहां कुछ दिन रहो। मैं तुम्हारा उपचार करना चाहता हूं। मैंने कहा—वर्धा ठीक है! सेवाग्राम में क्यों आपको कष्ट दूं। मुझे संकोच तो यह था कि सेवाग्राम में पाखाना साफ करने के लिए कोई मेहतर नहीं होता। वहांपर टट्टी की सफाई आश्रम के लोग करते हैं। जहां मुझे ठहराना निश्चित किया गया था, वहां की ट्टी महादेव भाई साफ किया करते थे। मैंने उन्हें अपना संकोच बताया कि क्यों मैं सेवाग्राम नहीं आना चाहता था। मैं स्वयं अपनी टट्टी साफ नहीं कर सकता और यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि महादेव भाई जैसा विद्वान् और एक तपस्वी ब्राह्मण उसको साफ करे। गांधीजी को मेरा संकोच निरा वहम लगा। पाखाना उठाना क्या कोई नीच काम है? महादेव भाई ने भी मज़ाक किया, परन्तु मेरे आग्रह पर मेहतर रखना स्वीकार कर लिया गया। आगाखां पैलेस में जब उनका उपवास चलता था तो मैं गया। बड़े बेचैन थे। बोलने की शक्ति करीब-करीब नहीं के बराबर थी। मैंने सोचा कि कुछ राजनैतिक बातें करूंगा; पर आश्चर्य हुआ। पहुंचते ही हम सबका कुशल-मंगल, छोटे-मोटे बच्चों के बारे में सवाल और घर-गृहस्थी की बातें। इसी में काफी समय लगा दिया। मैं उनको रोकता जाता था कि आपमें शक्ति नहीं है, मत बोलिये; पर उनको इसकी कोई परवाह नहीं थी।

इस तरह की उनकी आत्मीयता थी, जिसने हजारों को उनका दास बनाया। नेता बहुत देखे, सन्त भी बहुत देखे, मनुष्य भी देखे; पर एक ही मनुष्य में सन्त, नेता और मनुष्य की ऊंचे दर्जे की आत्मीयता मैंने और कहीं नहीं देखी। मैं अगर गांधीजी का कायल हुआ तो उनकी आत्मीयता का। यह सबक है जो हर मनुष्य के सीखने के लायक है। यह एक मिठास है, जो कम लोगों में पाई जाती है।

गांधीजी करीब पौने पांच महीने के बाद इस मर्तबा हमारे घर में रहे। जैसा-कि उनका नियम था, उनके साथ एक बड़ी बरात आती थी। नये-नये लोग आते थे और पुराने जाते थे। भीड़ बनी रहती थी। घर तो उनके ही सुपुर्द था। कितने

मेहमान उनके ऐसे भी आते थे जो मुझे पसन्द नहीं थे, जो उनके पासवालों को भी पसन्द नही थे। बम गिरने के बाद बहुतों ने उन्हें बेरोक-टोक भीड़ में घुस जाने से मना किया। सरदार वल्लभभाई ने उनके लिए करीब ३० मिलिटरी पुलिस और १५-२० खुफिया बिड़ला-हाउस में तैनात कर रक्खे थे, जो भीड़ में इधर-उधर फिरते रहते थे; पर मैं जानता था इस तरह से उनकी रक्षा हो ही नहीं सकती। जो लोग आते थे उनकी झड़ती लेने का विचार पुलिस ने किया मगर गांधीजी ने रोक दिया। हर सवाल का एक ही जवाब उनके पास था—"मेरा रक्षक तो राम है।"

उपवास के बाद उनका हाजमा बिगड़ा। मैंने कहा—कुछ दवा लीजिये। फिर वही उत्तर। मेरा वैद्य राम है। मेरी दवा राम है। कुछ अदरक, नींबू, घृतकुमारी का रस, नमक और हीग साथ मिलाकर उनको देना निश्चित किया। आग्रह के बाद साधारण खान-पान की चीज समझकर उन्होंने इसे लेना स्वीकार किया। पर वह भी कितने दिन? अन्त में तो राम ही उन्हें अपने मंदिर में ले गये।

उनके अन्तिम उपवास ने उनके निकटस्थ लोगों में काफी चिन्ता पैदा की। उपवास के समय मैंने काफी बहस की। मैंने कहा—"मेरा आपका ३२ साल का संपर्क है। अपके अनेक उपवासों में मै आपके पास रहा हूं। मुझे लगता है कि आप का यह उपवास सही नहीं है"; पर गांधीजी अटल थे। यह कहना भी गलत है कि गांधीजी आस-पास के लोगों से प्रभावान्वित नहीं होते थे। बुद्धि का द्वार उनका सदा खुला रहता था। बहस करनेवाले को प्रोत्साहन देते थे और उसमें जो सार होता उसे ले लेते थे, चाहे वह कितने ही छोटे व्यक्ति से क्यों न मिलता हो। बार-बार बहस करते-करते मुझे लगा कि उनके उपवास के टूटने के लिए काफी सामग्री पैदा हो गई है। मुझे बंबई जाना था। जरूरी काम था। मैंने उनसे कहा, "मैं बंबई जाना चाहता हूं। मुझे लगता है कि अब आपका उपवास टूटेगा। न टूटनेवाला हो तो मैं न जाऊं।" मैंने यह प्रश्न जान-बूझकर उन्हें टटोलने के लिए किया। उन्होंने मजाक शुरू किया। कहा—"जब तुम्हें लगता है कि उपवास का अन्त होगा तो फिर जाने में क्या रुकावट है? अवश्य जाओ, मुझसे क्या पूछना है?" मैंने कहा—मुझे तो उपवास का अन्त लगता है, पर आपको लगता है या नही, यह कहिये। उन्होंने मजाक जारी रखा ओर साफ उत्तर न देकर फंदे में फंसने से इंकार किया। मैंने कहा—नचिकेता यम के घर पर भूखा रहा तो यम को क्लेश हुआ; क्योंकि ब्राह्मण घर में भूखा रहे तो पाप लगता है। आप यहां उपवास करते हैं तो मुझपर पाप

चढ़ता है। इसलिए अब इसका अन्त होना चाहिए। गांधीजी ने कहा—मैं ब्राह्मण कहां हूं। पर आप तो महाब्राह्मण हैं। इसपर बड़ा मजाक रहा। मैंने कहा—अच्छा, आप यह आशीर्वाद दीजिए कि मैं शीघ्र-से-शीघ्र आपके उपवास टूटने की खबर बंबई में सुनूं। फिर भी उनका मजाक तो जारी ही रहा। मैंने कहा—अच्छा यह बताइये कि आप जिन्दा रहना चाहते हैं या नहीं। उन्होंने कहा—हां, यह कह सकता हूं कि मैं जिन्दा रहना चाहता हूं। बाकी तो मैं राम के हाथ में हूं। उपवास तो समाप्त हुआ; लेकिन राम ने उन्हें छोड़ा नहीं।

शुक्र को करीब सवा पांच बजे गांधीजी को गोली लगी और उसी दम उनका देहांत हो गया। मैं उस समय पिलानी था। करीब ६ बजे कालेज के छात्र दौड़ते हुए आए और उन्होंने रेडियो की खबर बताई कि किस तरह गांधीजी चल बसे। सन्नाटा छा गया।

मैंने रात को ही वापस आने की ठानी, पर मालूम हुआ कि सुबह वायुयान से जाने से हम जल्दी पहुंच सकेंगे। सोया; पर रात भर बेचैनी रही। स्वप्न आने लगे। मानों मैं दिल्ली पहुंच गया। पहुंचते ही बापू के कमरे में गया तो देखता हूं, जहां बापू लेटते थे वहीं मृतक अवस्था में लेटे पड़े हैं। पास में प्यारेलाल और सुशीला बैठे हैं। मैंने जाकर प्रणाम किया। मुझे देखते ही गांधीजी उठ बैठे। कहने लगे—"अच्छा हुआ तुम आ गए। यह कोई नादान का काम नहीं है। यह तो गहरा षड्यंत्र था। पर मैं तो प्रसन्नता के मारे अब नाचूंगा; क्योंकि मेरा काम तो अब समाप्त हो गया।" फिर कुछ इधर-उधर की बात करते रहे। अन्त में घड़ी निकालकर कहने लगे, "अब तो ११ बज गये हैं। तुम लोग अब तो मुझे श्मशान घाट ले जाओगे इसलिए लेट जाता हूं।" इतना कहकर फिर लेट गये।

बस इसके बाद मैंने बापू को चैतन्य रूप में नहीं देखा न उनकी जबान सुनी। यह भी तो सपना ही था, पर सपने में भी प्रत्यक्ष-का-सा अनुभव किया। दिल्ली पहुंचा तो बापू को पड़ा पाया। चेहरे पर उनके कोई विकृति नहीं थी। वही प्रसन्न मुद्रा, वही क्षमा-भाव और वही मुस्कान। पर अब तो वह भी देखने में नहीं आयगी।

एक दीपक बुझ गया; पर हमारे लिए रोशनी छोड़ गया।

: ५० :

महाप्रस्थान

बी० के० मल्लिक

किसी भी हिन्दुस्तानी के लिए, गांधीजी का इस नाटकीय ढंग से उठ जाना निश्चय ही एक ऐहिक बात थी। स्पष्टरूप से यह उस प्राचीन परंपरा के अंत की सूचक है जो बुद्ध और महावीर से आरम्भ हुई थी, और जो समय-समय पर नानक, कबीर, चैतन्य एवं बहुत-से दूसरे संतों से वाणी लेकर विभिन्न स्वरों में लहराती रही। गांधीजी का अंत करनेवाले इस कार्य को समझ सकना या इतिहास में क्रोध में उन लपटी जड़ों का पता लगाना, जिनसे यह कार्य इतने निर्दयतापूर्ण ढंग से संपन्न हुआ, बड़ा कठिन काम है। हमारे विश्वास का एक-एक तार टूट जायगा यदि क्रोध के आवेश में या लज्जा से इस काम को एक चेतावनी के रूप में स्वीकार करने के बजाय हम सारा दोष किन्हीं विशेष दलों या आन्दोलनों के मत्थे मढ़ने लगें। खास सवाल यह है कि उनकी मौत के कारण अधूरे रह गये काम को हम पूरा करें। और किसी बात का इतना महत्व नहीं है।

तब, बापू अपनी मौत से क्या सबक हमारे लिए छोड़ गए हैं? उनके इस एकाएक चले जाने का क्या अर्थ हो सकता है, और क्यों उन्होंने इतिहास के ऐसे नाजुक और संकटापन्न क्षणों में हमें छोड़ दिया? पाये हुए वरदान को छोड़ सकना किसीके लिए भी बड़ा कठिन होता है। नष्ट हो जाना मानवीय है; लेकिन चोट को सहकर वे ही जिन्दा रह सकते हैं, जोकि अनुशासन और प्रायश्चित्त के अन्दर भी अच्छाई को देखने के लिए तैयार हैं। उनकी चिता के धुएँ से उठते हुए संदेश में मुझे सिर्फ चेतावनी के कुछ अक्षर पढ़ने को मिले और कुछ नहीं।

वह चेतावनी यह है कि किसीका कैसा ही ऊंचा आदर्श क्यों न हो, और कितने ही अलौकिक साधनों से कोई अपनेको क्यों न सावधान रखे, फिर भी उद्देश्य की सफलता की कोई गारन्टी नहीं। कोई भी उद्देश्य कितना ही पुण्यमय क्यों न हो, सुरक्षित नहीं है। आप पृथ्वी के तमाम मनुष्यों और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, शांति और सद्भावना का दावा कर सकते हैं और उनके लिए अपनी जिन्दगी भी खपा सकते हैं, लेकिन फिर भी इस बात की पूरी संभावनाएँ मौजूद हैं कि आपका पड़ोसी ही, जिसे आप यह सब देने को तैयार हैं, इसे ठुकरा दे और आपके

प्राण ही ले ले। दूसरी बात यह है कि क्या पता, जिसे आप ईमानदारी और दृढ़ता के साथ प्रेम और शांति का नाम दे रहे हैं, जो जिन्दगी का सार है, वही आपके पड़ोसी की जिन्दगी को सुखा दे और उसकी मृत्यु का कारण बन जाय, जिस तरह कि गर्म सूर्य कोमल पौधों को मुरझा देता है।

ऐसे बहुत-से मौके आये जब स्वयं बापू ने अपने द्वारा की गई गलतियों पर पश्चाताप किया। परन्तु उनकी मृत्यु इस बात को अंतिम रूप से अंगीकार करती है कि सत्य तक पहुँचना बड़ा दुर्लभ है और कोई भी प्रायश्चित कितना ही गहरा क्यों न हो, यात्रा की आखिरी मंजिल तक पहुँचने की गारन्टी नहीं दे सकता। सफलता या जीवन-योजना की पूर्ति कोई न्यायसंगत या उचित उद्देश्य नहीं है; हो सकता है निराशा में किसीको इस तरह का मार्ग-दर्शक सिद्धान्त मिल जाय।

चेतावनी के चार स्पष्ट परिणाम जीवन की पूर्ण रचना के लिए एक आधार तैयार करते हैं, और बापू की यही अंतिम देन है, जो उन्होंने हमारे लिए अपनी मौत के द्वारा छोड़ी है। जो अनुशासन जीवन के औपचारिक बलिदान में समाप्त हुआ, उसके फलीभूत होने का यह संकेत है। उन्होंने अपनी जिन्दगी में जो कुछ कर दिखाया वह हमारे लिए सपने से भी बाहर की बात थी। बापू के अनवरत बलिदान और कष्टों ने ही हमें गुलामी से ऊपर उठाया है। उन्हींके कारण आज आज़ादी की ताजी और साफ हवा हमारे मैदानों और पहाड़ों के ऊपर बह रही है। फिर भी यह काम उनकी संपूर्ण योजना का एक अंशमात्र था। योजना का मूल उद्देश्य मानव जाति में इस तरह शांति की प्रतिष्ठा करना था जिससे कि वे अनवरत कलह और संघर्ष के जीवन के स्थान पर शांतिपूर्वक रहने के योग्य बन सकें।

इस चेतावनी के गर्भ में वह भविष्यवाणी छिपी है, वह संदेश छिपा है, जिसका कि अमल जीवन में वे अपनी जाँच के कठिनतम क्षणों तक बराबर करते रहे और जिसके प्रति उनका भरोसा कभी डिगा नहीं। उसी विश्वास या भरोसे को हम उनसे आज प्राप्त कर सकते हैं, विशेषकर ऐसे समय में जब उनकी मृत्यु के शोक ने हमारी आत्मा के सारे मैल को धो दिया है।

और आज जिन टीकाओं को मैं श्रद्धापूर्वक सुन रहा हूँ, उनसे चार बातें स्पष्ट प्रकट होती हैं।

पहली बात यह है कि अपने उद्देश्य या योजना की सफलता के लिए निश्चित किये गए कितने भी साधनों की कोई कीमत नहीं, और न सफलता के विषय में हमारा भरोसा कभी खरा उतरता है, जबतक कि उसके पीछे जनता की स्वीकृति से

प्रोत्साहित मान्यता की पवित्रता का बल न हो। भेंट देनेवाले व्यक्तियों को दान-स्थल पर खड़े होकर अपनी मान्यता की कसौटी पर उन्हें कसना पड़ता है। भेंट उस समय तक नहीं दी जा सकती जबतक कि उसे प्राप्त करने का अवसर न हो, ठीक उसी तरह से जैसे यदि कोई देनेवाला ही न हो तो प्राप्त कैसे किया जाय। देने वाला और पाने वाला एक साथ प्रकट होते है और एक-दूसरे में प्रतीति करते हे और उस समाज के कोई मानी नही, जहाँ दोनों की व्यवस्था न हो। दान या उपहार का देने वाला कोई स्त्री-पुरुष पहले उसके लिए एक आदर्श की रूप-रेखा तैयार करता है और उसके अनुसार एक योजना बनाता है। जबकि दूसरी ओर उपहार या भेंट को प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस आदर्श को पहले अपने में पचाता है अथवा हमारी सामाजिक योजना की रचना के अनुरूप उस नक्शे को कार्यान्वित करता है। ये दो कार्य दो विभिन्न क्षेत्रों में समाज के प्रधान हितों का ढाँचा तैयार करते हैं। तर्क-दृष्टि से दोनों यह प्रमाणित करते हैं कि दुनिया की प्रत्येक रीति या कार्य प्रकृति से ही इस अर्थ में दोहरे हे कि उसके कृतपात्र और कर्मपात्र दोनों उसमें शुरू से मौजूद रहते हैं। उद्देश्य या लक्ष्य एक ही होता है, परंतु उद्देश्य की पूर्ति में दुहरे कार्य की आवश्यकता रहती है। इसलिए उपहार के देने वाले उपदेशक या दार्शनिक को समुदाय के निर्णय और स्वीकृति पर निर्भर रहना ही पड़ता है, चाहे यह निर्णय उन्हें मान्य हो अथवा नहीं, चाहे यह निर्णय अपने को जीवित सिद्धान्त के रूप में बदलने की क्षमता रखता हो या नहीं।

इससे दो नतीजे निकलते हैं—प्रथम, गांधीजी के प्रेमोपहार को उन लोगों की स्वीकृति और रजामन्दी की प्रतीक्षा करनी पड़ी, जिनको यह सर्मपित किया गया था। उदाहरण के तौर पर अपने प्रेम को उन सामाजिक योजनाओं की रचना के अनुरूप खपा देने के लिए महात्माजी को विन्सटन चर्चिल जैसे अंग्रेज, मुहम्मद अली जिन्ना जैसे मुसलमान और महाराष्ट्रियन ब्राह्मण जैसे हिन्दू पर निर्भर रहना पड़ा था। द्वितीय—स्वीकृति के इस सिद्धान्त का महात्मा गांधी के अपने अहिंसा के सिद्धान्त से सीधा सम्बन्ध है।

क्या हम यह नहीं सोच सकते कि ये दोनों सिद्धान्त एक ही हैं ? यदि "स्वीकृति" "अधिकार" से भिन्न है तो हिंसा को "अधिकार" एवं "स्वीकृति" को अहिंसा के समरूप माना जा सकता है। जिन लोगों का यह दावा है कि सिद्धान्त पूर्णतया कारण से परिणाम तक साक्षी के आधार पर मान्य किया जा सकता है, और जो प्रमाण की आवश्यकता का खंडन करते हैं, उन्हें हिंसा का समर्थक माना

जा सकता है, और उन लोगों को, जो "स्वीकृति" को प्रामाणिकता की प्रथम शर्त मानते हैं, अहिंसा की श्रेणी में रखा जा सकता है।

मैं आज भी इस प्रश्न पर विवाद नहीं कर सकता कि अहिंसा का उसूल इस विशिष्ट रूप में ही गांधीजी द्वारा व्यवहृत हुआ था। एसा सोचते समय मैं उनके उस समय के विचारों को प्रसंग से बिल्कुल अछूता रख कर ही कह रहा हूँ जबकि वे पार्थिव रूप से हमारे साथ थे। मैं उनके विषय में कोई संस्मरण भी लिखने नहीं जा रहा हूं वरन् केवल उसी बात का उल्लेख कर रहा हूँ, जिसे वे मेरे मस्तिष्क को आदेश-सा प्रतीत होते हैं।

मृत्यु की घटना से कोई इन्कार नहीं कर सकता, लेकिन इसके यही अर्थ है कि हम मृत्यु से उसी तरह जगेंगे जिस तरह नीद से, और पुनः विश्व के जीवन-सागर के बीच अपने को पायंगे। यदि मृत्यु का अर्थ पूर्ण विनाश है तो एक भी जीवन का विनाश संसार में संकट बरपा कर सकता है, क्योंकि कभी-भी कोई जीवन बिल्कुल एकान्त अवस्था में अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। इसके विपरीत दूसरे जीवन से उसका पारस्पारिक संबंध कायम रहता है। कम-से-कम यही एक तथ्य ऐसा है जो मेरे इस दावे की पुष्टि करेगा कि बापू आज भी जिन्दा हैं और वे इतिहास पर अपनी टीका लिखवा रहे हैं। यह निर्विवाद है कि पिछले १० वर्षों में बापू द्वारा किये गए प्रयोगों में मानव-जाति की अत्यधिक रक्षित उच्च परंपरा की अंतिम अवस्था का समावेश हुआ है। जिस नाटक के वे प्रधान अभिनेता थे उस नाटक में हमारे किसी भी खलीफा या धर्मगुरु ने कभी कोई भाग नहीं लिया था, यहाँतक कि कुछ समय पूर्व जब उसी मार्ग पर स्वयं रामकृष्ण परमहंस चले तो उसी परंपरा का उनका वह प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक संपन्न हुआ था, जिसके द्वारा लोगों के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न किया गया था कि हम अंधकार में पुनः गिरे बिना सत्य और प्रकाश की ओर बढ़ सकते हैं। परन्तु जब महात्मा गांधी की ५० वर्ष की तपस्या पूरी हुई तो केवल धुंआ उठा और वह आग जिसमें यह प्रयोग खप गया, एक गुजरती हवा से सिर्फ थोड़ी देर के लिए आग भड़की। श्रेष्ठ मूल्यों और बुद्धि के माप विलुप्त हो गए; और इसके बाद जो घना अंधेरा चारों ओर फैला, उसने सबको घबड़ा दिया। इतिहास की किसी हस्ती की अपेक्षा यदि व्यग्रता का यह नाटक महात्माजी में सबसे अधिक समाविष्ट था तो मैं यह दावा कर सकता हूँ कि जो कुछ होने वाला है, उसके एक मात्र उत्तराधिकारी गांधीजी ही हैं।

अब मैं दूसरी टीका को लेता हूँ। दुनिया में या स्वर्ग में ऐसी कोई ताकत

नहीं जो अन्य लोगों द्वारा हमारे कामों का विरोध होने पर उस निराशा से हमारी रक्षा कर सके। विरोध का पूर्ण अभाव ही निश्चित सफलता की एकमात्र शर्त है। एकता में विभिन्न कार्य एक-दूसरे से मिल जाते हैं और जो उन्हें पसंद करते हैं वे सहयोग देते हैं। इसके विपरीत संघर्ष विरोध और प्रतिकूलताओं की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है और इस कारण संघर्ष में पड़े हुए उद्देश्य को प्रतिकूलताओं और भिन्नताओं द्वारा उत्पन्न निराशा के अटल भाग्य का शिकार होना पड़ता है।

उदाहरण के तौर पर यदि एकता और स्वतंत्रता दो परस्पर विरोधी तत्त्वों की हैसियत से टकराते हैं तो निश्चय ही उन्हें निराशा का सामना करना पड़ता है। यदि महात्मा गांधी और मुहम्मद अली जिन्ना आज़ादी और एकता के समर्थक की हैसियत से सामने आते तो उन दोनों को सीधे संघर्ष में पड़ने से कोई नहीं रोक सकता था और उस दशा में दोनों उद्देश्यों की असफलता का पहले से ही अंदाज लगाया जा सकता था। हिन्दुस्तान का विभाजन भी इस बात का सबूत नहीं है कि आज़ादी का उद्देश्य हमेशा के लिए निराशा के चंगुल से मुक्त हो गया। इसने यह प्रमाणित कर दिया कि एकता के उद्देश्य को घोर निराशा का सामना करना पड़ा; बंटवारे के बाद यह बात साबित नही होती कि श्री जिन्ना ने आजादी हासिल की या कभी कर सकते थे। उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया वह थी कुछ बंधनों से आज़ादी। इस प्रकार की आज़ादी से क्षणिक विश्राम है और महात्मा गांधी एवं पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित एकता के आदर्श को निराशा में बदलने के लिए ही समर्थ हो सकती है। परिणाम की दूसरी मंजिल भी तैयार हो चुकी है, जो आज़ादी के उद्देश्य को घोर निराशा में बदल देगी। विपरीतताओं के नियम के अनुसार ऐहिक जगत-संबंधी विधान के अनुसार यही होना चाहिए। मैं प्रतिकार के विधान की बात नही कह रहा हूँ, और न भाग्यचक्र की; इतिहास की भावना में या विश्व में ऐसी कोई ईर्ष्या नहीं है, जो इतने कठोर नियमों का अभिनय करके न्याय के काम पर लोगों से वसूल करने का आग्रह करे। क्या हमारे विरोधी इस तीर्थ-यात्रा में हमारे साथ होकर शोक क्या होता है इसका अनुभव नहीं कर सकते? प्रेम का संदेश आज छिन्न-भिन्न होकर खंडित शौर्य की अवस्था में पड़ा है और उसके स्थान पर संघर्ष का विधान शासन कर रहा है।

तीसरी टीका यह है कि कष्ट से बचने का हम कोई भी उपाय क्यों न करें, उससे बचने का कोई रास्ता नहीं है। जैसा कि हम जानते हैं, जीवन के एक स्थायी

अंग की तरह अक्षय रूप से उसकी मुहर हमारे ऊपर लगा दी गई है। स्वेच्छा से अथवा लाचारी से हम या तो दूसरे के लिए क्लेश पैदा करते हैं या स्वयं उसके शिकार बन जाते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति या समुदाय नहीं मिलेगा जिसे क्लेश के इन दोनों पहलुओं का अनुभव न हो। इस आलोचना के पीछे यह उसूल छिपा है कि जिन मूल्यों और दृश्य पदार्थों को हम चाहते हैं, वे सभी अपने स्वरूप में दोहरे होते हैं। दार्शनिक परिभाषा के अनुसार हम उन्हें रहस्यपूर्ण और मानवी या स्वतंत्रवादी या अधिकारवादी कह सकते हैं। इस विभागवादी तर्कशास्त्र के भीतर भी एक अक्षमता का दोष छिपा है। दो विपरीत मूल्यों में हमेशा संघर्ष होता है और वे एक-दूसरे के खिलाफ मैदान में डटे रहते हैं।

चौथी टीका यह है कि हम कुछ भी क्यों न करें उस दुनिया से छुटकारा पाना मुश्किल है, जिसने क्लेशों की इस जिन्दगी को संभव किया है। दूसरी कोई दुनिया ऐसी है नहीं, जो इस दुनिया की यातनाओं से रक्षा कर हमें शरण दे सके।

इतिहास की इन्हीं टीकाओं को बापूजी ने हमारे संमुख रखा है। किसी दूसरे व्यक्ति को यह करने का अधिकार या अवसर नहीं है। इस दुनिया में उनकी जिन्दगी का रास्ता और परम शांति को पाने का तरीका—ये दो ऐसी गवाहियाँ हैं, जिनपर उपरोक्त टीकाएं अवलम्बित हैं।

ये अद्भुत परीक्षा के दिन हैं। आज सत्य के दावे की रक्षा करनी है, उसे प्रमाणित करना है। आधुनिक युग में यदि कोई चीज मजबूती से खड़ी रह सकती है तो वह है प्रमाण। आधुनिक भावना किसी भी ऊंचाई तक ऊपर चढ़ सकती है; परन्तु उत्कर्ष को वेदी पर शोभित होकर यात्रियों को आशीर्वाद देने वाले देवता को पहले अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करनी होगी। यह बात गुप्त मस्तिष्कों को अपवित्र भले मालूम पड़े; परन्तु मनुष्य आज अपनी महत्ता को देवत्व के शौर्य से आच्छादित नहीं देख सकता। ईश्वरी उपस्थिति का दावा केवल मानव-गौरव के अन्तर से ही उत्पन्न हो सकता है। कोई भी देवता यों ही मानव पर अपना प्रभुत्व कायम नहीं कर सकता, उसी तरह जिस तरह कि मनुष्य अपनी आन्तरिक दिव्यता की उपेक्षा नहीं कर सकता। जो भी हमारी मान्यताएं हैं, उनकी प्रामाणिकता को कसौटी पर कसना ही होगा।

यदि ईश्वर सचमुच स्वर्ग में है और दुनिया में रहनेवाली अपनी सृष्टि की देखभाल करता है तो उसके लिए यह अवसर है कि वह अपने इस दावे को सिद्ध करे। दैवी विशेषता की अभिव्यक्ति के लिए जो विधान ईश्वर ने बनाया,

उसका बड़ी कड़ाई के साथ पालन किया गया। बकाया रकम को पूरी तरह अदा किया गया। मनुष्य की ओर से इतना करने के बाद भी यदि संदेश का प्रसार न किया जा सका और दुनिया में शांति की स्थापना न हुई तो केवल मनुष्य ही नहीं, वरन् उसके साथ-साथ ईश्वरीय नियम और ईश्वर तक को धक्का लगेगा।

मेरे विचार से गांधीजी का जीवन आधुनिक युग की प्रधान कसौटी है। इस प्रयोग का उद्देश्य स्वयं परंपरा थी—पृथ्वी पर जीवन का अर्थ।

: ५१ :

श्रद्धांजलि

देवदास गांधी

यह सब लिखने को तैयार मैं इसलिए हुआ हूं कि मैं चाहता हूं कि मेरे ही समान जो दूसरे लोग अनाथ हुए है, उन्हें भी अपने शोक और चिन्तन में भागीदार बना सकूं। जो अन्धकार हमपर छाया है, उसने सबको समान रूप से निगल लिया है और मैं जानता हूं कि पिछले शुक्रवार की शाम से एकाएक मैं अपने चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार का जो अनुभव कर रहा हूं, वह अकेला मेरा ही अनुभव नहीं है।

मुझमें और बापू में पिता-पुत्र का जो स्वाभाविक प्रेम था, उसका साक्षी ईश्वर है। वह दिन मुझे आज याद है जबकि लगभग २० वर्ष की आयु में मैं बापू से अलग होकर विशेष अध्ययन के लिए काशी जा रहा था और बापू ने झट आगे बढ़कर बड़े प्रेम से मेरा माथा चूम लिया था। पिछले कुछ महीनों से, जबसे बापू दिल्ली में थे, मेरे तीन वर्ष के पुत्र को उनका लाड़-प्यार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अभी कुछ दिन हुए, एक बार मुझसे बापू ने कहा भी था कि जिस दिन तुम लोग बिड़ला-हाउस नहीं आते, उस दिन तुमसे भी ज्यादा मुझे गोपू की याद आती है। अब यह छोटा बालक जब वैसा मुह बनाता है, जैसा उसके दादा उसका स्वागत करते समय बनाया करते थे, तो हमारी आंखों से आंसू निकल पड़ते हैं। इन बातों के बावजूद भी मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूं कि गांधीजी की गणना पारिवारिक व्यक्तियों में नहीं हो सकती। मैंने बहुत पहले ही यह खयाल छोड़ दिया था कि वह अकेले मेरे ही पिता हैं। मेरे लिए वह वैसे ही ऋषि थे जैसे आप

में से किसीके लिए। मेरी आवाज़ सुन रहे हैं और मैं आपकी ही तरह उनका अभाव महसूस कर रहा हूं। मैं इस भयंकर विपत्ति को ऐसे प्राणी की तटस्थ भावना में देखता हूं जो मानो उत्तरी ध्रुव में रहता हो और जिसका उस महापुरुष के साथ खून या जाति का कोई सम्बन्ध न हो। उनकी हानि का तो हमको अभी धुंधला-सा ही आभास हो रहा है।

हमदर्दी के जो हार्दिक सन्देश मुझे और मेरे परिवारवालों को मिल रहे हैं, उनसे हमको बड़ी सान्त्वना मिल रही है। लेकिन हम मानते हैं कि सन्देश भेजने वाले शायद हमसे भी कही अधिक दुःखी और संतप्त है। कौन किसको दिलासा दे ?

आखिरी सांस छोड़ने के करीब ३० मिनिट बाद मै वहां पहुंचा। उस समय तक बापू का शरीर गरम था। उनकी चमड़ी हमेशा कोमल और स्वभावतः सुन्दर थी। जब मैंने उनके हाथ को धीरे से अपने हाथों में लिया तो ऐसा लगा मानो कुछ हुआ ही नहीं है। किन्तु नाड़ी का पता न था। जिस तरह वह हमेशा सोया करते थे, उसी तरह तख्त पर लेटे हुए थे। उनका सिर आभा की गोद में रखा हुआ था। सरदार पटेल और नेहरूजी उनके निकट गुम-सुम बैठे थे और दूसरे बहुत-से लोग श्लोक और भजन बोलते हुए सिसकियां भर रहे थे। मै देर से पहुंचा था। इस बात के लिए मैंने बापू के कान में रोते हुए क्षमा मांगी, किन्तु निष्फल रहा। भूतकाल में न जाने कितनी बार उन्होंने मेरी भूलों को क्षमा किया था। मैंने कोशिश की कि इस आखिरी बार वह मुझे फिर क्षमा कर दें और एक नज़र मेरी ओर डालें। लेकिन उनके होठ बिलकुल बन्द थे और उनकी आकृति में शांत दृढ़ता थी। ऐसा मालूम पड़ता था मानो वह स्वभाव से ही समय की पावंदी न करनेवाले अपने पुत्र से बिना क्रोध लेकिन दृढ़ता के साथ कह रहे है—अब मेरी शांति को तुम भंग नही कर सकते।

हम सारी रात जागते रहे। उनका चेहरा इतना शांत और स्थिर था और उनके शरीर के चारों ओर फैला हुआ दैवी प्रकाश इतना मधुर था कि मृत्यु का शोक करना या उससे डरना मुझे पाप मालूम हुआ। उन्होंने १३ जनवरी को अपना उपवास शुरू करते हुए जिस परम मित्र का जिक्र किया था, उसने उन्हें बुला लिया था।

हम लोगों के लिए सबसे अधिक असह्य वेदना का क्षण वह था, जब हमने उस आलवान को उतारा जिसे वह ओढ़े हुए थे और जिसमें वह प्रार्थना-सभा में गये थे, और जब हमने शरीर को नहलाने के लिए उनके कपड़ों को उतारा। बापू अपने थोड़े-से कपड़ों के बारे में हमेशा बहुत साफ-सुथरे होते थे।

उस दिन वह और भी स्वच्छ और साफ सुथरे मालूम हुए। प्रार्थना-भूमि पर गोली खाकर गिर पड़ने के कारण ऊपर की चादर में मिट्टी और घास के तिनके लग गये थे। हमने उसे बगैर झाड़े उसी रूप में धीरे-धीरे समेट लिया। चादर में हमको एक गोली का खोल मिला, जिससे यह जाहिर होता है कि गोली बहुत निकट से चलाई गई थी। वह छोटा दुपट्टा, जिसे वह छाती और कंधे पर डाले रहते थे, कई जगह खून से भरा हुआ था। जब सब कपड़े हटा लिये गये और उनकी छोटी-सी धोती के अलावा कुछ न बचा तो हम लोग अपने आपको अधिक न संभाल सके। बापू के वे घुटने, वे हाथ, वे खास तरह की अंगुलियां, वे पांव सब पहले जैसे ही थे। कल्पना कीजिये कि उस शरीर को मसाला लगाकर ज्यों-का-त्यों कायम रखने के सुझाव को न मानने में हमें कितनी कठिनाई हुई होगी। लेकिन हिन्दू-भावना उसकी इजाजत नहीं देती और अगर हम उस सुझाव को मान लेते तो बापू ने हमको कभी क्षमा न किया होता।

हालांकि अखबारों में सही-सही विस्तृत विवरण छप चुका है, फिर भी मुझसे बहुत लोगों ने पूछा है कि क्या मृत्यु तुरन्त हो गई? बापू उस दिन कमरे से प्रार्थना मैदान में जाने के लिए शाम को पांच बजकर दस मिनट पर रवाना हुए थे। उनके सदा के विश्वस्त साथी उनके साथ थे, जिनका सहारा लेकर वह चला करते थे। आभा दाईं ओर थी और मनु बाईं ओर। ज्यों ही बापू बगीचे की सीढ़ियों पर चढ़े, उन्होंने कहा कि मुझे देर हो गई है। वह पांच बजे के बाद तक सरदार पटेल से बातें करते रहे थे और एक मिनट भी आराम किये बिना प्रार्थना के लिए चल पड़े थे। ठीक उसी समय वह आदमी कहीं से आगे आया और उनके निकट बढ़ा। मनु ने यह समझकर कि वह दूसरों की तरह सामने लेटना या गांधीजी के पाँव छूना चाहता है, उसे हटाने की कोशिश की। लेकिन उसने मनु का हाथ झटक दिया। और तीन बार गोली चलाई। सभी गोलियां गांधीजी की छाती पर और छाती के नीचे दाहिनी ओर लगी। ज्यों ही वह नीचे गिरे, आभा भी गिर पड़ी और उसने उनका सिर अपनी गोद में रख लिया। दोनों लड़कियों ने गांधीजी को "राम, राम" कहते सुना। स्त्री-पुरुष शोक से अपना सिर धुनने लगे और उसी समय बापू के प्राण पखेरू उड़ गये। वापस मकान में ले जाने में पांच मिनट लग गये होंगे। तब अंधेरा हो गया था।

जब हम उस विषाद-भरे कमरे में उस रात बापू के चारों ओर बैठे हुए थे मैं प्रार्थना-पूर्ण होकर बालकों की तरह आशा लगाये रहा कि तीन घातक गोलियों

के जख्मों के बाद भी वह बच जायंगे और सूर्योदय से पहले-पहले जीवन किसी-न-किसी तरह लौट आयगा। लेकिन जब समय आगे बढ़ता गया और दुनिया की किसी भी बात से उनकी निद्रा भंग न हुई तो मैं यह कामना करने लगा कि सूर्य कभी उदय ही न हो। लेकिन फूल भीतर लाये गये और हमने अन्तिम यात्रा के लिए शरीर को सजाना शुरू किया। मैंने चाहा कि छाती खुली ही रहने दी जाये। बापू जैसी विशाल और सुन्दर छाती किसी सैनिक की भी नहीं रही होगी। तब हम उनके चारों ओर बैठ गये और वे भजन और श्लोक बोलने लगे, जो बापू को बड़े प्रिय थे। लोगों की भीड़ रात भर आती रही और अगले दिन बड़े सवेरे बापू ने हरिजन-फण्ड के लिए आखिरी बार पैसा इकट्ठा किया। लोग बारी-बारी से उनके दर्शक करते हुए गुजर रहे थे और फूलों के साथ बापू पर सिक्कों और नोटों की वर्षा करते जाते थे। विदेशी राजदूतों ने अपनी पत्नियों तथा कर्मचारियो के साथ आदर प्रकट किया। यह सब शिष्टाचार से बहुत परे था। वह उनसे विदा ले रहे थे, जिनसे वह पहले मिल चुके थे और जिन्हें वह खूब मानते थे।

पिछली ही रात मुझे एक अत्यन्त दुर्लभ अवसर मिला था। वह यह कि कुछ देर के लिए मैं अकेला बापू के पास रह पाया। मैं हमेशा की भांति रात के साढ़े नौ बजे उनसे मिलने गया था। वह बिस्तरे में थे और एक आश्रमवासी को वर्धा की पहली गाड़ी पकड़ने के बारे में हिदायतें देकर ही निपटे थे। मैं अन्दर गया और उन्होंने पूछा, "क्या खबर है?" उनका यह मुझे याद दिलाने का हमेशा का तरीका था, क्योंकि मैं अखबारनवीस हूं। मै भलीभांति जानता था कि इसमें मेरे लिए एक चेतावनी है, लेकिन उन्होंने मुझसे कभी कुछ छिपाया नहीं। मैंने जिस बारे में उनसे पूछा, उसका सार वह मुझको बता दिया करते थे। कभी-कभी तो बिना पूछे खुद ही बता दिया करते थे। लेकिन आमतौर पर वह तभी बताते थे, जब मैं उनसे पूछता था, यह मानकर कि मै तभी पूछूंगा, जब बहुत जरूरी होगा, और वह भी ऐसे काम के लिए जिसका अखबार की खबर के साथ कोई संबंध नहीं होगा। इन मामलों में वह मुझपर उतना ही विश्वास करते थे, जितना स्वयं अपने पर।

स्वभावत: मेरे पास कोई खबर देने को नही थी, इसलिए मैंने पूछा, "हमारी सरकार की नौका का क्या हाल है?" उन्होंने कहा—"मेरा यकीन है कि जो थोड़ा मतभेद है, वह मिट जायगा। किन्तु मेरे वर्धा से लौटने तक ठहरना होगा। इसमें ज्यादा समय नहीं लगेगा। सरकार में देशभक्त लोग हैं। और कोई ऐसी बात नहीं करेगा, जो देश के हितों के विरुद्ध हो। मुझे यकीन है कि उन्हें हर हालत में

साथ-साथ रहना है और वे रहेंगे। उनके बीच कोई ठोस मतभेद नहीं है। इसी तरह की और भी बातचीत हुई और अगर मैं कुछ देर और ठहर जाता तो उस समय भी वहां भीड़ जमा हो गई होती। इसलिए विदा होते-होते मैंने कहा—"बापू, क्या अब आप सोयेंगे?" वह बोले, "नहीं, कोई जल्दी नहीं है। अगर तुम चाहो तो कुछ देर और बात कर सकते हो।" लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हूं, बातचीत जारी रखने की इजाजत फिर दूसरे रोज नहीं मिल सकी।

कुछ दिन पहले जब मैं रात को उनसे विदा ले रहा था, मैंने उनसे कहा कि मैं प्यारेलाल को अपने साथ खाना खाने के लिए ले जा रहा हूं। "हां, हां जरूर, लेकिन तुम मुझे तो कभी खाने को बुलाते ही नहीं!"—हमेशा की भांति खिल-खिलाकर हॅसते हुए उन्होंने कहा।

मैं बापू को मारनेवाले उस आदमी को कोसता हूं, ठीक उसी तरह जैसे मैं अपने भाई या पुत्र को कोसता, क्योंकि बापू के साथ उसका यही रिश्ता था। मैंने उसे मूर्ख माना है। सचमुच वह कितना भयंकर मूर्ख सिद्ध हुआ है! उसे बदमाशों का प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त था। किन्तु वे भी असह्य मूर्ख है। याद रखिये कि मूर्ख की मूर्खता की कोई सीमा नही होती। और इसलिए जिस तरह हम चोर से साव-धान रहते है, उसी प्रकार हमको मूर्ख से भी सावधान रहना चाहिए। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के काम एक समय ऐसे थे कि उनसे मेरे दिल में संघ के प्रति प्रशंसा की भावना उत्पन्न हो गई थी। जब वह शुरू हुआ तब शारीरिक व्यायाम, कवायद, बड़े सवेरे उठना और अनुशासित जीवन उसका आधार था। किन्तु शीघ्र ही कुछ दुस्साहसी बीच में कूद पड़े। कुछ को उसमें निजी उत्कर्ष और राजनैतिक मौका नजर आया। गिरावट तेजी से शुरू हुई। उसके कुछ नेताओं ने पहले तो खानगी में और बाद में सार्वजनिक रूप से भयंकर बातें कहनी शुरू कीं और आखिर किसी ने अपने दिल में बुरे-से-बुरे विचारों को भी धारण करना आरम्भ कर दिया। लेकिन हम अपना लक्ष्य आंखों से ओझल न करें। हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में ऐसे लोग हैं, जो अगर उन्हें मालूम होता तो गांधीजी को बचाने के लिए अपने प्राण दे देते और प्रकट रूप में यह बात उनमें से अधिकांश पर लागू होती है। केवल मुट्ठीभर आदमी हैं, जिनका बम्बई और उसके आसपास जमघट है और जिनका इस गुनाह के साथ सम्बन्ध है। हमको सारे महाराष्ट्र को उन मुट्ठी-भर महाराष्ट्रियों के साथ शामिल नहीं कर लेना चाहिए, जिनके अपराधी साथी दूसरी जगहों में भी है। मैं इस गिरोह के बारे में कुछ कहने का अपनेको अधिकारी

नहीं मानता । उनको दंभ, असन्तोष और मानव के सबसे अधिक शक्तिशाली विकार ईर्ष्या के संयोग से प्रेरणा मिली है ।

कहा जाता है कि कुछ लोगों ने मिठाई बांटकर इस घटना पर खुशी मनाई। यह इतना हास्यास्पद है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिन्होंने ऐसा किया है, परिणामों की उन्हें कोई चिन्ता नही है और उनके सामने कोई मकसद भी नही है । कुछ बदनाम अखबार उनकी पीठ पर है, जिनपर कोई अंकुश नहीं रहा। सरकार को यह देखना है कि इन शरारतियों के साथ कैसा बर्ताव किया जाय, जिनमें से कुछ खुले और कुछ गुप्त रूप में काम करते है। शरारती इतने थोड़े और इतने बिखरे हुए हैं कि आप लोगों को उनकी कोई खास चिन्ता करने की जरूरत नही है। सरकार को उनके साथ निपटने के लिए छोड़ देना चाहिए।

किसी भी रूप में बदला लेने का सवाल ही नहीं उठता। क्या उससे बापू लौट आ सकते है ? क्या वह यह पसन्द करेंगे कि हम खून की होली खेलने लग जायं? कभी भी नही ।

पीछे की ओर नजर दौड़ाने पर मालूम होगा कि हम बापू की रक्षा न कर सके। लेकिन बापू जैसे भी थे, उसको देखते हुए क्या उनकी पूरी रक्षा करने का प्रबन्ध सम्भव था ? उन्हें अपनी ७८ वर्ष की उम्र में सिवाय भगवान के और क्या संरक्षण प्राप्त था। और क्या उनको हमेशा ही खतरों के बीच नहीं रहना पड़ा ? इसलिए हम अपने शोक में उन लोगों पर कर्त्तव्य की उपेक्षा करने का आरोप न लगायें, जो हमारी ही तरह इस विपत्ति पर भारी वेदना महसूस कर रहे हैं ।

मैं नहीं मानता कि भविष्य अंधकारपूर्ण है । पैगम्बर के अलावा कौन भविष्य के बारे में आत्म-विश्वास के साथ बोल सकता है ? वर्तमान निश्चय ही अंधकार-पूर्ण है लेकिन अगर हम उन आदर्शों के लिए काम करें, जिनके लिए बापू जिये और मरे तो भविष्य उज्ज्वल ही होना चाहिए। इसलिए मैं निराश नहीं हूं। अगर हम यह इच्छा करते कि बापू को हमेशा हमारे बीच रहना चाहिए तो बापू हमको लोभी कह सकते थे । अब हमें अपने ही साधनों और उद्योग पर निर्भर करना होगा। परमात्मा की मर्जी पर मैं व्यर्थ शोक प्रकट करने में समय नष्ट नहीं करूंगा और न भावना का ही अपव्यय करूंगा। बापू परम निर्वाण पा गये। उनका शरीर तो नहीं रह गया, किन्तु उनकी आत्मा सदा हमारी रहनुमाई करेगी और हमें सहायता देगी। पिछले चार महीने के दैनिक प्रवचनों में हमें उनसे संतुलित आदेश मिले हैं। उनमें वह सब कुछ मौजूद है, जो वह हमको कह सकते थे। हम

चाहें तो झगड़ सकते हैं और एक-दूसरे का साथ छोड़ सकते हैं ! लेकिन इसके विपरीत मेल-मिलाप की थोड़ी कोशिश से ही हम काले बादलों को हटा सकते हैं। तब हम देखेंगे कि सुनहरा प्रभात अधिक दूर नहीं है ।

: ५२ :

बापू !

सुशीला नैयर

कहते हैं, समुद्र-मन्थन से अमृत निकला, हीरे-जवाहरात निकले और हलाहल-जहर निकला। जहर इतना घातक था कि सारे जगत् का नाश कर सकता था। उसका क्या किया जाय ? सब इस बारे में चिन्तित थे। शिवजी आगे बढ़े और उन्होंने वह जहर पी लिया। हिन्दुस्तान के समुद्र-मन्थन में से आजादी का अमृत निकला। साथ ही आपस की मारकाट का, दुश्मनी का, बैर का, हिंसा का जहर भी निकला। गांधीजी ने इसके सामने अपनी आवाज बुलंद की। लोग अपनी मूर्च्छा में चौंके, लेकिन जागे नहीं। पाकिस्तान के लोगों के कानों में भी आवाज पहुंची। बापू की आवाज गगन में गूंज रही थी, "इस आग को बुझाओ, नहीं तो दोनों इसमें भस्म हो जाओगे।" उनका हृदय दिन-रात पुकारता था, "हे ईश्वर, इस ज्वाला को शांत कर, नहीं तो मुझे इसमें भस्म होने दे।" बापू अनेक उपवासों से, अनेक हमलों से बच निकले थे, पर अपने ही एक गुमराह पुत्र की गोली से न बच सके। पुत्र के हाथ से हलाहल का प्याला लेकर वे पी गये, ताकि हिन्दुस्तान जीवित रह सके। किसीने कहा, "जगत् ने दूसरी बार ईसा का सूली पर चढ़ना देखा है।"

मुझे जब यह खबर मिली तब मैं मुलतान में थी। बहावलपुरियों को बापू की इतनी चिन्ता थी कि उन्होंने मुझे लेसली क्रास साहब के साथ बहावलपुर भेजा था। वहां डिप्टी कमिश्नर की पत्नी ने बहुत प्यार से पूछा, "गांधीजी अब कैसे हैं ? हमारे पास कब आयेंगे ?" मैंने कहा, "जब आपकी हुकूमत चाहेगी।"

शाम को ६ बजे के करीब डिप्टी कमिश्नर साहब की पत्नी हांफती-हांफती आई और बोली, "दुनिया किधर जा रही है ? गांधीजी को गोली से मार दिया।" सुनते ही मेरे हाथ-पांव ठंडे पड़ गये। मैं सुन्न बैठ गई। किसी दूसरे ने कहा—"'नहीं नहीं, यह तो अफवाह है। हम दिल्ली को फोन करके पक्की खबर कर लेंगे। घबराइये

नहीं।" मैंने कहा,—"नहीं, मुझे अभी लाहौर जाना है। कोई गाड़ी दिलाइये। सच्ची खबर हो या झूठी, मैं जल्दी-से-जल्दी पहुंचना चाहती हूं।"

गाड़ी बिड़ला-भवन के पिछले दरवाजे में दाखिल हुई। उधर भी बहुत भीड़ थी। दूर से एक ऊंचा फूलों का ढेर दिखाई पड़ा। मैं भीड़ को पूरे जोर से चीरती हुई हांफती-हांफती वहां पहुंची, जहां पालकी रवाना होने के लिए तैयार थी। वहां सरदार अपने दिवंगत स्वामी के कंधों के पास गम्भीर बैठे थे। उन्होंने मुझे ऊपर चढ़ाया। फूलों में से बापू का चेहरा ही दीखता था। हमेशा की तरह मैंने अपना सिर उनकी छाती पर रख दिया। बिना सोचे अन्दर से भावना उठी, अभी बापू एक प्यार की चपत लगा देंगे, पीठ पर एक जोर की थपकी लगा देंगे। मगर मैंने तो उनकी आखिरी थपकी बहावलपुर जाते समय ही ले ली थी।

सिर के पास मनु और आभा खड़ी थी। "सुशीला बहन! सुशीला बहन!" पुकारकर वे फूट-फूट कर रोने लगीं। आंसुओं में से मैंने देखा, बापू का चेहरा पीला था, पर हमेशा की तरह शांत। वे गहरी नींद में सोये दीखते थे। अपने आप मेरा हाथ उनके माथे पर चला गया। उनके चेहरे को छुआ। वह अभी भी मुझे गरम लगा, जीवित लगा। मेरा सिर फिर से उनके चेहरे पर झुक गया। माथा उनके गाल को जा लगा। किसी ने पुकारा, "अब सब नीचे उतरो।"

नीचे सिर की तरफ पण्डितजी खड़े थे। दुःख और गम की रेखाएं उनके चेहरे पर थीं। मुंह सूखा हुआ था। उन्होंने प्यार से हम तीनों को नीचे उतारा। पुराने जमाने में महादेव भाई, देवदास भाई और प्यारेलालजी तीनों बापू के साथ हुआ करते थे—त्रिमूर्ति कहलाते थे। उसी तरह कुछ महीनों से आभा, मनु और मैं. बापू के साथ त्रिमूर्ति-सी बन गई थीं। उन तीनों में महादेवभाई बड़े थे, इन तीनों में मैं। दोनों लड़कियां दोनों तरफ से मुझसे लिपट गईं। एक-दूसरी को सहारा देते हुए हम आगे बढ़ीं। बापू चाहेंगे, रामधुन चले, सो रामधुन शुरू की, लेकिन बहुत चल न सकी। मणि बहन बार-बार ध्यान खींचती थी, रोना नहीं चाहिए। सिख भाइयों ने गुरुग्रन्थ साहब के शब्द बोलने शुरू किये। हम सब उनके पीछे राम-नाम बोलने लगे।

कुछ देर बाद हम लोग पीछे बापू की गाड़ी के पास आ गये। उस गाड़ी के स्पर्श में बापू का स्पर्श था। दोनों तरफ लाखों जनता खड़ी थी। हर दरख्त की हर टहनी पर लोग बैठे थे। 'महात्मा गांधी की जय' के नाद से गगन गूज रहा था।

जैसे जीवन में, वैसे मृत्यु में, निन्दा और स्तुति से अलिप्त बापू सो रहे थे। जीवन में हम लोगों को चुप कराते थे। जयनाद से भी उनके कानों को तकलीफ

पहुंचती थी। वे कानों को उंगलियों से बन्द कर लिया करते थे। कान बन्द करने को हमें साथ में रुई रखनी पड़ती थी। मगर आज उसकी जरूरत नहीं थी। मन में आया, क्या अपनी भावनाएं हम आंसू बहाकर धो डालेंगे ? क्या जयघोष करके ही बैठ जायंगे ? या क्या ये भावनाएं कार्यरूप में भी परिणत होंगी ?

शाम को जलूस यमुनाजी के किनारे पहुंचा। ईंटों के एक छोटे-से चबूतरे पर लकड़ियां रखी थीं। जिस तख्त पर बापू बैठा करते थे, उसीपर उनका शव था। उसे लाकर लकड़ियों पर रखा गया। ब्राह्मणों ने कुछ मन्त्र पढ़े। हम लोगों ने छोटी-सी प्रार्थना की। देवदास भाई ने बापू के पांव पर सिर रखकर प्रणाम किया। हृदय से एक ही पुकार निकल रही थी। "बापू मेरे अपराध क्षमा करना। मेरी भूल-चूक त्रुटियां क्षमा करना। जीवन में कितनी बार आपको सताया, आपको मानवी पिता मानकर आपसे झगड़ा किया। आपके साथ दलीलें कीं। बापू, क्षमा करना। क्षमा करना। क्षमा!" मैं चिता से दूर हटकर बैठ गई। मैं ज्यादा देख न सकी। मन में मैं गीता का यह श्लोक दोहराती रही :

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं, मया प्रमादात् प्रणयेन वापि॥

"बापू! आपने जो अगाध प्रेम मुझपर बरसाया; जो अगाध विश्वास बताया; भूल-पर-भूल क्षमा की; तुच्छ, अज्ञान, मतिहीन को अपनाया; सिखाया; अपनी बेटी बनाया; उसको लायक बनाया!" एक बार बापू ने महादेवभाई से बातें करते हुए कहा था, "सुशीला ने सबसे आखिर में मेरे जीवन में प्रवेश किया, मगर वह सबसे निकट आई। मुझमें समा गई है।" हे प्रभु! उसी समय तूने मुझे क्यों न उठा लिया। उसके बाद सुशीला उनसे दूर चली गई।

बापू की बात पर उसके मन में शंका आने लगी, मगर बापू ने धीरज से उसकी शंकाओं का निवारण करने का प्रयास किया। उसे अपने से दूर न जाने दिया। एक बार कहने लगे—"तूने 'हाउण्ड ऑफ हेविन' की कविता पढ़ी है। तू मुझसे भाग कैसे सकती है ? मैं भागने दूं तब न ?" इस नालायक बेटी के प्रति इतना प्रेम! हे प्रभो, जो योग्यता उनके जीवनकाल में न थी, वह उनके जाने के बाद दोगे ?

शव पर चन्दन की लकड़ियां रखने लगे। सुगन्धित सामग्री डालने लगे। मैं जाकर सरदार काका के पास बैठ गई। घुटनों में सिर रख लिया और देख न सकी। सारा जगत् चक्कर खा रहा था। भीड़ का जोर से धक्का आया। मनु, आभा, मैं और मणि-बहन पास बैठी थीं। सरदार ने हमें साथ लेकर उस भीड़ में से निकलने

की कोशिश की। धक्के-पर धक्का आता था, हम गिरते-पड़ते बाहर निकले। एक मिलिटरी ट्रक में बैठे। सरदार काका और सरदार बलदेवसिंहजी साथ थे। ट्रक चली। आभा ने मेरा हाथ खींचा। चिता की ज्वाला की लपटें आकाश को जा रही थीं। हृदय पुकार उठा, "हे प्रभो, इस अग्नि में हमारे दोष, हमारी कमजोरियां भस्म हो जायं, ताकि हम बापू के बताये मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ सकें। जिस अग्नि को शांत करने में उनके प्राण गये; वह इस अग्नि के साथ शान्त हो।" रात को बिड़ला-भवन में जिस गद्दी पर बैठकर बापू काम किया करते थे, उसपर रखी बापू की फोटो के सामने बैठे मन में विचार आने लगा—कल सारी रात मोटर में बैठे हृदय से जो ध्वनि निकल रही थी, "बापू जीवित हैं। बापू जीवित हैं," वह क्या गलत थी ? वह ध्वनि इतनी स्पष्ट थी, मगर क्या सब कल्पना का ही खेल था ? उत्तर मिला—"नही, बापू जीवित है। सचमुच जीवित है। तुम्हारे एक-एक विचार को, एक-एक आचार को देख रहे हैं।" दूसरे दिन क्रास साहब अंग्रेजी कविता की कुछ लाइनें लिखकर दे गये। उनमें आखिरी लाइनों का भाव कुछ ऐसा था।

"याद रखो, अब उनके हथियार सिर्फ तुम्हारे हाथ और पांव हैं। वे देखते हैं। संभालना कि किस चीज को तुम छूते हो, कहांपर कदम रखते हो।"

एक दफा बापू से किसी ने कहा था—"आपके अनुयायियों, और रचनात्मक कार्य करनेवालों में कुछ बेबसी पाई जाती है। उनमें वह तेजी नही, जिससे वे आपका सन्देश घर-घर, गांव-गांव, देश भर में पहुंचावें।" बापू गम्भीर हो गये। कहने लगे, "हां, आज वे बेबस से लगते हैं। मेरे जीवन में दूसरा हो नहीं सकता। उन सबका व्यक्तित्व मेरे व्यक्तित्व के नीचे दबा पड़ा हुआ है। वे बात-बात में मुझसे पूछते हैं। मगर मेरे बाद, मै आशा रखता हूं, उनमें वह तेज और शक्ति अपने आप आ जायगी। अगर मेरे सन्देश में कुछ है, तो वह मेरे जाने के बाद मर नही जायगा।"

हमलोगों से एक बार कहने लगे कि वे हमसे क्या-क्या आशाएं रखते हैं। आगाखां महल में उपवास की बातें चल रही थी। वे न रहें, तो हमारा क्या धर्म होगा, हमें क्या करना होगा, वे हमें समझा रहे थे। हमसे वह चर्चा सहन नहीं हुई। मै बोल उठी, "नहीं बापू, यह सब न सुनाइये। हमारी तो यही प्रार्थना है कि आपके देखते-देखते महादेवभाई की तरह हमें भी ईश्वर उठा लें। आपके बाद कुछ भी करने की हमारी शक्ति नहीं।" बापू और ज्यादा गम्भीर हो बोले, "महादेव की तरह तुम सब मुझे छोड़ते जाओगे, तो मै कहां जाऊंगा ? ऐसा विचार करना तुम्हें शोभा नहीं देता। और तुम लोगों की आज शक्ति नहीं मगर ईसा के मृत्यु के समय उनके शिष्यों

में शक्ति थी क्या ? दृढ़ विश्वास से सच्चे हृदय से, जो ईश्वरपरायण होकर कार्य करता है, शक्ति उसे ईश्वर अपने आप दे देता है। जो अपने आपको शून्यवत् करके सत्य की आराधना करता है, उसका मार्ग-प्रदर्शन प्रभु अपने आप करता है।"

क्या हम अपने आपको शून्यवत् कर सकेंगे ?

परिशिष्ट

: १ :

बापू का अन्तिम दिन

प्यारेलाल

२९ जनवरी को सारे दिन गांधीजी को इतना ज्यादा काम रहा कि दिन के आखिर में उन्हें खूब थकान मालूम होने लगी । कांग्रेस-विधान के मसविदे की तरफ इशारा करते हुए, जिसे तैयार करने की जिम्मेदारी उन्होंने ली थी, उन्होंने आभा से कहा, "मेरा सिर घूम रहा है । फिर भी मुझे इसे पूरा करना ही होगा । मुझे डर है कि रात को देर तक जागना होगा ।"

आखिरकार वे ९। बजे रात को सोने के लिए उठे । एक लड़की ने उन्हें याद दिलाया कि आपने हमेशा की कसरत नहीं की है । "अच्छा, तुम कहती हो तो मैं कसरत करूंगा"—गांधीजी ने कहा और वे दोनों लड़कियों के कंधों पर, जिमनाशियम के "पैरलल बार की" तरह, शरीर को तीन बार उठाने की कसरत करने के लिए बढ़े ।

बिस्तर में लेटने के बाद गांधीजी आमतौर पर अपने हाथ-पांव और दूसरे अंग सेवा करने वालों से दबवाते थे—ऐसा करवाने में उन्हें अपना नहीं, बल्कि सेवा करनेवालों की भावनाओं का ही ज्यादा ख़याल रहता था । वैसे तो उन्होंने अपने आपको इस बात से एक अरसे से उदासीन बना लिया था, हालांकि मैं जानता हूं कि उनके शरीर को इन छोटी-मोटी सेवाओं की जरूरत थी । इससे उन्हें दिन-भर के कुचल डालनेवाले काम के बोझ के बाद मन को हलका करनेवाली बात-चीत और हँसी-मजाक का थोड़ा मौका मिलता था । अपने मज़ाक में भी वे हिदायतें जोड़ देते । गुरुवार की रात को वे आश्रम की एक महिला से बातचीत करने लगे, जो संयोग से मिलने आ गई थी । उन्होंने उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी न होने के कारण उसे डांटा और कहा कि अगर रामनाम तुम्हारे मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित होता तो

तुम बीमार नहीं पड़तीं। उन्होंने आगे कहा, "लेकिन उसके लिए श्रद्धा की जरूरत है।"

उसी शाम को प्रार्थना के बाद प्रार्थना-सभा में आये हुए लोगों में से एक भाई उनके पास दौड़ता हुआ आया और कहने लगा कि आप २ फरवरी को वर्धा जा रहे हैं, इसलिए मुझे अपने हस्ताक्षर दे दीजिये। गांधीजी ने पूछा, "यह कौन कहता है ?" हस्ताक्षर मांगनेवाले हठी भाई ने कहा, "अखबारों में यह छपा है।" गांधीजी ने हँसते हुए कहा, "मैंने भी गांधी के बारे में वह खबर देखी है। लेकिन मैं नहीं जानता, वह 'गांधी' कौन है ?"

एक दूसरे आश्रमवासी भाई से बात करते हुए गांधीजी ने वह राय फिर दोहराई जो उन्होंने प्रार्थना के बाद अपने भाषण में जाहिर की थी--"मुझे गड़बड़ी के बीच शांति, अंधेरे में प्रकाश और निराशा में आशा पैदा करनी होगी।" बात-चीत के दौरान में 'चलती लकड़ियों' का जिक्र आने पर गांधीजी ने कहा, "मैं लड़कियों को अपनी 'चलती लकडियां' बनने देता हूं, लेकिन दरअसल मुझे उनकी जरूरत नही है। मैंने लम्बे समय में अपने आपको इस बात का आदी बना लिया है कि किसी बात के लिए किसी पर निर्भर न रहा जाय। लड़कियां अपना पिता समझ-कर मेरे पास आती हैं और मुझे घेर लेती हैं। मुझे यह अच्छा लगता है। लेकिन सच पूछा जाय तो मैं इस बात में बिलकुल उदासीन हूं।" इस तरह यह छोटी-सी बातचीत तबतक चलती रही जबतक गांधीजी सो न गये।

आठ बजे उनकी मालिश का वक्त था। मेरे कमरे से गुजरते हुए उन्होंने कांग्रेस के नये विधान का मसविदा मुझे दिया, जो देश के लिए उनका 'आखिरी वसीयतनामा' था। इसका कुछ हिस्सा उन्होंने पिछली रात को तैयार किया था। मुझसे उन्होंने कहा कि इसे 'पूरी तरह' दोहरा लो। इसमें कोई विचार छूट गया हो तो उसे लिख डालो, क्योंकि मैंने इसे बहुत थकावट की हालत में लिखा है।

मालिश के बाद मेरे कमरे से निकलते हुए उन्होंने पूछा, "उसे पूरा पढ़ लिया या नहीं।" और मुझसे कहा कि नोआखाली के अपने अनुभव और प्रयोग के आधार पर मैं इस विषय में एक टिप्पणी लिखूं कि मद्रास के सिर पर झूमते हुए अन्न-संकट का किस तरह सामना किया जा सकता है। उन्होंने कहा—"वहां का खाद्य-विभाग हिम्मत छोड़ रहा है। मगर मेरा खयाल है कि मद्रास ऐसे प्रान्त में, जिसे कुदरत ने नारियल, ताड़, मूगफली और केला इतनी ज्यादा तादाद में दिये हैं—कई किस्म की जड़ों और कन्दों की बात ही जाने दो--अगर लोग सिर्फ अपनी

खाद्य-सामग्री का सम्हालकर उपयोग करना जानें, तो उन्हें भूखों मरने की जरूरत नहीं।" मैंने उनकी इच्छा के अनुसार टिप्पणी तैयार करने का वचन दिया। इसके बाद वे नहाने चले गये। जब वे नहाकर लौटे तब उनके बदन पर काफी ताजगी नजर आती थी। पिछली रात की थकावट मिट गई थी और हमेशा की तरह प्रसन्नता उनके चेहरे पर चमक रही थी। उन्होंने आश्रम की लड़कियों को उनकी कमजोर शारीरिक बनावट के लिए डांटा। जब किसीने उनसे कहा कि वाहन न मिलने के कारण . . . . अमुक जगह नहीं गई, तो उन्होंने कड़ाई से कहा––"वह पैदल क्यों न चली गई ?" गांधीजी की यह कड़ाई कोरी कड़ाई ही नही थी; क्योंकि मुझे याद है कि एक बार जब आंध्र के अपने एक दौरे में हमें ले जानेवाली मोटरों का पेट्रोल खत्म हो गया तो उन्होंने सारे कागजात और लकड़ी की हलकी पेटी लेकर वहां से १३ मील दूर दूसरे स्टेशन तक पैदल जाने के लिए तैयार होने को हमसे कहा था।

बंगाली लिखने के अपने रोजाना के अभ्यास को पूरा करने के बाद गांधीजी ने साढ़े नौ बजे अपना सवेरे का भोजन किया। अपनी पार्टी को तितर-बितर करने के बाद वे पूर्व बंगाल के गांवों में अपनी 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए नंगे पांव श्रीरामपुर गये तबसे वे नियमित रूप से बंगाली का अभ्यास करते रहे हैं। जब मैं विधान के मसविदे को दोहराने के बाद उनके पास ले गया, तब वे भोजन कर रहे थे। उनके भोजन में ये-ये चीजें शामिल थीं––बकरी का दूध, पकाई हुई और कच्ची भाजियां, संतरे और अदरक का काढ़ा, खट्टे नीबू और घृत-कुमारी। उन्होंने अपनी विशेष सतर्कता से मसविदे में बढ़ाई हुई और बदली हुई बातों को एक-एक करके देखा और पंचायती नेताओं की संख्या के बारे में जो गलती रह गई थी, उसे सुधारा।

इसके बाद मैंने गांधीजी को डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद से हुई अपनी मुलाकात की विस्तृत रिपोर्ट दी। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की तबीयत अच्छी न थी। इसीलिए गांधीजी ने कल उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछने के लिए उनके पास भेजा था। मैंने गांधीजी को पूर्वी बंगाल के बारे में ताजी-से-ताजी खबर भी सुनाई, जो मुझे डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने कल शाम को बताई थी। इसपर से नोआखाली के बारे में चर्चा चली। मैंने उनके सामने व्यवस्थित रीति से नोआखाली छोड़ने की बात रखी। लेकिन गांधीजी का दृष्टिकोण साफ और मजबूत था। उन्होंने कहा, "जैसे हम कार्यकर्ताओं को 'करना या मरना' है उसी तरह हमें अपने लोगों को भी आत्म-

सम्मान, इज्जत और मजहबी हक को बचाने के लिए 'करने या मरने' को तैयार करना है। हो सकता है कि आखिर में थोड़े ही लोग बचें, लेकिन कमजोरी से ताकत पैदा करने का इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। क्या हथियारों की लड़ाई में भी बलवा करनेवाले या कमजोर सिपाहियों की कतारें मार नहीं दी जातीं ? तब अहिंसक लड़ाई में इससे दूसरा कैसे हो सकता है ?" उन्होंने आगे कहा, "तुम नोआखाली में जो कुछ कर रहे हो, वही सही रास्ता है। तुमने मौत का डर भगा दिया है और लोगों के दिलों में अपना स्थान बनाकर उनका प्यार पा लिया है। प्यार और परिश्रम के साथ ज्ञान जोड़ना जरूरी है। तुमने यही किया है। अगर तुम अकेले भी अपना काम पूरी तरह और अच्छी तरह करो, तो तुम्हीं सबके लिए काफी हो। तुम जानते हो कि यहां मुझे तुम्हारी बड़ी जरूरत है। मुझपर काम का इतना बोझ है और मैं बहुत-कुछ दुनिया को भी देना चाहता हूं, तुम्हारे बाहर रहने से मैं ऐसा नहीं कर सकता। लेकिन मैंने अपने आपको इसके लिए कड़ा बना लिया है। नोआखाली का तुम्हारा काम इससे ज्यादा महत्व का है।" इसके बाद उन्होंने मुझे बताया कि अगर सरकार अपना फर्ज पूरा करने में चूके, तो गुण्डों के साथ कैसे निपटना चाहिए।

दोपहर को थोड़ी झपकी लेने के बाद गांधीजी श्री सुधीर घोष से मिले। श्री घोष ने और बातों के अलावा 'लन्दन टाइम्स' की कतरन और एक अंग्रेज दोस्त के खत के कुछ हिस्से पढ़कर उन्हें सुनाये। इनमें लिखा था कि किस तरह कुछ लोग बड़ी तत्परता के साथ पण्डित नेहरू और सरदार पटेल के बीच फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं। वे सरदार पटेल पर फिरकापरस्त होने का दोष लगाते हैं और पण्डित नेहरूजी की तारीफ करने का ढोंग रचते हैं। गांधीजी ने कहा कि वे इस तरह की हलचल से वाकिफ हैं और उसपर गहराई से विचार कर रहे हैं। वे बोले कि अपने एक प्रार्थना-सभा के भाषण में पहले ही इसके बारे में कह चुका हूं, जो 'हरिजन' में छप गया है। मगर मुझे लगता है कि इसके लिए कुछ और ज्यादा करने की जरूरत है। मैं सोच रहा हूं कि मुझे क्या करना चाहिए।

सारे दिन लोग लगातार मुलाकात करने के लिए आते रहे। उनमें दिल्ली के मौलाना लोग भी थे। उन्होंने गांधीजी के वर्धा जाने के बारे में अपनी सम्मति दे दी। गांधीजी ने उनसे कहा कि मैं सिर्फ थोड़े दिनों के लिए ही यहां से गैरहाजिर रहूंगा और अगर भगवान की कुछ और ही मर्जी न हुई और कोई आकस्मिक घटना न घटी तो ११ तारीख को वर्धा में स्वर्गीय सेठ जमनालालजी की पुण्यतिथि मनाने के

बाद १४वीं तारीख को मैं लौट जाऊंगा।

एक बात और थी, जिसके बारे में मुझे गांधीजी से सलाह लेनी थी। मैंने उनसे पूछा, "बापू, मुसलमान औरतों में अपने काम को आसानी से चलाने के लिए अगर ज्यादा नहीं तो थोड़े ही वक्त के लिए मैं .... को नोआखाली ले आऊं? जरूरी छुट्टी के लिए .... से प्रार्थना करूंगा।" "खुशी से"—उन्होंने जवाब दिया। आखिरी शब्द ये थे जो मुझे सुनने थे।

साढ़े चार बजे आभा उनका शाम का खाना लाई। इस धरती पर उनका यह आखिरी भोजन था, जिसमें करीब-करीब सवेरे की ही सब चीजें शामिल थीं। उनकी आखिरी बैठक सरदार पटेल के साथ हुई। जिन विषयों पर चर्चा हुई, उनमें से एक मंत्रि-मंडल की एकता को तोड़ने के लिए सरदार के खिलाफ किया जाने-वाला गन्दा प्रचार था। गांधीजी की यह साफ राय थी कि हिन्दुस्तान के इतिहास में ऐसे नाजुक मौके पर मंत्रिमंडल में किसी तरह की फूट पैदा होना बड़ी दुःखपूर्ण बात होगी। सरदार से उन्होंने कहा कि आज मैं इसीको अपनी प्रार्थना-सभा के भाषण का विषय बनाऊंगा। प्रार्थना के बाद पण्डितजी मुझसे मिलेंगे, उनसे भी इसके बारे में चर्चा करूंगा। आगे चलकर उन्होंने कहा, "अगर जरूरी हुआ तो मैं २ तारीख को वर्धा जाना मुल्तवी कर दूंगा और तबतक दिल्ली नहीं छोड़ूंगा जबतक दोनों के बीच फूट डालने की कोशिश के इस भूत का पूरी तरह खात्मा न कर दूं।"

इस तरह चर्चा चलती रही। बेचारी आभा भी बाधा देने का साहस नहीं कर रही थी। इस बात को जानते हुए कि बापू वक्त की पाबन्दी को और खासकर प्रार्थना के बारे में उसकी पाबन्दी को, कितना महत्व देते हैं, उसने आखिर में निराश होकर उनकी घड़ी उठाई और जैसे इस बात का इशारा करते हुए उनके सामने रख दी कि प्रार्थना में देर हो रही है।

प्रार्थना के मैदान में जाने के पहले ज्योंही गांधीजी गुसलखाने में जाने के लिए उठे, वे बोले, "अब मुझे आपसे अलग होना पड़ेगा।" रास्ते में वे उस शाम को अपनी 'चलती लकड़ियों'—आभा और मनु—के साथ तबतक हँसते और मजाक करते रहे जबतक कि वे प्रार्थना के मैदान की सीढ़ियों पर नहीं पहुंच गये।

दिन में जब दोपहर के पहले आभा गांधीजी के लिए कच्ची गाजरों का रस लाई, तब उन्होंने उलाहना देते हुए कहा, "तो तुम मुझे ढोरों का खाना खिलाती हो!" आभा ने जवाब दिया, "बा तो इसे 'घोड़े की खुराक' कहती थीं।" उन्होंने पूछा, "जिस चीज को दूसरा पूछेगा भी नहीं, उसे स्वाद से खाना क्या कम चीज

है ?" और हँसने लगे ।

आभा ने कहा--"बापू, आपकी घड़ी को जरूर यह लगता होगा कि आप उसकी परवाह नही करते । आप उसकी तरफ देखते नहीं ।" गांधीजी ने तुरन्त जवाब दिया --"मै क्यों देखूं, जब तुम दोनों मुझे ठीक समय बता देती हो ?" लडकियों में से एक ने पूछा, "लेकिन आप तो समय बतानेवाली लड़कियों की तरफ नही देखते !"

बापू फिर हॅसने लगे । पांव साफ करते हुए उन्होंने आखिरी बात कही, "मै आज १० मिनट देर से पहुंचा हूं । देर से आने में मुझे नफरत होती है । मै प्रार्थना की जगह पर ठीक पांच बजे पहुंचना पसंद करता हूं ।" यहां बातचीत खतम हो गई । क्योंकि--'चलती लकड़ियों' के साथ गांधीजी की यह शर्त थी कि प्रार्थना के मैदान के अहाते में पहुंचते ही सारा मजाक और बातचीत बन्द हो जानी चाहिए--मन में प्रार्थना के विचारों के सिवा दूसरी कोई चीज़ नहीं होनी चाहिए । मन प्रार्थना-मय हो जाना चाहिए ।

अब गांधीजी प्रार्थना-सभा के बीच रस्सियों से घिरे रास्ते में चलने लगे । उन्होने प्रार्थना में शामिल होने वाले लोगों के नमस्कारों का जवाब देने के लिए लड़कियो के कन्धों से अपने हाथ उठा लिये । एकाएक भीड़ में से कोई दाहिनी ओर से भीड को चीरता हुआ उस रास्ते पर आया । मनु ने यह सोचा कि वह आदमी बापू के पांव छूने को आगे बढ़ रहा है । इसलिए उसने उसको ऐसा करने के लिए झिड़का, क्योंकि प्रार्थना में पहले ही देर हो चुकी थी । उसने रास्ते में आने वाले आदमी का हाथ पकड़कर उसे रोकने की कोशिश की । लेकिन उसने जोर से मनु को धक्का दिया, जिससे उसके हाथ की आश्रम-भजनावली, माला और बापू का पीकदान नीचे गिर गये । ज्योंही वह बिखरी हुई चीजों को उठाने के लिए झुकी, वह आदमी बापू के सामने खड़ा हो गया--इतना नजदीक खड़ा था कि पिस्तौल से निकली हुई गोली का खोल बाद में बापू के कपड़े की पर्त में उलझा हुआ मिला । सात कारतूसोंवाले आटोमेटिक पिस्तौल से जल्दी-जल्दी तीन गोलियां छूटीं । पहली गोली नाभी से ढाई इंच ऊपर और मध्य रेखा से साढ़े तीन इंच दाहिनी तरफ पेट की बाजू में लगी । दूसरी गोली, मध्य-रेखा से एक इंच की दूरी पर दाहिनी तरफ घुसी और तीसरी गोली छाती की दाहिनी तरफ लगी । पहली और दूसरी गोली शरीर को पारकर पीठ से बाहर निकल आईं । तीसरी गोली उनके फेफड़े में ही रुकी रही । पहले वार में उनका पांव, जो गोली लगने के वक्त आगे बढ़ रहा था, नीचे

आ गया। दूसरी गोली छोड़ी गई तबतक वे अपने पांवों पर ही खड़े थे, उसके बाद वे गिर गये। उनके मुह से आखिरी शब्द "हे राम" निकले। उनका चेहरा राख की तरह सफेद पड़ गया। उनके सफेद कपड़ों पर गहरा सुर्ख धब्बा फैलता हुआ दिखाई पड़ा। उनके हाथ, जो सभा को नमस्कार करने के लिए उठे थे, धीरे-धीरे नीचे आ गये, एक हाथ आभा के गले में अपनी स्वाभाविक जगह पर गिरा। उनका लड़खडाता हुआ शरीर धीरे से ढुलक गया। घबराई हुई मनु और आभा ने महसूस किया कि क्या हो गया है।

मैं दूसरे दिन नोआखाली जाने की अपनी तैयारी पूरी करने के लिए शहर गया था और वहां से हाल में ही लौटा था। प्रार्थना-सभा के मैदान तक बनी हुई पत्थर की कमानी के नीचे भी मैं न पहुंच पाया कि श्री चन्द्रावत सामने से दौड़ते हुए आये। उन्होंने चिल्लाकर कहा,"डाक्टर को फोन करो। बापू को गोली मार दी गई है।" मैं पत्थर की तरह जहां-का-तहां खड़ा रह गया, जैसे बुरा सपना देखा हो। मशीन की तरह मैंने किसीके द्वारा डाक्टर को फोन करवाया।

हरएक को इस घटना से धक्का लगा। डा० राज सब्बरवाल ने, जो उनके पीछे आई, गांधीजी के सिर को धीरे से अपनी गोद में रख लिया। उनका कांपता हुआ शरीर डाक्टर के सामने आधा लेटा हुआ था और आंखें अधमुदी थी। हत्यारे को बिड़ला-भवन के माली ने मजबूती से पकड़ लिया था। दूसरों ने भी उसका साथ दिया और थोड़ी खींचतान के बाद उसे काबू में कर लिया। बापू का शांत और ढीला पडा हुआ शरीर दोस्तों के द्वारा अन्दर ले जाया गया और उस चटाई पर उसे रखा गया, जिसपर बैठकर वे काम किया करते थे। मगर कुछ इलाज करने से पहले ही घड़ी की आवाज बन्द हो चुकी थी। उन्हें भीतर लाने के बाद उनको जो छोटा चम्मच भर शहद और गरम पानी पिलाया गया उसे भी वे पूरी तरह निगल न सके। करीब-करीब फौरन ही उनका अवसान हो गया।

डा० सुशीला बहावलपुर गई थीं, जहां बापू ने उन्हें दया के मिशन पर भेजा था। डा० भार्गव, जिन्हें बुलावा भेजा था, आये और 'एड्रेनलिन' के लिए डा० सुशीला की संकट के समय काम में आने वाली दवाइयों का संदूक पागल की तरह तलाश करने लगे। मैंने उनसे दलील की कि वे उस दवाई को ढूंढ़ने की मेहनत न उठायें, क्योंकि गांधीजी ने कई बार हमसे कहा है कि उनकी जान बचाने के लिए भी कोई निषिद्ध दवाई उनको न दी जाय। जैसे-जैसे बरस बीतते गये, उन्हें ज्यादा-ज्यादा विश्वास होता गया कि सिर्फ रामनाम ही उनकी और दूसरों की सारी बीमारियों

को दूर कर सकता है। थोड़े ही दिनों पहले अपने उपवास के दरमियान उन्होंने यह सवाल पूछकर साइंस की कमियों के बारे में अपने मत को पक्का कर दिया था कि गीता में जो यह कहा गया है 'एकांशेन स्थितो जगत्'—उसके एक अंश से सारा संसार टिका हुआ है—उसका क्या मतलब है ? रामनाम की सब बीमारियों को दूर करने की शक्ति पर अपने विश्वास के बारे में बोलते हुए एक आह के साथ गांधीजी ने घनश्यामदासजी से कहा था, "अगर मैं इसे अपने जीते-जी साबित नहीं कर सकता, तो वह मौत के साथ ही खत्म हो जायगा ।" जैसाकि आखिर में हुआ, डा० सुशीला की संकटकालीन दवाइयों में एड्रेनलिन नहीं मिला । संयोग से एड्रेनलिन की जो एक मात्र शीशी सुशीला ने कभी ली थी वह नोआखाली के काजिरखिल कैम्प में टूट गई थी । गांधीजी उसकी इतनी कम परवाह करते थे ।

उनके साथियों में सबसे पहले सरदार वल्लभभाई पटेल आये । वे गांधीजी के पास बैठे और नाड़ी देखकर उन्होंने खयाल कर लिया कि वह अब भी धीरे-धीरे चल रही है । डा० जीवराज मेहता कुछ मिनट बाद पहुंचे । उन्होंने नाड़ी और आंखों की परीक्षा की और उदास और दुःखी होकर सिर हिलाया । लड़कियां सिसक उठीं । लेकिन उन्होंने तुरन्त दिल को कड़ा किया और रामनाम बोलने लगीं । मृत शरीर के पास सरदार चट्टान की तरह अचल बैठे थे । उनका चेहरा उदास और पीला पड़ गया था । इसके बाद पंडित नेहरू आये और बापू के कपड़ों में अपना मुंह छिपाकर बच्चे की तरह सिसकने लगे । इसके बाद देवदास आये । तब बापू के पुराने रक्षकों में से बचे हुए श्री जयरामदास, राजकुमारी अमृतकौर, आचार्य कृपलानी आये । कुछ देर बाद लार्ड माउण्टबेटन आये, तबतक बाहर लोगों की भीड़ इतनी बढ़ गई थी कि वे बड़ी मुश्किल से अन्दर आ सके । कड़े दिल के योद्धा होने के कारण उन्होंने एक पल भी नही गंवाया और वे पंडित नेहरू और मौलाना आजाद को दूसरे कमरे में ले गये और महान् दुर्घटना से पैदा होनेवाले समस्याओं पर अपने राजनैतिक दिमाग से विचार करने लगे । एक सुझाव यह रक्खा गया कि मृत शरीर को मसाला देकर कुछ समय के लिए सुरक्षित रखा जाय, लेकिन इस बारे में गांधीजी के विचार इतने साफ और मजबूत थे कि बीच में पड़ना मेरे लिए जरूरी और पवित्र कर्त्तव्य हो गया । मैंने उनसे कहा कि बापू मरने के बाद पार्थिव शरीर को पूजने का कड़ा विरोध करते थे । उन्होंने मुझे कई बार कहा था, "अगर तुम मेरे बारे में ऐसा होने दोगे तो मैं मौत में भी कोसूंगा । मैं जहां कहीं मरूं, मेरी यह इच्छा है कि बिना किसी दिखावे या झमेले के मेरा दाह-संस्कार किया जाय ।" डा० राजेन्द्र प्रसाद,

श्री जयरामदास और डा० जीवराज मेहता ने मेरी बात का समर्थन किया। इसलिए मृत शरीर को मसाला देकर रखने का विचार छोड़ दिया गया। बाकी रात गीता के श्लोक और सुखमणि साहब के भजन मीठे राग में गाये जाते रहे और बाहर दुःख से पागल बने लोगों की भीड़ दर्शन के लिए कमरे के चारों तरफ इकट्ठी होती रही। आखिरकार मृत शरीर को ऊपर ले जाकर बिड़ला-भवन के छज्जे पर रखना पड़ा, ताकि सब लोग दर्शन कर सकें।

सुबह जल्दी ही शरीर को हिन्दू-विधि के अनुसार नहलाया गया और कमरे के बीच में फूलों से ढककर रख दिया गया। विदेशी राजदूत, सुबह थोड़ी देर बाद आये और उन्होंने बापू के चरणों पर फूलों की मालाएं रखकर अपनी मौन श्रद्धांजलि अर्पित की।

अवसान के दो दिन पहले ही गांधीजी ने कहा था, "मेरे लिए इससे प्यारी चीज क्या हो सकती है कि मैं हंसते-हंसते गोलियों की बौछार का सामना कर सकूं?" और मालूम होता है, भगवान् ने उन्हें यह वरदान दे दिया।

११ बजे हमारे सबके अन्तिम प्रणाम करने के बाद मृत शरीर अर्थी पर रखा गया। उस समय तक रामदास गांधी हवाई जहाज द्वारा नागपुर से आ पहुंचे थे। डा० सुशीला नायर सबसे आखिर में पहुंचीं, जब अर्थी रवाना होने वाली थी। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि बापू के आखिरी समय में वह उनके पास नहीं रह सकीं। लेकिन इस बात के लिए उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह अन्तिम दर्शन के समय पहुंच गईं।

उस रात डा० सुशीला बार-बार बहुत दुःखी होकर चिल्लाती रहीं, "आखिर मुझे यह सजा क्यों?" देवदास ने उन्हें आश्वासन देने की कोशिश की "यह सजा नहीं है। बापू के आखिरी मिशन को पूरा करने में जुटे रहना बड़े गौरव की बात है—यह बापू का उसीको सौंपा हुआ आखिरी काम था।" बापू की यह एक विशेषता थी कि जिन्हें उन्होंने बहुत दिया था, उनसे वे और ज्यादा की आशा रखते थे।

जब मैं बापू का अपार शांति, क्षमा, सहिष्णुता और दया से भरा आंचल और उदास चेहरा ध्यान से देखने लगा, तो मेरे दिमाग में उस समय से लेकर — जब मैं कालेज के विद्यार्थी रूप में चौंधियानेवाले सपनों और उज्ज्वल आशाओं से भरा बापू के पास आकर उनके चरणों में बैठा था—आजतक के २८ लम्बे वर्षों के निकटतम और अटूट सम्बन्ध का पूरा दृश्य बिजली की गति से घूम गया

और वे वर्ष कौम के बोझ से कितने लदे हुए थे ।

जो कुछ हुआ था, उसके अर्थ पर मैं विचार करने लगा । पहले मैं घबराहट महसूस करने लगा, लेकिन बाद में धीरे-धीरे यह पहेली अपनी आप सुलझने लगी । उस दिन जब बापू ने एक आदमी के भी अपना फर्ज पूरी और अच्छी तरह अदा करने के बारे में कहा था, मुझे ताज्जुब हुआ था कि आखिर उनके कहने का ठीक-ठीक मतलब क्या है ? उनकी मृत्यु ने उसका जबाव दे दिया । पहले जब गांधीजी उपवास करते तो वे दूसरों से प्रार्थना करने के लिए कहते थे । वे कहा करते थे, "जबतक पिता बच्चों के बीच है तबतक उन्हें खेलना और खुशी से उछलना-कूदना चाहिए । जब मैं चला जाऊंगा तब आज मैं जो कुछ कर रहा हूं वह सब वे करेंगे ।" मगर · · · बापू ने जो आजादी हमारे लिए जीती है, यदि उसका फल हमें भोगना है, तो उनकी मौत ने हमें वह रास्ता दिखा दिया है, जिस पर हमें चलना है ।

: २ :

अन्तिम प्रार्थना-प्रवचन

२९ जनवरी १९४८

भाइयो और बहनो,

मेरे सामने कहने को चीज तो काफी है, उनमें से जो आज के लिए चुननी चाहिए, वे चुन ली हैं । छः चीजें हैं । पंद्रह मिनट में जितना कह सकूंगा, कहूंगा ।

एक बात तो देख रहा हूं कि थोड़ी देर हो गई है—यह होनी नहीं चाहिए थी । सुशीला बहन बहावलपुर चली गई है । बहावलपुर में दुःखी आदमी हैं उनको देखने के लिए चली गई है—दूसरा अधिकार तो कोई है नही और न हो सकता था । फ्रेंड्स सर्विस के लेसली क्रॉस के साथ चली गई है । फ्रेंड्स यूनिट में से किसी को भेजने का मैंने इरादा किया था, ताकि वह वहां लोगों को देखें, मिलें, और मुझ-को वहां के हाल बता दें । उस वक्त सुशीला बहन के जाने की बात नहीं थी, लेकिन जब सुशीला बहन ने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत दे दो तो मैं क्रॉस साहब के साथ चली जाऊं । वह जब नोआखाली में काम करती थी तबसे वह उनको

जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पंजाब के गुजरात की है, उसने भी काफी गंवाया है; क्योंकि उसकी तो वहां काफी जायदाद है, फिर भी दिल में कोई जहर पैदा नही हुआ है। तो उसने बताया कि मैं वहां क्यों जाना चाहती हूं; क्योंकि मैं पंजाबी बोली जानती हूं, हिन्दुस्तानी जानती हूं, उर्दू और अंग्रेजी भी जानती हूं तो वहां मैं क्रॉस साहब को मदद दे सकूंगी। तो मैं यह सुनकर खुश हो गया। वहां खतरा तो है; लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है, ऐसा डरती तो नोआखाली क्यों जाती? पंजाब में बहुत लोग मर गए हैं, बिलकुल मटियामेट हो गए हैं; लेकिन मेरा तो ऐसा नहीं है, खाना-पीना सब मिल जाता है, ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दें और क्रॉस साहब मेरे को ले जायं तो मैं वहां के लोगों को देख लूंगी। तो मैंने क्रॉस साहब से पूछा कि क्या आपके साथ सुशीला बहन को भेजूं? तो वे खुश हो गए और कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैं उनके मारफत से दूसरों से अच्छी तरह बातचीत कर लूंगा। मित्रवर्ग में हिन्दुस्तानी जानने वाला कोई रहे तो वह बड़ी भारी चीज हो जाती है। इससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रास के हैं। रेडक्रास के माने यह है कि लड़ाई में जो मरीज हो जाते हैं उनको दवा देने का काम करना। अब तो दूसरा-तीसरा भी काम करते हैं। तो डाक्टर सुशीला क्रॉस साहब के साथ गई या डाक्टर सुशीला के साथ क्रॉस साहब गए हैं यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नहीं, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के दोस्त हैं और दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं, मोहब्बत करते हैं। वे सेवा-भाव से गए हैं, पैसा कमाना तो है नहीं। वे जो देखेंगे मुझे बतायंगे और सुशीला बहन भी बतायगी। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डाक्टर है और क्रॉस साहब दूसरे हैं। कौन ऊंचा है कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करें, लेकिन क्रॉस साहब, हैं तो औरत को आगे कर देते हैं और अपनेको पीछे रखते हैं। आखिर वे उनके दोस्त हैं। मैं एक बात और कह देना चाहता हूं कि नवाब साहब तो मुझको लिखते रहते हैं। मुझको कई लोग झूठ बात भी लिखते हैं तो उसे मानने का मेरा क्या अधिकार है। मैंने सोचा कि मुझको क्या करना चाहिए। तो बहावलपुर के जो आए हैं उनको बता दूं कि वे वहां से आयंगे तो मुझको सब बात बता देंगे।

अभी बन्नू के भाई लोग मेरे पास आ गए थे---शायद चालीस आदमी थे। वे परेशान तो हैं, लेकिन ऐसे नहीं हैं कि चल नहीं सकते थे। हां, किसी की अंगुली में घाव लगे थे, कहीं कुछ था, ऐसे थे। मैंने तो उनका दर्शन ही किया और कहा कि जो कुछ कहना है बृजकिशनजी से कह दें, लेकिन इतना समझ लें कि मैं उन्हें भूला

नहीं हूं। वे सब भले आदमी थे। गुस्से से भरे होना चाहिए था, लेकिन फिर भी वे मेरी बात मान गए। एक भाई थे, वे शरणार्थी थे या कौन थे, मैंने पूछा नहीं। उसने कहा कि तुमने बहुत खराबी तो कर ली है, क्या और करते जाओगे ? इससे बेहतर है कि जाओ। बड़े हैं, महात्मा हैं तो क्या, हमारा काम तो बिगाड़ते ही हो। तुम हम को छोड़ दो, भूल जाओ, भागो। मैंने पूछा, कहां जाऊं ? उन्होंने कहा, तुम हिमालय जाओ। तो मैंने डांटा। वे मेरे जितने बुजुर्ग नहीं हैं—वैसे बुजुर्ग हैं, तगड़े हैं, मेरे जैसे पांच-सात आदमी को चट कर सकते हैं। मैं तो महात्मा रहा, घबराहट में पड़ जाऊं तो मेरा क्या हाल होगा। तो मैंने हँसकर कहा कि क्या मैं आपके कहने से जाऊं? किसकी बात सुनूं ? क्योंकि कोई कहता है कि यहीं रहो, कोई तारीफ करता है, कोई डांटता है, कोई गाली देता है तो मै क्या करूं ? ईश्वर जो हुक्म करता है वही मैं करता हूं। आप कह सकते है कि आप ईश्वर को नहीं मानते हैं तो इतना तो करें कि मुझे अपने दिल के अनुसार करने दें। आप कह सकते हैं कि ईश्वर तो हम हैं। मैंने कहा तो परमेश्वर कहां जायगा ? ईश्वर तो एक है। हां, यह ठीक है कि पंच परमेश्वर है लेकिन यह पंच का सवाल नहीं है। दुःखी का बेली * परमेश्वर है; लेकिन दुःखी खुद परमात्मा नहीं। जब मै दावा करता हूं कि जो हर एक स्त्री है, मेरी सगी बहन है, लड़की है तो उसका दुःख मेरा दुःख है। आप ऐसा क्यों मानते है कि मैं दुःख को नहीं जानता। आपके दुःखों में मैं हिस्सा नहीं लेता। मै हिन्दुओं और सिखों का दुश्मन हूं और मुसलमानों का दोस्त हूं। उसने साफ-साफ कह दिया। कोई गाली देकर लिखता है, कोई विवेक से लिखता है कि हमको छोड़ दो, चाहे हम दोजख में जायं तो क्या ? तुमको क्या पड़ी है, तुम भागो ? मै किसीके कहने से कैसे भाग सकता हूं ? किसीके कहने से मैं खिदमतगार नहीं बना हूं। किसीके कहने से मैं मिट नहीं सकता हूं, ईश्वर के चाहने से मै जो हूं बना हूं। ईश्वर को जो करना है करेगा। ईश्वर चाहे तो मुझको मार सकता है। मै समझता हूं कि मैं ईश्वर की बात मानता हूं। एक डांटता है, दूसरे लोग मेरी तारीफ करते है, तो मै क्या करूं। मै हिमालय क्यों नहीं जाता ? वहां रहना तो मुझको पसंद पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि मुझको वहां खाने, पीने, ओढ़ने को नहीं मिलेगा—वहां जाकर शांति मिलेगी, लेकिन मैं अशांति में से शांति चाहता हूं नहीं तो उस अशांति में मर जाना चाहता हूं। मेरा हिमालय यहीं है। आप सब हिमालय चलें तो मुझको भी आप लेते चलें।

मेरे पास शिकायतें आती हैं—सही शिकायतें हैं—कि यहां शरणार्थी पड़े है,

* (गुज०) मुरब्बी, सहायता करनेवाला।

उनको खाना देते हैं, पीना देते हैं, पहनने को देते हैं, जो हो सकता है सब करते हैं, लेकिन वे मेहनत नहीं करना चाहते हैं, काम नहीं करना चाहते हैं। जो उनकी खिदमत करते हैं उन लोगों ने लंबा-चौड़ा लिख कर दिया है, उसमें से मैं इतना ही कह देता हूं। मैंने तो कह दिया है कि अगर दुःख मिटाना चाहते हैं, दुःख में से सुख निकालना चाहते हैं, दुःख में भी हिन्दुस्तान की सेवा करना चाहते हैं, साथ में अपनी भी सेवा हो जाती है, तो दुखियों को काम तो करना ही चाहिए। दुःखी को ऐसा हक नहीं है कि वह काम न करे और मौज-शौक करे। गीता में तो कहा है, 'यज्ञ करो और खाओ'—यज्ञ करो और शेष रह जाता है उसको खाओ। यह मेरे लिए है और आप के लिए नहीं है ऐसा नहीं है—सबके लिए है। जो दुःखी है उनके लिए भी है। एक आदमी कुछ करे नहीं, बैठा रहे और खाय तो ऐसा हो नहीं सकता। करोड़पति भी काम न करे और खावे तो वह निकम्मा है, पृथ्वी पर भार है। जिस आदमी के घर पैसा भी है वह भी मेहनत करके खाए तब बनता है। हां कोई लाचारी है—पैर नहीं चल सकता है या अंधा है, या वृद्ध हो गया है तो बात दूसरी है; लेकिन जो तगड़ा है, वह क्यों न करे ? जो काम कर सकता है वह काम करे। शिविर में जो तगड़े पड़े हैं वे पाखाना भी उठाएं। चर्खा चलाएं। जो काम बन सकता है, करें। जो काम नहीं जानते हैं वे काम लड़कों को सिखाएं, इस तरह से काम लें। लेकिन कोई कहे कि केम्ब्रिज में जैसे सिखाते हैं वैसे सिखाएं; मैं, मेरा बाबा तो केम्ब्रिज में सीखा था तो लड़कों को भी वहां भेंजे, तो यह कैसे हो सकता है ? मैं तो इतना ही कहूंगा कि जितने शरणार्थी हैं वे काम करके खाएं। उन्हें काम करना ही चाहिए।

आज एक सज्जन आए थे। उनका नाम तो मैं भूल गया। उन्होंने किसानों की बात की। मैंने कहा, मेरी चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, हमारा बड़ा वजीर किसान होगा, सब कुछ किसान होगा, क्योंकि यहां का राजा किसान है। मुझे बचपन से सिखाया था—एक कविता है, "हे किसान, तू बादशाह है।" किसान जमीन से पैदा न करे तो हम क्या खायंगे ? हिन्दुस्तान का सचमुच राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। आज किसान क्या करें ? एम० ए० बने, बी०ए० बनें ?—ऐसा किया, तो किसान मिट जायगा, पीछे वह कुदाली नहीं चलायगा। जो आदमी अपनी जमीन में से पैदा करता है और खाता है, सो जनरल बने, प्रधान बने, तो हिन्दुस्तान की शकल बदल जायगी। आज जो सड़ा पड़ा है, वह नहीं रहेगा।

मद्रास में खुराक की तंगी है। मद्रास सरकार की तरफ से दूत यह कहने के

लिए श्री जयरामदास के पास आए थे कि वे उस सूबे के लिए अन्न देने का बन्दोबस्त करें। मुझे मद्रासवालों के इस रुख से दुःख होता है। मैं मद्रास के लोगों को यह समझाना चाहता हूं कि वे अपने ही सूबे में मूंगफली, नारियल और दूसरे खाद्य पदार्थों के रूप में काफी खुराक पा सकते हैं। उनके यहां मछली भी काफी है, जिन्हें उनमें से ज्यादातर लोग खाते हैं। तब उन्हें भीख माँगने के लिए बाहर निकलने की क्या जरूरत है? उनका चावल का आग्रह रखना—वह भी पालिश किया हुआ चावल, जिसके सारे पोषक तत्व मर जाते हैं—या चावल न मिलने पर मजबूरी से गेहूं मंजूर करना ठीक नहीं है। चावल के आटे में वे मूंगफली या नारियल का आटा मिला सकते हैं और इस तरह अकाल के भेड़िये को आने से रोक सकते हैं। उन्हें जरूरत है आत्म-विश्वास और श्रद्धा की। मद्रासियों को मैं अच्छी तरह से जानता हूं और दक्षिण-अफ्रीका में उस प्रांत के सभी भाषावाले हिस्सों के लोग मेरे साथ थे। सत्याग्रह कूच के वक्त उन्हें रोजाना के राशन में सिर्फ डेढ़ पौंड रोटी और एक औंस शक्कर दी जाती थी। मगर जहां कहीं उन्होंने रात को डेरा डाला, वहां जंगल की घास में से खाने लायक चीजें चुनकर और मजे से गाते हुए उन्हें पकाकर उन्होंने मुझे अचरज में डाल दिया। ऐसे सूझ-बूझ वाले लोग कभी लाचारी कैसे महसूस कर सकते हैं? यह सच है कि हम सब मजदूर थे। और, ईमानदारी से काम करने में ही हमारी मुक्ति और हमारी सभी आवश्यक जरूरतों की पूर्ति भरी है।

●